लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या

श्रीकृष्ण दास

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण सन् १९५६ ईसवी

चार रुपया

मुद्रक हिन्दी साहित्य प्रेस इलाहाबाद

'माई के रोये से नदिया बहत है'

विषय सूची

भूमिका

लोक गीतो का सग्रह करना, उनकी व्याख्या करना, उनका मौलिक सदेश समझना और वर्तमान आवश्यकताओ को देखते हुए उन्हे समाज की उन्नति और विकास के आधार के रूप मे प्रयुक्त करना अत्यावश्यक हो गया है। सच यह है कि हमे स्वय अपने को खोजना है। यह खोज कोई साधारण खोज न होगी। जो तथ्य और तत्व विस्मृति की अनेक पर्तो मे दब गये है, जो भावधाराएँ विदेशी सभ्यता के जलते सिकताकणो के नीचे खो गयी है, जो लोग अपनी परपराओ, विकास क्रम और इतिहास को भूल गये है, जिस जाति का आत्मविश्वास तक डिग गया है, उसे उसकी पुरानी निधियो के प्रति जागरूक बनाना, उसे इतना समर्थ बना देना कि वह अपने पुरखो की कृतियों और रचनाओ का पुनमूँल्याकन कर सके, उन भावधाराओ को फिर से चमका देना जो कभी हमारी जाति को जीवित और गतिशील बनाये हुए थी, उन तथ्यों और तत्वो को फिर से उभार कर ऊपर लाना जो हमारे सास्कृतिक जीवन का मूल आधार थीं, आसान काम नही है।

इस क्षेत्र मे खोज और शोध का कार्य करने वालो के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ आती है। उनकी सहायता कोई नही करता। विदेशो मे अनेक सभाएँ और समितियाँ ऐसी है जो इस विषय पर काम करनेवालो को नाना प्रकार की सहायता और सुविधाएँ देती रहती है। हमारे देश मे ऐसा कुछ नही है। हमारे विश्व विद्यालयो मे इस विषय पर खोज कार्य हो रहा है। पिछले दस वर्षो मे इस विषय की ओर सबका ध्यान अधिकाधिक अकृष्ट हुआ है। परन्तु विश्वविद्यालयों मे भी इस बात की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है कि छात्रो को एक विषय मे दक्षता प्राप्त हो जाय। वहाँ यह प्रयास प्राय नही किया जाता कि जो छात्र इस विषय पर काम करना चाहते है उनमे ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने की इच्छा के साथ साथ श्रद्धा, स्नेह, सहानुभूति और व्यापक दृष्टि भी पैदा हो। फलस्वरूप वे विद्वान तो हो जाते है, किन्तु, सजग, सक्रिय कार्यकर्ता अथवा उदारचेता विचारक नहीं हो पाते। उनमें

न वह चेतना जाग पाती है कि वे समस्त बन्धनो और सीमाओं को तोड़ सकें, न वह विचारशीलता आ पाती है कि वे उन तहो और पर्तों को सही रूप में उतार सकें, अलग कर सकें, जो इन गीतो के विकासक्रम को ढके हुए है । इसका परिणाम यह होता है कि इस महत्वपूर्ण कार्य में उनका उतना अधिक सहयोग नही मिलता जितने अधिक सहयोग की अपेक्षा उनसे की जाती है ।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है । परन्तु उसके कर्मचारी इस कार्य मे आगे बढने की मनोवृत्ति का यथेष्ट परिचय नही देते । वे अन्य कार्य अथवा योजना की भाँति इस कार्य मे भी सफलता का सस्ता नुस्खा चाहते है । मगर इस क्षेत्र मे सफलता पाना इतना सहज नही है ।

ऐसे अवसर पर जब कि हमारे राष्ट्र की सभी प्रतिभाएँ मिल कर समाज के अभ्युत्थान सबधी कार्यों तथा योजनाओ को सफल बनाना चाहती है, इन लोक गीतो के सग्रह, व्याख्या, स्वर लिपियो की सुरक्षा आदि के बारे मे कोई सुनियोजित कार्य नहीं हो रहा है । ऐसा क्यो है ? इन लोक गीतो की इतनी उपक्षा क्यो हो रही है ?

हमारा बुद्धिजीवि वर्ग दो प्रकार की मानसिक गुलामी से सन्त्रस्त रहा है । या तो वह यह समझता रहा है कि जो कुछ उच्च और महान है वह सब पाश्चात्य साहित्य मे है अथवा फिर जो कुछ महत्वपूर्ण और गौरवशाली है वह सस्कृत साहित्य या अन्य शिष्ट साहित्यो मे ही है । लोक साहित्य और लोक गीतो को वह अपढ, असस्कृत, अशिष्ट, लोगो की कुघड़, अटपटी, ज्ञान-विहीन तथा कल्पना शून्य, कला हीन रचनाओ से अधिक महत्वपूर्ण नही मानता था । इसी लिए आज जब सास्कृतिक उत्सवो पर हम लोक गीतो, लोक नृत्यो आदि को सुनते-देखते है तो हमें कुतूहल अधिक होता है, हमे ये चीज़ें कुछ विचित्र सी लगती है, मज़ेदार मालूम होती है, इनसे हमारा पर्याप्त मात्रा मे मनोरजन होता है, परन्तु हम इनसे प्रेरणा नही ग्रहण करते, हम इनसे कुछ लेते नहीं, सीखते नही, हम इस साहित्य-सरिता मे अवगाहन कर अपने तन मन को अधिकाधिक स्वस्थ और पवित्र नही बना पाते ।

अमेरिका, जर्मनी, इगलैड, फ्रास और अब सोवियत रूस मे इस संबंध मे अच्छा काम हो रहा है । लगभग १०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्य

देशों मे इस संबंध मे खोज शोध का कार्य आरम्भ हुआ तो वहाँ के साहित्य कारो और विद्वानो ने लोकगीतो और लोक साहित्य के प्रति वही अरुचि और उदासीनता प्रकट की जो आज हिन्दी के शिष्ट साहित्य के कतिपय समर्थक लोक गीतो और लोक साहित्य के प्रति दिखा रहे है। परन्तु उदासीनता और उपेक्षा की यह परपरा अधिक दिनो तक चल न सकेगी। जिस तरह बिना धरती से जीवन-रस प्राप्त किए कोई भी पौधा फल फूल नही सकता, उसी प्रकार बिना लोक साहित्य और लोकगीतो से सीधा सबध स्थापित किए, बिना उससे शक्ति प्राप्त किए, कोई भी शिष्ट साहित्य टिकाऊ, शाश्वत अथवा अमर नही हो सकता।

जहाँ तक हमारे देश मे लोक साहित्य की खोज का सबध है, कर्नल टाड ने राजस्थान का इतिहास लिखते समय सबसे पहिले वहाँ की लोक वार्ताओ को भी सगृहीत किया। श्री आर० सी० टेम्पल ने अपनी पुस्तक 'लीजेडस आव दी पजाब' की भूमिका मे कहा था कि 'टाड की पुस्तक के बाद पचास वर्ष की अवधि मे, स्लावो के गीतो और लोक वार्ताओ का बहुत सा अनुलेखन बाद के लेखकों ने कर डाला है। रूसी, पोली, श्वेत क्रोशीय, सर्वी, मोरावी, वेडी, रुथेनी तथा आर्यों पर पूरा पूरा काम हुआ है। भारत मे, किंबहुना जहाँ के शासक अपनी उच्च बुद्धि पर, अपने भेजे हुए प्रतिनिधियो की ऊँची शिक्षा पर तथा शासन के ऊँचे लक्ष्यो पर गर्व करते है, वहाँ यह कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है।'

टेम्पल महोदय ने यह बात ठीक ही कही थी। सन् १८८४ ई० तक विदेशो मे इस सबध मे जितना काम हुआ था उतने काम का एक अश भी हमारे देश मे तब तक नही हो पाया था। सन् १८६६ ई० मे टेम्पल महोदय के उद्योग से रेवरेन्ड एस० हिस्लप के लेखो का प्रकाशन हुआ। इन लेखो का सबंध मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत के आदिवासियो से था। १८६८ ई० मे मिस फ्रेयेर की कहानियो का एक सग्रह 'ओल्ड डेकन डेज' के नाम से निकला। सन् १८७१ ई० मे डाल्टन महोदय ने 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बगाल' प्रकाशित किया। उसी समय इडियन ऐटीक्वेरी' मे बगाल की लोक कथाओ का प्रकाशन डैमड महोदय ने आरम्भ किया। सन् १८८३ ई० मे रेवरेड लाल बिहारी दे की पुस्तक 'फोक टेल्स आव बगाल' प्रकाशित हुई। सन् १८८४ ई० मे टेम्पल महोदय

की 'लीजेंड्स आव दी पंजाब' तीन भागो मे प्रकाशित हुई। १८८५ ई० में श्रीमती एफ० ए० स्टील के सहयोग से टेम्पल महोदय ने 'अवेक स्टोरीज' नाम से कहानियो का संग्रह प्रकाशित किया। 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' के नाम मे श्री नटेश शास्त्री की कहानियो का सग्रह प्रकाशित हुआ। सन् १८६० ई० मे श्री डवल्यू कुक ने 'नार्थ इडियन नोट्स एंड क्वेरीज' नाम का पत्र प्रकाशित किया था। थोडे दिनो बाद कैम्बेल तथा नोलीज़ महोदय ने सयुक्त रूप से सथालो और काश्मीर की कहानियो का सग्रह करना शुरु किया। श्री आर० सी० मुखर्जी की 'इडियन फोकलोर', श्रीमती डूकोर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेन्ड सी० स्वीनर्टन की 'रोमाटिक टेल्स फ्राम पजाब' आदि से लोकवार्ता सबधी पर्याप्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई। सन् १६०६ ई० मे श्री जी० एच० बोम्पस ने रेवरेंड ओ० बौडिग द्वारा सकलित सथाली कहानियो का अनुवाद प्रकाशित कराया। श्री एम० कुलक की बगाली हाउस होल्ड टेल्स' तथा सुश्री शोभना देवी की 'ओरियट पर्ल्स' पुस्तके प्रकाशित हुईं। श्री पार्थर का 'विलेज़ फोकटेल्स आव सीलोन' तीन भागो मे प्रकाशित हुआ। 'कथा सरित्सागर' का अनुवाद टानी महोदय ने किया और इसका सम्पादन पेजर महोदय ने किया। 'कथा सरित्सागर' के संबध में इतना ही कह देना ही पर्याप्त होगा कि इसका स्थान लोक वार्ता मे अत्यन्त महत्वपूर्ण और उच्च है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री विनय कुमार सरकार, शरत चन्द्र राय, ग्रियर्सन, रामास्वामी राजू जी० आर० सुब्रह्मण्यम् पु तुलु आदि कोड़ियो शोधको और विद्वानो ने इस क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। मारिस ब्लूमफिल्ड, नार्मन ब्राउन, रुथार्टन, एम० बी० ऐमेन्यू जैसे अमेरिकन और शोकोलव जैसे रूसी विद्वानो ने लोक साहित्य के अध्ययन मे मार्ग प्रदर्शन किया है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे विश्वविद्यालयो में, लोक साहित्य से रुचि रखने वाले छात्रो को, इन महत्वपूर्ण पुस्तको से पूरी सहायता मिल रही है।

ऊपर हमने जिन पुस्तको की चर्चा की है वे सब अंग्रेजी मे है। सच यह है कि भारत की विभिन्न भाषाओ में लोक वार्ता, लोक साहित्य अथवा लोक गीतो के सबध मे जो चेतना उत्पन्न हुई और जो जागृति आयी वह इन्हीं

कृतियो के कारण थी। देशी भाषाओ मे जो पुस्तके प्रकाशित हुईं उनमे से कुछ ये है (१) श्री मसूरउद्दीन—'हारामणि' (बगला) (२) श्री दिनेशचन्द्र सेन—मैमन सिंह गीतिका (बगला) (३) श्री झवेर चन्द मेघाणी—'रढियाली रात ३ भाग (गुजराती) (४) श्री रणजीतराव मेहता 'लोकगीत' (गुजराती) (५) श्री नर्मदा शकर लाल शकर नागर 'स्त्रियो मा गवाता गीत', (गुजराती) (६) श्री सतराम—'पजाबी गीत' (७) श्री मदनलाल वैश्य—'मारवाडी गीत माला' (८) श्री निहाल चन्द वर्मा—'मारवाडी गीत' (९) श्री खेताराम माली—'मारवाड़ी गीत संग्रह' (१०) श्री ताराचन्द्र ओझा—'मारवाडी स्त्री गीत सग्रह' आदि।

हिन्दी मे श्री मन्नन द्विवेदी ने सर्व प्रथम 'सरवरिया' नाम की पुस्तक प्रकाशित की। लाला सतराम ने 'सरस्वती' मे पजाबी लोकगीत प्रकाशित कराए। प० रामनरेश त्रिपाठी ने इस संबध मे जो परिश्रम और प्रयास किया उससे सारा हिन्दी समाज परिचित है। उनका 'ग्राम गीत' अमर हो चुका है। श्री सूर्य करण पारीक, डा० कन्हैयालाल सहल, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री रामइक्बाल सिह 'राकेश', श्री नरोत्तम स्वामी, ठाकुर राम सिह, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री श्याम चरण दूबे, श्री हर प्रसाद शर्मा, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, श्री श्याम परमार, श्री दुर्गा प्रसाद सिह, श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव, श्री मार्कण्डेय, श्री शिवसहाय चतुर्वेदी श्री मन्मथराय, श्री चन्द्रभानु शर्मा, श्री रामस्वरूप योगी, श्री सत्यव्रत अवस्थी, श्री देवदत्त शास्त्री, श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव आदि लोक वार्ता और लोकगीतो के प्रेमियो और विद्वानो ने जो सत्प्रयास किए उनकी जितनी भी प्रशसा की जाय थोडी है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी जेसी सस्थाओ तथा 'भोजपुरी,' 'राजस्थान', 'लोक वार्ता' आदि पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र मे बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। ब्रज क्षेत्र मे 'ब्रजसाहित्य मण्डल' न सामूहिक उद्योग करके इस दिशा मे महत्व पूर्ण कार्य किया है। महापडित राहुल साकृत्यायन, डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी, डाक्टर वैरियर एलविन, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर उदय नारायण तिवारी, डाक्टर सत्येन्द्र डाक्टर महादेव साहा आदि विद्वानो ने अपने अध्ययन और मार्ग प्रदर्शन से जाने कितने छात्रो और स्नातको को उत्साहित करके उन्हे

इस महत्वपूर्ण कार्य में लगाया है। इन आचार्यों की कृपा से पूरे लोक साहित्य का अध्ययन सम्पूर्णत वैज्ञानिक होता जा रहा है। यह अत्यन्त शुभ लक्षण है।

अब तक इस क्षेत्र मे जो कार्य हो चुका है, हम उसके लिए कृतज्ञ है और इस समय विभिन्न विश्वविद्यालयो तथा कतिपय सस्थाओ और विद्वानो द्वारा जो प्रयास किये जा रहे है हम उनका अभिनन्दन करते है। परन्तु जैसा कि हमने बराबर कहा है, अभी तो इस विराट, विशाल कार्य का श्रीगणेश भर हुआ है। हमारे भीतर अभी वह सहानुभूति और उदारता पूरी तरह अकुरित नही हो पायी है जो लोक साहित्य तथा लोकगीतो के सच्चे अध्ययन की पहली शर्त है।

अथर्ववेद के मत्र है—

यस्याश्चतसच प्रदिश पृथव्या यस्यामन्न कृषय सवभुवु।
या विभर्ति बहुधा प्राणदे जत् सानो भूमिगोष्वप्यन्ने दधातु।
यस्या पूर्वे पूर्वजना विचाक्रिरे यस्या देवा असुरानभ्य वर्त्तयन।
गवाम श्वाना वयसश्च विष्ठाभगवर्चं पृथिवी नो दयातु।
यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुव स्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवी विश्वधायस धृतामच्छा वदामसि॥

'हमारे प्यारे देश की चार दिशाएँ है। चारो दिशाओ मे कृषि कर्म किया जाता है। यह कृषि कर्म अनेक प्रकार से इस देश के प्राणियो की रक्षा करता है। हमारी यह मातृभूमि हमको उत्मोत्तम पशुओ तथा अन्न की समृद्धि से युक्त करे। जिस पवित्र देश मे उत्पन्न होकर हमारे पूर्वजो ने अद्भुत कार्य किए जहाँ देवताओ ने असुरो को पराजित किया, जहाँ विविध प्रकार की गौ, अश्व एव पक्षी उत्पन्न होते है, वह हमारी प्यारी जन्मभूमि हमें ऐश्वर्य एवं तेज प्रदान करे। जिस पुण्य प्रदेश मे चारो ओर वनस्पतियो और वृक्षो की अनुपम छटा है, जो समूचे धन जन का पालन पोषण करने वाला है, उस पवित्र भूमि का, जो हमारी माता के समान है हम सदा गुणानुवाद करते है।'

इन मत्रो मे जो कुछ कहा गया है वह हमारे लोक गीतो का मूल सदेश है। वेदो के युग से आज तक जो यह भाव धारा चली आयी है, उसको लोक गीतो मे ही प्रश्रय मिला है

एक अन्य वैदिक मन्त्र है —

उपहूता इहगात्र उपहूता अजावय ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषुन ॥
उपहूना भूरिधना सखाय स्वादु सन्मुद ।
अरिष्टा सर्व पुरुषागृगान सन्तु सर्वदा ॥

'हमारे इन प्यारे गृहो मे दूध देने वाली गाये हैं, भेड और बकरियाँ है। अन्न को अमृत तुल्य सुस्वादु बनाने वाले विविध पदार्थ है। प्रचुर धन वाले मित्र हमारे इन्ही गृहो में आते रहते हैं। वे हंसी खुशी के साथ हमारे सग स्वादिष्ट भोजन करते है। हमारे गृहो ! तुम्हारे अन्दर रहने वाले समस्त प्राणी (पशु पक्षी भी) निरोग और अक्षीण रहे और उनका किसी प्रकार से भी ह्रास न हो।'

इस उद्धरण मे जो कहा गया है वह हमारी आज की कामना का भी द्योतक है। परन्तु आज हमारा देश विपन्न है। उसके तन मन दोनो दुर्बल है। हमे यह स्थिति बदलनी है और अपने देश को धन धान्य से पूर्ण और अपने समाज को सुखी और समृद्ध बनाना है। हमे ऐसी स्थिति ला देनी है जिसमे वैदिक युग के वे सपने पूरे हो सके जिन्हे हमारे ऋषियो ने देखा था और जो आज भी अधूरे है।

इस विजय अभियान मे हमारे लोकगीतो का स्थान और सहयोग महत्व-पूर्ण होगा। इसलिए हमे अपने लोक गीतो का अध्ययन और उनकी व्याख्या अधिक सहानुभूति उदारता और जाग्रत राष्ट्रीय चेतना के सहारे करनी होगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारी सास्कृतिक चेतना जिस द्रुत गति से बढ़ी है और पश्चिमी सभ्यता का घटाटोप जिस तीव्रता के साथ छिन्न भिन्न हुआ है और अब भी होता जा रहा है उसे देख कर हमारा आत्मविश्वास बढ़ता है और अपने भविष्य के प्रति हम नित्य प्रति अधिकाधिक आश्वस्त होते जाते हैं।

हमारे लोक गीत, लोक जीवन के सारे तत्वो को उभारने वाले, उन पर, प्रकाश डालने वाले, सीधे-सादे, सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं।

लोकगीत ऐसी वस्तु नही है जिनका अध्ययन लोक जीवन से अलग रह कर, बन्द कमरे मे बैठ कर, किया जा सके। इनको समझने, इनका मूल्य पहिचानने, इनकी सही व्याख्या कर पाने के लिए हमे वहा जाना पडेगा, उस लोक मे जाना पडेगा जहाँ 'अग्नि देव' भी जाने से इन्कार करते है। हमे वहाँ पूरी श्रद्धा, पूरी आस्था और पूरे विश्वास के साथ जाना पडेगा, क्योकि हम वही उन गीतो मे रम कर, उनके मूल तक पहुँच कर ही वह हीरा पा सकेंगे जो युगो युगो से हमारे समाज को ज्योति देता आया है और आगे भी देता रहेगा।

अगले पृष्ठो मे जिन गीतो का अध्ययन किया गया है उन्हे पढ़ कर हमारे पाठको को ग्राम गीतो, लोक गीतो के सच्चे सदेशो सच्चे उद्देश्यो का कुछ आभास अवश्य मिल जाएगा। इन गीतो की व्याख्या करते समय हमने कोई नई बात कहने की कोशिश नही की क्योकि लोक गीतो का अर्थ तो अत्यन्त सीधा और सरल होता ही है। हमने यहाँ श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संगृहीत 'ग्राम गीत', श्री कृष्णदेव उपाध्याय कृत 'भोजपुरी ग्रामगीत', श्री दुर्गाप्रसाद सिह प्रणीत 'भोजपुरी गीत मे करुण रस', श्री श्याम परमार कृत 'मालवी लोकगीत', श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'बला फूले आधीरात', 'धरती गाती है' और 'बाजत आव ढोल', श्री सूर्यकरण पारीक कृत 'राजस्थानी लोकगीत', श्री हरप्रसाद शर्मा कृत 'बुन्देलखण्डी लोक गीत' तथा अन्य पुस्तको और पत्रिकाओ से गीतो को चुन कर उनमे से कुछ की व्याख्या की है। व्याख्या करते समय हमने सर्वत्र इस बात का ध्यान रखा है कि अब तक विभिन्न गीतो के जो अनुवाद हो चुके है, उनसे अलग जाकर कोई सर्वथा नयी बात कहने को कोशिश न की जाय, बल्कि उनका सहारा लेकर ही, विभिन्न गीतो मे छिपे सामाजिक तत्वो को उभार कर, उजागर करके सामने रखा जाय। फिर भी यदि हमारे पाठको को कही कोई नयी वस्तु मिल जाय, नया तत्व हाथ लग जाय, अथवा नयी दृष्टि मिल जाय तो वे चौके नही। वे विश्वास कर कि इन लोक गीतो मे अगणित ऐसी बाते भरी हुई है, जो प्रकाश में आने के लिए बेचैन हो रही है।

यह सही है कि इस क्षेत्र में काम करने वाले समर्थ विद्वानो ने अब तक

पर्याप्त प्रयास किया है और उनका प्रयास बहुत अशो तक सफल भी हुआ है। परन्तु संतोष करके बैठ रहने का समय अभी नहीं आया है। हमारे हिन्दी क्षेत्र के विभिन्न स्थानो मे अभी अगणित बहुमूल्य लोकगीत बिखरे पडे है। उनका सग्रह अधिक तेजी और चुस्ती के साथ होना चाहिए। यदि हमारे ये गीत हमारी सुस्ती के कारण खो गये, धूल मे मिल गए, स्मृति पटल से उतर गए, तो हम अपराधी ठहराये जायंगे।

हमारे यहा लोकगीतो के सग्रह का काम तो थोडा बहुत हुआ है। गीतो के भावार्थ या शब्दार्थ भी दिए गए है। परन्तु उनका मूल्याकन अभी तक पूरी तौर से नही हो पाया है, न उनकी सामाजिक व्याख्या ही ठीक तरह हो पायी है। अब इस कार्य मे देर नही होनी चाहिए क्योकि हमे यथाशीघ्र 'जाति, वर्ण, सस्कृति, समाज से चाल कर मूल मनुज को फिर से खोज निकालना है।'

'लोकगीतो की सामाजिक व्याख्या' पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है। जिस समय 'अमृत पत्रिका' मे यह व्याख्या लेख-माला के रूप मे प्रकाशित हो रही थी उस समय श्रद्धेय पडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा था 'लोकगीतो पर आपकी लेखमाला बडी सुन्दर निकल रही है। आप बडी गहराई से समाज मे व्याप्त सस्कृति को देख रहे है। मै बडे ध्यान से पढता हूँ। मेरे 'ग्रामगीत संग्रह' का सच्चा लाभ आप ले रहे है, यही उसकी सार्थकता है।' त्रिपाठी जी के इस पत्र से मेरा उत्साह बढा और जब डाक्टर उदय नारायण तिवारी, डाक्टर महादेव साहा तथा अन्य विद्वान मित्रो ने कहा कि यह व्याख्या पुस्तक रूप मे आ जानी चाहिये तो मेरा भी साहस हुआ और मैने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि फिर से तैयार की और भाई नर्मदेश्वर चतुर्वेदी की तत्परता से पुस्तक प्रकाशित भी हो गई।

मैने गीतो की व्याख्या के पूर्व 'सिद्धान्त' का एक अध्याय दे दिया है। इससे पाठको को लोकवार्ता तथा लोकगीतो से सबधित कुछ भ्रमो को दूर करने मे अवश्य सहायता मिलेगी। गीतो का अध्ययन समाप्त करके मैने 'लोक गीत सग्रह' का एक अध्याय और जोड दिया है। गीतो के चुनाव मे किसी विशेष सिद्धान्त का विचार मैने नही किया। पाठको को चाहिए कि वे इनमे से

अपने प्रिय गीतो को चुन कर उनका अध्ययन करे और उनके मर्म तक पहुँचे। उन्हे इन गीतो मे ऐसे तत्त्व मिलेगे कि वे चमत्कृत हो जायगे। जिन मित्रो की पुस्तको से मैने ये गीत सगृहीत किये है, उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। उनकी क्यारियो से मैने कुछ फूल चुन लेने का 'अपराध किया है। यह 'अपराध' मै लिखित रूप मे स्वीकार करता हूँ।

पुस्तक के अन्त मे परिशिष्ट १ मे समार प्रसिद्ध विद्वान अकेडेमीशियन शोकोलव की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'रशियन फोकलोर' के प्रथम अध्याय का भावार्थ दे दिया गया है। हमारे पाठक इसे सिद्धान्त' वाले अध्याय के पूरक के रूप मे स्वीकार करेगे। परिशिष्ट २ मे मैने लोक सस्कृति के अध्ययन के लिए 'लोक सस्कृति समाज' के निर्माण की माँग की है और तत्सबधी योजना का एक प्रारूप भी दे दिया है। मेरा विश्वास है कि यदि सरकार और जनता दोनो आपस मे सहयोग कर तो यह योजना सफल हो सकती है और सम्पूर्ण लोक सस्कृति का अध्ययन सम्भव हो सकता है। परिशिष्ट ३ के अन्तर्गत मैंने लोक वार्ता से सबधित साहित्य की एक सूची दे दी है। इस सूची के लिये मैं डाक्टर महादेव साहा, भाई श्याम परमार तथा श्री सुरेन्द्र पाल सिंह का कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक मे ऐसे अनेक गीत है जिन्हे मैंने माई से सुना था। उसके आँसुओ से भींगे ये गीत मेरी आत्मा मे बसे हुए हैं। सोचा था यह पुस्तक माई को ही भेट करूँगा। पर पुस्तक उसके जीवनकाल मे छप न सकी। गत २७ अक्तूबर १९५५ ई० को वह हम सबको छोड़ कर चली गयी। अब इस पुस्तक को देख कर किसकी आँखो मे स्नेह के आँसू छलछला आयेगे ?

माई की यह देन अब उसी की पुण्य स्मृति मे भेट है।

२ डी, मिण्टोरोड,
इलाहाबाद
होली, १९५६ ई०

श्रीकृष्ण दास

सिद्धान्त

इस समय जब कि हमारे राष्ट्र का नव निर्माण हो रहा है और हमारे सास्कृतिक जीवन का फिर से सस्कार हो रहा है यह उचित है कि हमारा ध्यान उन निधियो की ओर जाय जिन्हे हमने भुला दिया था, जिनकी हमने उपेक्षा की थी अथवा हीरा होते हुए भी जिन्हे हमने काच का टुकडा समझकर फेंक दिया था। सैकडो वर्षो की गुलामी के कारण हमारी चेतना कुठित हो गयी थी, अपनी संस्कृति के विभिन्न अगा की ओर से हमने मुँह मोड लिया था, पश्चिम की सभ्यता के चकाचाध मे हम अपनी मूल्यवान थातियो को अनदेखी करने लगे थे, जिन बाता पर हमे गर्व होना चाहिए था वे हमारी ग्लानि का कारण बन गयी थीं। हम साहित्य, कला और इतिहास को नीची निगाहों से देखने लगे थे। हमारा आत्मविश्वास खो गया था। हमारा स्वाभिमान मरने लगा था।

परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन ज्यो-ज्या प्रगाढ होता गया त्यो-त्यो हमारी राष्ट्रीय चेतना भी बढने लगी और हम धूल मिट्टी मे सने अपने हीरो को धीरे-धीरे पहिचानने लगे। इसीलिये सैकडो वर्षो की पराधीनता के बावजूद हमारा सब कुछ बिल्कुल मिट नही गया, नष्ट नहीं हो गया। यह सही है कि अपने इतिहास, साहित्य, कला आदि सम्बन्धी अनुसन्धानो मे हमे विदेशी तत्वान्वेषियो, अनुसधानकर्ताओ और विद्वानो से बहुत मदद मिली, परन्तु यह भी सही है कि उनमे से अनेक विद्वाना ने हमारे इतिहास की गलत व्याख्या की, हमारे साहित्य का मजाक उडाया और हमारी कलाओ को हीन और निम्न कोटि का बतलाया। हो सकता है कि इस प्रकार इन महानुभावो ने साम्राज्यवादी हितो को साधने का प्रयत्न किया हो, परन्तु इसका प्रभाव अच्छा ही हुआ। इससे हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान को ठेस लगी और हम समय रहते जाग गये। हम अपने इतिहास, साहित्य और कला से बरबस प्रेम करने लगे।

राष्ट्रीय नव जागरण और नव चेतना के फलस्वरूप तथा पाश्चात्य विज्ञान के सम्पर्क मे आने के कारण हमारी मनोदशा बदली, हमारी रुचियो मे परिवर्तन आया, हमारा इतिहास फिर से लिखा गया, उसकी व्याख्या मे आमूल परिवर्तन हुआ और पहाडी चूहा शिवा जी छत्रपति शिवाजी बने और सन् १८५७ के सिपाही बगावत को प्रथम राष्ट्रीय युद्ध के रूप मे देखा समझा गया। अब पूरे भारतीय साहित्य को ब्रिटेन की किसी एक लाइ-ब्रेरी की एक आलमारी मे रखने लायक कह सकना असम्भव हो गया था। सस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रश साहित्य का फिर से मूल्याकन हुआ। हम उसका महत्व पहिचानने लगे। राजदरबारा से बहिष्कृत, विद्वाना तथा कवियो द्वारा उपेक्षित 'गिरा ग्राम्य' हिन्दी का राज मार्ग प्रशस्त होने लगा। हिन्दी साहित्य का मूल्याकन हुआ, उसका इतिहास लिखा गया और उसके राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने क सपने धीरे-धीरे पूर होने लगे। यह बडी बात थी, बहुत बडी बात थी। इसी तरह अजन्ता, एलिफेन्टा, एलोरा, खजुराहो, साची, सारनाथ, अर्बुदगिरि, तक्षशिला, नालन्दा आदि की ओर भी हमारा ध्यान गया। असख्य मसजिदा, मन्दिरो की भव्यता और उत्कृष्टता ने हम आकृष्ट किया। नृत्य, सगीत, अभिनय, रगमच—कभी जिनकी उपेक्षा करने म हम शान समझते थे, अब हमारे सास्कृतिक जीवन का मूल आधार बन गये। यह सब हमारी जातीय जागरुकता, राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण था।

महत्वपूर्ण कार्य

अपने प्राचीन साहित्य का अनुसधान करते समय हमारा ध्यान बरबस 'लोक साहित्य' की ओर गया। लोक साहित्य के साथ हमारा ध्यान लोक-कलाओ और लोक नृत्य आदि की ओर भी स्वभावत गया। राष्ट्रीय, पुनर्जागरण की ओर यह एक बडा कदम था। जब हमारे साहित्यसेवियो ने लोकगीतो को एकत्र करना आरम्भ किया, लोक गाथाओ को सग्रहीत करना शुरू किया, लोक कलाओ को देखा, परखा, समझा, लोक नृत्या का अध्ययन किया तो वे अवाक् रह गये। इतनी बडी निधि की इतनी उपेक्षा, इतना अपमान! यह कैसे हुआ? क्यो हुआ? यह हमारी किस कुत्सित

मनोदशा का, किस मानसिक विकृति का, किस गुलामाना जेहनीयत का परिचायक था? हमने इसका उत्तर ढूँढा, हमने इसकी चुनौती स्वीकार की। यह हमारी बहुत बडी विजय थी। अब हम अपने को धीरे-धीरे पहिचानने लगे थे।

(अपने को जानने पहिचानने की यह प्रक्रिया ही हमे लोक साहित्य और लोक कला की दिशा मे ले गयी थी।) कहना चाहिए कि यही आत्मान्वेषण अथवा आत्मानुसधान की प्रेरणा हमे अपने भूले रूप को, मूल्यो को पहिचानने, समझने के लिये उकसाती रही।

पतजी ने कभी कहा था—

आज मनुज को खोज निकालो
जाति वर्ण सस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से चालो।

इस मूल व्यक्ति को, सदियो की पराधीनता, रूढिवादिता, अशिक्षा, अज्ञान, उपेक्षा, अश्रद्धा और अनाचारो ने छिपा रक्खा था। उसे ढूँढ निकालने की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। 'सभ्यता सस्कृति से निर्वासित' भारतीय ग्राम जीवन की ओर हम मुडे तो चमत्कृत होकर रह गये। उन्नीसवी सदी के दूसरे पक्ष मे ही अनेक विद्वानो का ध्यान इस ओर जाने लगा था और भारत तथा भारत के बाहर इस सम्बन्ध मे अध्ययन, अनुसन्धान आरम्भ हो गया था। अमेरिका, इगलैड, जर्मनी, फ्रास आदि देशो मे जागरूक विद्वानो, नृशास्त्रवत्ताओ, इतिहासज्ञो, साहित्य सेवियो, कवियो और आलोचको ने लोक-साहित्य के बिखरे तत्वो को बटोरना और उनका अनुशीलन अध्ययन करना आरम्भ कर दिया था।

स्वय हमारे देश मे विदेशी तथा स्वदेशी विद्वानो ने इस क्षेत्र मे बहुत काम किया और सास्कृतिक जीवन की इस धूलसनी कडी को फिर से चमका दिया। इन विद्वानो ने वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध तथा जैन और सस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। उन्होने पालि, प्राकृत, अपभ्रश आदि के साथ क्षेत्रीय बोलियो का भी अध्ययन किया और गम्भीर मनन, चिन्तन

विश्लेषण के बाद इस पूरे साहित्य को छानकर लोक साहित्य की डोरियोका पता लगाने का प्रयास किया।

इस क्षेत्र मे भारतीय विद्वानो ने भी बहुत काम किया और इस विषय पर पूरा प्रकाश डाला। हिन्दी, बगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पजाबी, गढवाली, नेपाली, सथाली आदि लोकगीतो का सग्रह आरम्भ हुआ। हिन्दी की बोलियो, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखन्डी आदि मे भी बहुत काम हुआ और अनेक विद्वानो ने अपने अनुसधान और अनुशीलन के फलस्वरूप डाक्टरेट भी प्राप्त किया। विश्वविद्यालयो मे जब इस विषय को मान्यता मिली और खोज तथा शोध का कार्य जब अधिक वैज्ञानिक ढग से होने लगा तो विद्वानो और भाषा तथा साहित्य प्रेमियो और हमारे समाजिक नेताओ ने लोक साहित्य का महत्व समझा। अब तो यह स्थिति आ गयी है कि लोक साहित्य का ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई भी साहित्यकार अथवा साहित्य का विद्वान अपनी साधना को पूर्ण नही समझता।

लोक साहित्य की ओर हमारा ध्यान दिलाने वाले विद्वाना ने बडा महत्व पूर्ण कार्य किया इसमे कोई सन्देह नही। मगर कोरी विद्वत्ता के सहारे लोक साहित्य का सच्चा मूल्याकन नही हो सकता विद्वता के साथ सहानुभूति की बडी आवश्यकता होती है, वह सहानुभूति जो हमे इस लोक साहित्य के रस मे डुबा दे, जो हमे इस योग्य बना दे कि हम भाषा सौष्ठव, व्याकरण तथा पिगल की सीमाओ को लाघकर लोक साहित्य की आत्मा तक पहुँच सके, जो हमे पुरखो के जीवन पर गर्व करना सिखा दे, जो हमे ऐसी दृष्टि दे कि हम लोक साहित्य के माध्यम से अपने अतीत के सामाजिक जीवन की, आर्थिक सघर्ष की, सास्कृतिक उत्थान-पतन की झाकी देख सके, जो हममे आस्था, आत्म विश्वास और गौरव की भावना उत्पन्न कर सके। यह सहानुभूति विदेशी शासक श्रेणी के मित्रो और सहयोगियो मे कहा मिल सकती थी?

जब हमारे राष्ट्रीय सघर्ष की परिधि बढी और देश के कोटि-कोटि कृषक उसके अविभाज्य हिस्सा बने तो हमारा ध्यान उनके जीवन की ओर

गया और उसी के साथ हम लोक साहित्य से भी परिचित हुए। हिन्दी क्षेत्र का ही उदाहरण लें। यह सही है कि इस क्षेत्र में काफी पहिले से काम होता रहा है, परन्तु हजारों मील की पैदल यात्रा करके, देश के विभिन्न भागों के किसानों से मिलकर उनके गीतों का संग्रह सबसे पहिले पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने किया। लोक साहित्य के अध्ययन की जो धारा रुक रुक कर धीरे धीरे बह रही थी, अब 'ग्राम गीत' के प्रकाशित होने के बाद बलवती महाधारा बन गयी, अब उसकी गति को अवरुद्ध करना सम्भव नहीं था।

लोक साहित्य, लोक गीत, लोक नृत्य तथा लोक कला की ओर आकृष्ट होना, उनका पुनर्मूल्यांकन करना, उसके जीवित तत्वों से प्रेरणा लेना हमारी सदा गहरी होती हुयी राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक था। यह सही है कि जिस प्रकार संस्कृत के विद्वान प्राकृत अथवा अपभ्रंश को हेय दृष्टि से देखते थे और उसे शिष्ट साहित्य में स्थान देने से हिचकते थे, वैसे ही खड़ी बोली हिन्दी के साहित्यकार और विद्वान लोक साहित्य को नीची निगाह से देखते रहे हैं। शिष्ट साहित्य और ग्राम साहित्य का झगड़ा काफी पुराना है। गोस्वामी तुलसीदास को 'गिरा ग्राम्य' के कारण बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं। तब से आज तक किसी न किसी रूप में शिष्ट और सुसंस्कृत साहित्य तथा ग्रामीण साहित्य का भेद चलता आ रहा है। सरकारी कार्यों, शिक्षालयों तथा नागरिक जीवन में शिष्ट साहित्य को ही स्थान मिलता रहा है। भाषा के अन्य दोषों के साथ 'ग्राम्य दोष' भी माना जाता है रहा है। फलतः अब भी अधिकतर विद्वान लोक साहित्य को अजायबघर की खूबसूरत चीजों की तरह ही देखते हैं। वे उसे मरी हुई वस्तु समझते हैं। वे उसे जीवित, प्रेरणा दायी साहित्य नहीं मानते। वे उसे क्षणिक मनोरंजन का साधन भर मानते हैं। वे उसे भारतीय जन जीवन के दर्पण के रूप में स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार हमारा शिष्ट समाज कृषक श्रमिक वर्ग को दया का पात्र मानता है और उसके साथ उपकार करना चाहता है, उसे उसका सहज प्राप्य नहीं देना चाहता, बल्कि उसके जन्म-सिद्ध अधिकारों से उसे वंचित रखना चाहता है, उसी प्रकार शिष्ट साहित्य में दखल रखने

वाला साहित्यकारो का, विद्वानो का समाज भी लोक साहित्य और लोक कला के प्रति दया भाव प्रदर्शित करता है। यह दुख की बात है। यह स्थिति अस्वाभाविक है। यह मगल का मार्ग नही ह।

स्वाधीनता का सघर्ष तो आत्मोपलब्धि का सघर्ष होता है और स्वाधीनता की प्राप्ति आत्मोपलब्धिका अत्यन्त ऊचा सोपान। आत्मोपलब्धि की यह सामाजिक प्रक्रिया ही हमे जन जीवन की ओर आकृष्ट करती है। वहीं हमारा सच्चा स्रोत है, आधार है, हमारी प्रगति और चेतना का पहिला मील का पत्थर है। उसकी उपेक्षा करके, उसे हेय समझकर, उसका निरादर करके सच्चे अर्थ मे शिष्ट साहित्य का सृजन हो नही सकता। जिस प्रकार जमीन से उखडा हुआ पौधा फल फूल नही सकता उसी प्रकार लोक साहित्य और जन जीवन की उपेक्षा करने वाला शिष्ट साहित्य भी समृद्ध और महान नही हो सकता। आज नहीं तो कल हमारे शिष्ट समाज को और शिष्ट साहित्य के सर्जको को इस तथ्य के आगे सिर झुकाना पडेगा।

यह प्रक्रिया आरम्भ भी हो गयी है। ज्यों ज्यों हमारा शिष्ट समाज विदेशी सभ्यता की मृगमरीचिका से मुक्त होता जा रहा है त्यों त्यो वह अपने जीवन मूल्यो के प्रति सजग होता जा रहा है। वह मुड कर अपने खेतो खलिहानों, नदी नालो, बन पर्वतो, किसान मजदूरों, हरिजन अन्त्यजो, एक शब्द मे अशिष्ट, असस्कृत लोगो की ओर देखने लगा है, उनके जीवन मे, उनके साहित्य मे, उनके गीतो नृत्यो, अभिनयो मे उन तत्वों को ढूढने लगा है जिनके सहारे वे सहस्त्राब्दियो तक पीडित, शोषित, पददलित रहने पर भी जिन्दा रह सके है। मै इस प्रक्रिया का स्वागत करता हूँ क्योकि मै इसे राष्ट्रीय पुनरोज्जीवन के क्रम मे आवश्यक सोपान के रूप मे देखता हूँ। अब लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन और सहानुभूति पूर्ण मूल्याकन का समय आ गया है। हमारी राष्ट्रीय चेतना की यही माग है, यही चुनोती हे।

वैज्ञानिक अध्ययन

अब तक लोक साहित्य, विशेषतया लोक गीतों के सग्रह का ही काम अधिक मात्रा मे हुआ है। इन सग्रहीत लोक गीतो के अध्ययन

मे चार प्रणालियो का सहारा लिया गया। रस की दृष्टि से लोक गीतो का अध्ययन बहुत प्रचलित प्रथा है। ऋतुओ के अनुसार लोक गीतो का विभाजन करके उनका अध्ययन किया गया है। तीज त्यौहारो, पूजा उत्सवो, विभिन्न सस्कारो के आधार पर भी इनका अध्ययन किया गया है। श्रम के आधार पर भी लोक गीतो को इस प्रकार बाटना अवैज्ञानिक नही कहा जा सकता। मगर प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार इन गीतो का अध्ययन करना किसी भी अर्थ मे पूर्ण और पर्याप्त कहा जा सकता है? निवेदन है कि जब तक इन गीतो की व्याख्या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से नही की जाती तब तक इनका अध्ययन पूरा नही कहा जा सकता। भाषा विज्ञान वेत्ता, शब्दो की उधेड बुन मे रह जाता है। रस शास्त्र का पडित विभिन्न गीतो मे करुणा, वीर, शृगार आदि रसो को ढूढ कर तृप्त हो लेता है। जाडा, गर्मी, बरसात के चिरपरिवर्तन शील काल सचरण को महत्व देने वाला व्यक्ति वियोग और सयोग के उहापोह मे अपनी शक्ति समाप्त कर देता है। विभिन्न सामाजिक अवसरो पर गाए जाने वाले गीतो को सुनकर अनेक लोक साहित्य प्रेमी इन्ही के आधार पर लोक गीतो का विभाजन कर देते है। बोआई, निराई, कटाई, ओसाई और घर मे गल्ला रखने की प्रक्रिया के देखने वाले विद्वान इन गीतो को इन्ही कार्यों के आधार पर बाट देते है। परन्तु समस्त लोक जीवन को सचालित करने वाले जिन सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक और आर्थिक तत्वो पर इन लोक गीतो मे प्रकाश डाला जाता है, जिन कठोर सच्चाइयो की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया जाता है, जो सामाजिक और आर्थिक कुघडताएँ, विषमताएँ, अत्याचार, अनाचार, चुनोतिया, सघर्ष और विजय की प्रक्रियाएँ इनके झीने आवरण के पीछे से झाकती रहती है उनकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट नही होता। फलत हमारे अन्दर उनके प्रति सच्ची सहानुभूति नही जाग्रत हो पाती, हम उन गीतो के रचयिताओ की सच्ची मार्मिक पुकारो को सुन नही पाते, हम उन्हे ठीक ठीक समझ नही पाते, हम उनका समुचित मूल्याकन नही कर पाते, हम उनके प्रति साधारण न्याय भी नही कर पाते।

जब हम लोक साहित्य अथवा लोक कला का अध्ययन करने लगते हैं तो स्वभावत: अनेक प्रश्न हमारे सामने आ जाते हैं। यदि हम लोक साहित्य अथवा लोक कला के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि इनका उपयोग आज के सर्वतोमुखी निर्माण में सम्यक् रूप से हो, तो हमें इन प्रश्नों का उत्तर भी ढूँढ़ना पड़ेगा।

जो प्रश्न हमारे सामने आते हैं वे इस प्रकार हैं (१) आज के वैज्ञानिक युग में, जब कि सामन्तवादी समाज व्यवस्था समाप्त हो रही है, लोक साहित्य की क्या उपयोगिता है ? (२) लोक साहित्य का चर्चा करना और उसे अनावश्यक रूप से महत्व देना क्या प्रतिगामिता का चिह्न नहीं है ? क्या इससे राष्ट्रीय एकता, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में बाधा नहीं पहुँचती ? (३) लोक साहित्य और लोक कलाओं का भविष्य क्या है ? (४) लोक शब्द का अर्थ क्या है ? ग्राम साहित्य को लोक साहित्य क्यों कहा जाय ? (५) इस युग में लोक साहित्य का अध्ययन क्यों शुरू हुआ ? (६) क्या लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य और लोक कला तथा शिष्ट कला में कोई सम्बन्ध हो सकता है ? (७) लोक साहित्य के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए ? लोक साहित्य का अध्ययन किस प्रकार होना चाहिए ? (८) क्या लोक साहित्य तथा लोक कला के अध्ययन से राष्ट्रीय नव निर्माण में कोई सहायता मिल सकती है ? हम यहाँ इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

जैसा कि हम जानते हैं, लोक साहित्य तथा लोक कला की उपेक्षा सदैव, सभी युगों में, शासक श्रेणी द्वारा हुई है। शासक श्रेणी ने सदैव लोक साहित्य और लोक कला के गर्भ से उत्पन्न शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला को पश्रय दिया। परन्तु जनता ने सदैव लोक कला और लोक साहित्य को ही प्रश्रय दिया। वह इसी की भाषा और भाव भंगिमा समझती थी। इसी के माध्यम से अपने जीवन को, उसके संघर्षों को, उसके सुख दुख, आशा निराशा, जय पराजय की भावना को अभिव्यक्त करती रही।

यह एक विचित्र बात है कि प्रायः सभी विद्वान एक मत से स्वीकार करते हैं कि समस्त शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला की उत्पत्ति लोक साहित्य और लोक कला से हुई, परन्तु वे यह नहीं कहते कि शिष्ट साहित्य और शिष्ट कला को जन्म देने के बाद भी लोक साहित्य नष्ट नहीं हो गया, लोक कला मर नहीं गयी, बल्कि वह जीवित रही, जन जीवन के संरक्षण में विकसित होती रही। ये लोग यह नहीं देखते कि लोक साहित्य और लोक कला का विकास क्रम कभी रुका नहीं, प्रत्येक युग में जन साधारण के सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति उसी के माध्यम से होती रही। ये विद्वान यह भी नहीं देखते कि प्रत्येक युग में शिष्ट साहित्य तथा कला का जो विकास हुआ, उसकी जो समृद्धि हुई उसमें लोक साहित्य और लोक कला का सदैव बहुत बड़ा हाथ रहा।

इस सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुयी हैं। सब से बड़ी भ्रान्ति यह है कि लोक कला अथवा लोक साहित्य किसी सुदूर अतीत की वस्तु है। वे उसे पुरानी मूर्तियों, शिला लेखों अथवा भग्न स्तूपों की कोटि में रखकर देखना और उसकी कीमत आँकना चाहते हैं। यह सही है कि हमें अनेक ऐसी प्राचीन लोक कलाएँ मिलती हैं, लोक साहित्य के अनेक ऐसे चिह्न मिलते हैं जो अति प्राचीन और अति समृद्ध हैं, जिनकी उत्कृष्टता पर हम चकित हो जाते हैं, जिनको देखकर हमें उनकी प्राचीनता पर सन्देह होने लगता है। फिर भी हमें यह समझना चाहिए कि युग प्रति युग हमारी लोक कलाओं में परिवर्तन और विकास होता रहा है। और, लोक साहित्य में भी परिवर्द्धन और परिष्कार होता रहा है। उसके रूप बदलते रहे हैं। वे विकसित होते रहे हैं, परन्तु वे सदैव जीवित रहे हैं। इसलिये लोक साहित्य और लोक कला को सुदूर अतीत का शानदार अवशेष समझना और उन्हें इसी रूप में स्वीकार करना सर्वथा गलत है।

जो लोग पुरानी खेतिहर सभ्यता को वापिस लाना चाहते हैं, जो लोग वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक प्रगति और नवीन सामाजिक व्यवस्था की ओर से आँखें बन्द करके पुराण पंथी ढंग से सोचते हैं, जो लोग आदि

सभ्यता को आधुनिक सभ्यता से ऊँची समझते हैं और समाज को वहीं पहुँचा देना चाहते हैं जहाँ से बढ़कर वह आज के स्तर तक पहुँचा है, उनकी बात हम नहीं करते। ये लोग लोक कला और लोक साहित्य के प्रति वही रुख रखते हैं जो हम सीधे सादे भोले बच्चों की ओर रखते हैं। वे लोक कला और लोक साहित्य की सहजता, सरलता, मिठास पर ही मुग्ध होकर रह जाते हैं। वे यह नहीं देखते कि उनके प्रतीकों में कितनी प्रौढ़ता है, नवीनता के प्रति उनमें कितना आग्रह, कितनी ममता है, उनमें मानव की मर्यादा के प्रति कितनी सजगता, जीवन के प्रति कितनी आस्था और सत्य के प्रति कितना प्रेम है।

रूप-सौष्ठव

लोक साहित्य और लोक कला के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह भी है कि वह भोंडा होता है, उसका कोई सुनिश्चित रूप रंग नहीं होता, वह असंस्कृत, बर्बरता पूर्ण, अशिष्ट और असुन्दर होता है। यह बात भी बहुत गलत है। प्राचीन युगों का राज समाज और उसके चाटुकार लोग लोक कला और लोक साहित्य की ओर यही रुख रखते थे। हमारे विदेशी शासक हमारे उत्कृष्टतम साहित्य और कला की ओर यही रुख रखते थे। आज भी नगरों में रहने वाला तथा कथित शिष्ट समाज हमारी लोक कलाओं और लोक साहित्य की ओर यही रुख रखता है। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में शोषण के आधार पर जो वर्ग शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेने में सफल हो गया, यदि वह शासितों, पददलितों, उपेक्षितों की कला और साहित्य को नीची निगाह से देखे तो यह स्वाभाविक ही है। कोल, भील, संथालों और आदिवासियों की कलाओं के प्रति शासक श्रेणियों और शिष्ट समाज का रुख क्या है? और, जब ये लोग इन पिछड़ी जातियों को सभ्य बनाने के लिए जाते हैं तो उन पर क्या गुजरती है, उनको कितनी पीड़ा होती है, उनके कला तत्व किस प्रकार धीरे धीरे नष्ट होते जाते हैं इसकी ओर कौन ध्यान देगा? उनकी राम कहानी कौन सुनेगा?

यदि यह मान लिया जाय कि जन साधारण भी उत्तम और उत्कृष्ट कला कृति प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि वह समाज में उच्चातिउच्च स्थान भी प्राप्त कर सकता है। परन्तु क्या हम यह स्वीकार करने के लिये तैयार हैं? हम इस युग में भी हरिजनों तथा अन्त्यजों के साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह यही साबित करता है कि हम यह मानने से इनकार करते हैं कि कविता, सङ्गीत, कला आदि किसी भी क्षेत्र में इनकी देन उतनी ही महत्वपूर्ण हो सकती है जितनी उच्च वर्ण वालों या तथाकथित कुलीनों की। कमाल यह है कि हमारे साहित्य में कबीर, दादू, पीपा आदि अगणित उदाहरण मौजूद हैं फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं और हम असलियत को नहीं देख पाते। सच तो यह है कि जब हम इन कोल, भील, संथालों और आदिवासियों का रहन सहन, नृत्य संगीत आदि देखते हैं, जब हम लोकगीतों की मधुर तानें सुनते हैं, जब हम अहीरों, चमारों, धोबियों का नाच देखते हैं, जब हम झूलों की पेंगों, जांतों और खेतों खलिहानों से उठती स्वर लहरियों को सुनते हैं तो हमें यह निश्चय करना मुश्किल पड़ जाता है कि अधिक सभ्य और सुसंस्कृत कौन है, ये तथा-कथित पिछड़े लोग, या हम तथाकथित स्वनाम धन्य नागरिक लोग! अस्तु।

लोक कला और लोक साहित्य की दुर्दशा इन तथाकथित, शिष्ट, सभ्य, सुपठित लोगों के हाथों से होती रहती है और वह दया और संरक्षण का पात्र बना रहा है। वह मनोरंजन का साधन बना रहा है, लोग उसका आनन्द लेते रहे हैं। परन्तु वे उससे प्रेरणा नहीं प्राप्त करते थे (यदि हम कहें कि हमारे रागों में जो कुछ है उसका आधार जनता द्वारा बनायी धुनें हैं, राग हैं तो कोई विश्वास न करेगा) यदि हम कहें कि जिस कथक और मणिपुरी नृत्य को हम आज शास्त्रीय कला का उत्कृष्ट नमूना कहते हैं कल तक उसकी गिनती लोक नृत्यों में होती थी तो अनेक विज्ञ लोग बुरा मान जायंगे। परन्तु ये बातें सच हैं। इन्हें सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है। दस-पंद्रह वर्ष पहिले तक मणिपुरी नृत्य को वही स्थान प्राप्त था जो हमारे

इन क्षेत्रों में अन्य साधारण नृत्यों को प्राप्त है। आज मणिपुरी नृत्य शास्त्रीय नृत्य की कोटि में आ गया है। यही हाल अन्य कलाओं का भी है। मोहेन्जोदाड़ो और हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी की मूरतों, बर्तनों आदि को देख लेने पर बाद के समय की मूर्ति कला आदि की कलई खुल जाती है। भाषा के क्षेत्र में भी यही बात सच है, काव्य के क्षेत्र में भी।

इस लिये लोक कला अथवा लोक साहित्य के सम्बन्ध में विचार करते समय न तो दया या उपकार भाव से काम लेना चाहिए और न उन्हें कुतूहल और सस्ते मनोरंजन का साधन मानना चाहिए। यह मानना चाहिए कि इनके पीछे गहरे और गम्भीर मानवीय मूल्य और मान छिपे हुए हैं। यह स्वीकार करना चाहिए कि लोक कला चिरपरिवर्तनशील, चिर विकासशील है। जीवन की ही भांति उसकी गति भी अबाध रही है। उसमें सदैव जीवन के नए से नए तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता रही है। उसमें उच्च कोटि की कलात्मकता रही है। उसका बाह्यान्तर सुन्दर, आकर्षक, प्रेरणादायक रहा है।

लोक कला और लोक साहित्य के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह रही है कि इनका रचनाकार, सृष्टि कर्ता या निर्माता कोई एक व्यक्ति नहीं था, बल्कि इनका निर्माण सामूहिक प्रयास का फल है। यह बात भी बिल्कुल थोथी और निराधार है। निश्चित रूप से इन कलाकृतियों और लोक गीतों आदि के पीछे व्यक्तियों का हाथ रहा है। निश्चित रूप से, वे अपने समय में, अपने समाज में समादृत थे। परन्तु उन्होंने अपनी कला कृतियों के नीचे अपना नाम नहीं जोड़ा और उन्होंने अपनी कला कृति में सुधार, परिवर्द्धन अथवा परिष्कार करने से किसी को रोका नहीं। फलतः मूल रूप से व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी वह जन समाज की, पूरे लोक की रचना हो गयी।

हमारे समाज में प्रचलित हजारों बल्कि लाखों गीत होंगे। यदि पूरे देश में प्रचलित लोक गीत एकत्र किए जांय तो उनकी संख्या और उनकी उत्कृष्टता देखकर हम स्तम्भित रह जांयगे। तब हमें यह जान कर भी

विस्मय होगा कि इन गीतो के लेखको का कोई पता नही ! यह भी पता नही कि ये कब लिखे गये। यह भी मालूम नही कि इनका आरम्भिक रूप क्या था, इनमे कौन से परिवर्तन किस समय, किस प्रकार हुए और वे किस प्रकार हमारे सामने अपने वर्तमान रूप मे पहुँचे। यही हाल सङ्गीत का, वाद्या का, नृत्यो का और अन्य कलाओ का भी है।

लोक कला और व्यक्तियो की कला

लोक कला और व्यक्तियो की कला के उद्भव और विकास मे मूल अन्तर यही नही था कि एक का निर्माण समूह द्वारा हुआ, दूसरी का निर्माण व्यक्ति द्वारा। बल्कि इस अन्तर का कारण यह है कि एक समूह की आवश्यकताआ और प्रेरणाओ का प्रातनिवित्व करती है और दूसरी व्यक्ति की आवश्यकताओ और प्रेरणाओ को अभिव्यक्त करती है। लोक कला कार ने ऐसे कथानको, विचारो और अन्य तत्वा का उपयोग किया जो उसे जनवादी परम्पराओ मे प्राप्त हुए थे। लोक कलाकार ने उनका उपयोग करते समय उनमे विभिन्नता, विचित्रता, विशेपता, उत्पन्न की। ऐसा उसने समसामयिक आवश्यकताओ और अपना प्रेरणाआ को ध्यान मे रखकर, उनके आधार पर किया। लोक कलाकार की रचनाओ का मूल्य भी इसी आधार पर आका गया कि वह उस समूह अथवा जाति की आवश्यकताआ और प्रेरणाओ को दृष्टि से खरी उतरती है कि नहा, जिसमे उसने जन्म लिया, जिसके लिये उसने रचना प्रस्तुत की, जिसका वह अविभाज्य अग है। इस प्रकार लोक कलाकार अपनी निजी प्रेरणाओ, विचारा, आदशो और कल्पनाओ को अभिव्यक्ति प्रदान करने के बजाय पूरे समाज के जीवन, चरित्र, स्वभाव, विचार, आदर्श आदि को चित्रित करने, अभिव्यक्त करने, रूप रग देने मे समर्थ हो सका। यह बात हम समस्त लोक गीतों, लोक सगीत, लोक कथाओ, लोक नाट्यो, लोक कलाआ मे देख सकते है और हम शिष्ट साहित्य और शिष्ट कलाओ के मूल मे भी यही बात आरम्भिक रूप मे देख सकते है।

सत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर

साहित्य की परख', पुस्तक के 'सन्त काव्य की परम्परा' नामक अध्याय के अन्त में कुछ महत्व पूर्ण बातें कही हैं। चतुर्वेदी जी कहते हैं "सन्त काव्य की परम्परा तत्वतः उस काव्य रचना पद्धति की ओर संकेत करती है जो मानव समाज की मूल प्रवृत्तियों पर आश्रित है। वह किसी समय आपसे आप चल पड़ी थी और वह उसी रूप में विकसित भी होती गयी। वह उस काल से विद्यमान है जब कि भाषा के ऊपर किसी व्याकरण शास्त्र का नियंत्रण न था और न उसके काव्य रूप की व्यवस्था के लिये किन्हीं छन्दों, नियमों की ही सृष्टि हो पाई थी। स्वभावता स्वच्छन्द रूप में ही वह अग्रसर हुई थी, जिस कारण उस कविता को, काव्य सौष्ठव प्रदर्शित करने के लिए, किसी रस वा अलंकारादि सम्बन्धी शास्त्र की भी आवश्यकता नहीं थी। व्याकरण, पिंगल एवं काव्य कला, विषयक अन्य शास्त्रों की रचना क्रमशः पीछे होती गयी और उनके नियमों उपनियमों का अनुसरण करने वाली शास्त्रीय पद्धति की कविता की एक पृथक परम्परा भी चलने लगी और दोनों समानान्तर चलीं। किन्तु शिष्ट समाज अथवा सभ्य लोगों द्वारा अपनायी जाने के कारण दूसरी को क्रमशः अधिक योग दान मिलने लगा और स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करने के कारण पहिली का आदर सदा साधारण जन समाज तक ही सीमित रहता आया। पहिली की भी शृङ्खला कभी टूटी नहीं और वह अधिकतर अपने मौखिक रूप में जीवित रही। लिखित रूप में उसका केवल वही अंश पहिले संचित किया जा सका जिसमें या तो ज्ञान विज्ञान की गम्भीरता थी अथवा जिसे सर्व साधारण के प्रति उपदेश का भी रूप दिया गया। संसार के प्राचीन धार्मिक साहित्य अथवा काव्य मूलतः उक्त पहिली परम्परा के उदाहरणों में आते हैं और उन्हें लिखित रूप भी मिल गया है, किन्तु इस प्रकार की रचनाओं का एक बहुत बड़ा अंश अभी तक मौखिक रूप में भी विद्यमान है और उसे बहुधा लोक गीत के नाम अभिहित किया जाता है।

"उपर्युक्त प्रथम परम्परा प्रकृत काव्य की परम्परा है जहाँ द्वितीय कल्पनात्मक रचनाओं की प्रणाली है। अतएव प्रथम में जहाँ हमारी

आदिम मनोवृत्तियो का सरल और विशुद्ध रूप दीख पडता है वहाँ द्वितीय मे बहुत कुछ कृत्रिमता का समावेश रहता है। प्रकृत काव्य एव शिष्ट वा कलात्मक काव्य के बीच इस प्रकार का अन्तर देखकर ही सत काव्य को उक्त पहिली कोटि मे रखने की प्रवृत्ति होती है। फिर यह काव्य प्रकृत-काव्य के उस वर्ग मे आता नही जान पडता जिसे लोक गीत कहा करते है। कुछ आलोचको की धारणा है कि 'हिन्दी मे निर्गुण धारा की सज्ञा से अभिहित सम्पूर्ण साहित्य लोक गीतवर्ग का है।' और वे कतिपय कारणो की ओर लक्ष्य करते हुए यहाँ तक कह डालते है कि 'हमारा दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्य की निर्गुण धारा लोक गीतो का ही विकसित रूप है'। किन्तु ऐसे लेखक लोक गीत की उन विशेषताओ की ओर कदाचित पूरा ध्यान नही देत जो उसे सत काव्य से भिन्न सिद्ध कर देती है। लोक गीत वस्तुत किसी समाज विशेष के हृदय और मस्तिष्क को अभिव्यक्ति करता है और उसमे काव्य निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहा करता है, जहा काव्य स्वभावत किसी सत की स्वानुभूति का निदर्शन करता है, जिस कारण प्रकृत काव्य का रूप धारण करता हुआ भी वह अपनी कर्तृप्रधा-नता एव आत्माभिव्यजना (Subjectivity and Selfexpression) की महत्वपूर्ण विशेषताओ का सर्वथा त्याग नही कर पाता। इसके सिवाय लोक गीत का माध्यम बहुधा अनुश्रुति और मौखिक परम्परा द्वारा उपलब्ध होता है और उसमे अधिकतर प्रेमपरक वा रसात्मक स्थलो का ही समावेश रहा करता है, जहाँ सत काव्य के लिये ये बाते आवश्यक नही है और इसमे बहुधा धार्मिकता का पुट भी मिल जाया करता है।

"सत काव्य की लोक प्रियता उसके काव्यत्व की प्रचुरता पर निर्भर नही। वह जन साधारण के अग बने कवियो (वा क्रान्तिदर्शी व्यक्तियो) की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जन साधारण की भाषा है। उसमे साधारण जन-सुलभ प्रतीको के ही प्रयोग है और वह जन जीवन को स्पर्श करता है। वह सभी प्रकार से जन काव्य कहलाने योग्य है जिस कारण उसकी परम्परा की छोरे अमित काल तक उपलभ्य समझी जा सकती है।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जिस प्रकार लोक गीतो और सत काव्य के मूल भूत अन्तर के सम्बन्ध मे उपर्युक्त उदाहरण मे प्रकाश डाला वह सर्वथा वैज्ञानिक और तर्क पूर्ण है। जो बात सत काव्य के सम्बन्ध मे लागू है वही समस्त शिष्ट काव्य मे लागू है। लोक गीत और शिष्ट काव्य का यह अन्तर समझ लेना आवश्यक है क्योकि समस्त शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य मे यह भेद सदैव से रहता चला आया है।

लोक साहित्य मे मूल मानव बोलता है। साथ ही वह युग युग मे बदलती बोलियो को भी मुखरित करता है। उसकी व्यापकता मे कमी नही आती। उसकी अनन्तता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है। इस साहित्य मे भारतीय सस्कृति की आधार शिला लोक सस्कृति प्रतिबिम्बित होती रहती है। सच यह है कि समस्त लोक साहित्य विशेषतया इन लोक गीतो मे भारत की आत्मा बोलती है।

इसके सम्बन्ध मे महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज कहते है, "भारतीय सस्कृति मे पौराणिक कथाओ, तीर्थाटन, व्रत, उत्सव और पर्वो की जो प्रणाली परम्परागत चली आ रही है, उसी से लोक सस्कृति का सम्पादन हुआ है। इस प्रशस्त प्रणाली ने भारतीय जीवन, भारतीय सस्कृति और भारत देश को प्राणवान एव जाग्रत बनाए रखने मे बड़ा योग दिया है। कैलास से कन्याकुमारी और परशुराम कुड (आसाम) से सिन्धु तक की भाषा, रहन-सहन की विभिन्नता होते हुए भी तीर्थाटन प्रणाली देश की एकता को अविच्छिन्न बनाए हुए है। लोक गीत, लोक चित्र, लोकनृत्य, लोक अभिनय, और लोक चर्चाएँ सभी कथा प्रणाली से समुद्भूत हैं।" (कथा प्रणाली ही तो भावो के आदान-प्रदान की आरम्भिक प्रणाली थी। लोकगीतो ने धीरे-धीरे यही महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया।)

कविराज महोदय लोक सस्कृति और लोकेतर सस्कृति के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "लोक सस्कृति और लोकेतर मे उतना ही अन्तर है जितना श्रद्धा और तर्क, सहज और सजावट मे होता है। लोक सस्कृति प्रकृति की गोद मे पलती और पनपती है, लोकेतर सस्कृति आग

उगलती हुई चिमनिया, हुंकार करती हुयी मशीनो और विद्युत बल्बो से प्रदीप्त नगरो मे निवास करती है। लोक सस्कृति के उपासक या सरक्षक बाहर की पुस्तके न पढकर अन्दर की पुस्तके पढते हे। उनके हृदय सरोवर मे श्रद्धा के फूल सदैव फूले रहते हे। लोकेतर सस्कृति के उपासको, सरक्षको मे धन, पद, शिक्षा का स्वाभिमान रहता है, उनके हृदय मे तर्क की चिनगारी सुलगती रहती हैं। लोक-सस्कृति की शिक्षा प्रणाली मे श्रद्धा भक्ति की प्राथमिकता रहती हे। उसमे अविश्वास, तर्क का कोई स्थान नही रहता. लोक सस्कृति मे श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अनन्त सलिला सरस्वती की भाँति जन जीवन मे सतत प्रवाहित हुआ करती है। वस्तुत लोक सस्कृति एव लोकेतर सस्कृति तथा विश्व की सभी सस्कृतियो का बीज एक ही हे। स्थान, काल, वातावरण की विभिन्नता से ही वह विभिन्न रूप धारण करता है। जैसे जल वास्तव मे एक ही है परन्तु उसके बूद नीम के वृक्ष मे पडकर कडवाहट पैदा करते है और आम के वृक्ष मे पडकर वही रसाल बन जाते हैं। यह बीज लोक सस्कृति और भारत देश को जीवन्त बनाए हुए हे। इसी लिए इसमे जीवन है, प्राणदस्पर्श और समन्वय के अनन्त स्रोत ह।"

लोक गीतो की चुनौती

एक बात और भी विचार करने की है। हिन्दी के रीति कालीन कवियो को यदि हम ध्यान मे रखे तो हमे दो धाराये साफ दिखाई देगी। एक धारा उन कवियो की है जो सामाजिक उच्छृखलता को भुलाने, उससे जान बचाने और उस पर पर्दा डालने के लिए या तो भक्ति मार्गी हो गए थे या घोर शृगारिक। समाज की वस्तुस्थिति से मुँह मोडकर वे भगवान की ओर या फिर नायिका और उसके रूप भेदो की ओर अभिमुख हो गए थे। दूसरी धारा उन कवियो की है जो इन कुघड, अप्रिय सच्चाइयो की चुनौती को स्वीकार करने को तैयार थे। इस धारा के कवियो ने विभिन्न राजाओ, जमीदारो आदि की वीरता को उत्तेजित करना अपना धर्म समझा।

वे उनको उनके पुराने गौरव की याद दिलाते और धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए सर्वस्व स्वाहा करने की प्रेरणा भी देते।

परन्तु लक्ष्य करने की बात यह है कि इनकी सारी शक्ति इन शासकों को ही जाग्रत, सजग, कर्मठ बनाने में खर्च होती थी। जन साधारण को अनुप्राणित करने, सशक्त बनाने के लिए ये कवि अपनी वाणी को कष्ट नहीं देते थे। फलतः यदि राजा आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने में सफल रहा तो जनता का मनोबल भी बना रहता था। मगर यदि राजा हार गया तो जनता का मनोबल भी टूट जाता था, कमजोर हो जाता था। ऐसे सकट के समय जनता को अपना मनोबल कायम रखने के लिए लोकगीतों के अतिरिक्त और किस वस्तु का सहारा था ? इस समय के लोकगीतों को यदि हम ध्यान पूर्वक पढ़े तो हमको उस समय का पूरा चित्र ही नहीं मिल जाएगा बल्कि हमें यह जान कर सचमुच विस्मय होगा कि किस प्रकार इन गीतों ने हमारे लोक मानस को स्वस्थ और सबल रखा, किस प्रकार इन गीतों ने जनता की जुझारु मनोवृत्ति को बनाए रखने में मदद की। आखिर निम्नांकित पक्तियाँ किस सच्चाई, किस दृढता, किस आत्म विश्वास की घोषणा करती हैं—

छोटी मोटी दुहनी दुधै कै
बिना रे अगिनि बाफ लेइ, बलैया लेऊँ बीरन।
इहै दूध पियै बीरन मोरा,
भइया लडै मोगलवा के साथ, बलैया लेऊँ बीरन।

इतनी मार्मिक, इतनी व्यापक, इतनी चुनौतीपूर्ण पक्तिया लोक गीतों के अतिरिक्त और कहा मिल सकती हैं ? क्या इन पक्तियों में उन समस्त बहिनो का विश्वास, आस्था और अपने 'वीरन' के लिए अपरिमित स्नेह और गर्व नहीं भरा है, जो उस समय आक्रात, आतंकित, अरक्षित और असहाय थीं ? सच यह है कि लोक गीतों के भीतर छिपे भावों की व्यापकता ही, इन गीतों को, तथाकथित शिष्ट गीतों से अलग, एक सत्ता स्थापित कर देती है।

एक अन्य विशेषता लोक साहित्य और लोक कला की यह है कि उसमे पुनरावृत्तिया, भिन्नताओ, क्षेत्र विभाजना के लिए सदैव दरवाजा खुला रहा है और खुला रहेगा। ऐसा क्या? लोक कलाकार अथवा लोक गीतकार सदैव इस बात के लिए प्रस्तुत रहा है कि वह अपने को केवल कुछ विशिष्ट नियमो, रूढिया अथवा मान्यताओ से न बाधे। वह समाज की आवश्यकताओं, उसकी सास्कृतिक और बौद्धिक आकाक्षाओ, रुचियों, आदर्शों के अनुरूप अपने को सदैव बदलता, बनाता रहा है। फलत उसकी उपयोगिता बढती ही गयी, कम नहीं हुई। उसके विकास मे स्थिरता नही आयी, गतिशीलता बनी रही। वह आनन्द का कारण और मनोरजन का साधन, प्रेरणा का स्रोत और कर्तव्य परायणता का माध्यम बना रहा। हम अपनी लोक कलाओ और लोक गीतो मे भौतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन तक की दौड को बराबर देखते है। कोल्हू के गीतो से मेले के गीतो तक, शृगार रस से पूर्ण अभिनयो से कृष्ण और रामलीलाओ तक, युद्ध की चुनौतिया से भक्ति परक भजनो तक हम लोक मानस के इन कलाकारो और गायको की पहुँच का प्रमाण पाते हैं। लोक कला और लोक साहित्य की व्यापकता का यही कारण है।

लोक गीतो मे व्यक्त भावनाओ की सार्वभौमिकता के सम्बन्ध मे विद्वानो ने बहुत कुछ कहा है। जिस प्रकार 'पच तत्र' की कहानिया अरब देशो और योरापीय देशो की भाषाओं मे अनूदित होती हुई इगलैड पहुँची, जिस प्रकार अजन्ता की चित्र कला लगभग उन्ही शताब्दियो मे गोबी के रेगिस्तानो और उत्तरी पश्चिमी चीन की गुफाओ तथा मन्दिरो मे पहुँची, जिस प्रकार भारत की मूर्ति कला, नृत्य कला, अभिनय कला, ब्रह्म देश, मलय प्रदेश, इन्डोनीशिया, सायम आदि सुदूर देशो मे पहुँची, जिस प्रकार महाभारत कालीन नायकों की चर्चा अमेरिका तक पहुँची उसी प्रकार हर युग मे हमारे लोक गीतो का सन्देश देश के भीतर के सारे प्रान्तों मे ही नहीं, वरन् विदेशो मे भी पहुँचा।

लोक सस्कृति और लोककला उस मा की तरह है जिसकी गोद मे

हमारा लालन पालन हुआ है। लोक गीत उसी मा की वाणी है। 'माता भूमौ पुत्रोऽह पृथिव्या' की भावना को लेकर ही हमे उन गीतो के पास जाना चाहिए जिनमे पृथ्वी गाती है, प्रकृत गाती है, मनुष्य की आत्मा गाती है।

डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'छत्तीस गढी लोक गीतो का परिचय' की भूमिका मे लिखा है, "ग्राम गीतो का समस्त महत्व उनके काव्य सौंदर्य तक ही सीमित नही है। इनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है, एक विशाल सभ्यता का उद्‌घाटन, जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र मे डूबी हुई या गलत समझ ली गयी है। आर्य-आगमन के पूर्व बहुत ही समृद्ध आर्येतर सभ्यता भारतवर्ष मे फैली हुयी थी, उसके साथ ही और भी बीसियो छोटी मोटी सभ्यताए इस विशाल भू भाग मे फैली हुयी थी। आर्यों ने राजनीतिक रूप मे तो भारतवर्ष को जीत लिया था, पर वे सास्कृतिक रूप मे पूर्ण रूप से यहाँ के पूर्व निवासियो से प्रभावित हो गए थे। यहाँ की मूल सभ्यता वैदिक सभ्यता से एक दम भिन्न थी। और, आज भी लोकाचार, स्त्री-आचार, पौराणिक परम्परा आदि के रूप मे वर्तमान हैं। ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) है। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग मे श्रुति कहलाते थे। वद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे और ग्राम गीतो की भाति सुन सुनकर याद किये जाते थे। सौभाग्य वश वेद ने बाद मे श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्राम गीत अब भी 'श्रुति ही हैं, जिस प्रकार वेदो द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्राम गीतो द्वारा आर्य पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। ईट पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझे तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम गीत का महत्व मोहेन्जोदाडो से कहीं अधिक है। मोहेन्जोदाडो सरीखे भग्न स्तूप ग्राम गीतो के भाष्य का काम दे सकते हैं।"

डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक गीतो की प्राचीनता और उनके द्वारा लाक मानस के सस्कार के सम्बन्ध में जो बाते यहाँ कही है, वे अकाट्य है। जब से मानव समाज है तभी से लोक गीतो का भी इतिहास है। इतना ही नही। इन लोक गीतो के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध विद्वान

राल्फ विलियन्स ने एक महत्व पूर्ण बात कही है जिस पर अवश्य ध्यान देना होगा। आपका कथन है, "लोक गीत न पुराना होता है न नया। वह तो उस जगली पेड की तरह होता है जिसकी जडे अतीत की गहराइयो मे घुसी होती है, मगर जिसमे नित नयी शाखाएँ, नई पत्तियाँ, नए फल निकलते रहते हैं।"

विलियम्स महोदय ने जो बात यहाँ कही है वह स्वय-प्रमाणित है, स्वय-सिद्ध है। आखिर कोई कारण है कि हम मैथिल और महाराष्ट्रीय, पजाबी और मालवी, भोजपुरी और राजस्थानी, अवधी और ब्रज लोक गीतो मे इतना साम्य पाते हैं। जिस प्रकार लोक कथाओ के सम्बन्ध मे प्राय सभी विद्वानो का कथन है कि उनमे ऊपरी भेदो के बावजूद साम्य की अर्न्तधारा बहती रहती है, उसी प्रकार लोक गीतो के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है। हमारे लोक गीत हर युग, हर प्रदेश, हर जाति और हर समय के प्रहरी के रूप मे रहे है। वे सदैव से लोक मानस के सस्कार कर्ता और जय-गायक रहे है। इस रूप मे वे सदैव बन्दनीय रहे हैं और रहेगे।

इस सम्बन्ध मे एक और साक्षी देनी है। साक्षी है श्री ए० जी० शेरिफ आई० सी० यस० की। वह लोक गीतो के प्रेमी थे और श्री राम नरेश त्रिपाठी के मित्र थे। त्रिपाठी जी के साथ वह १९३४ ३५ के जाड़ों में जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव गए थे। उन दिनो शेरिफ महोदय जौनपुर जिले के कलक्टर थे। कोइरीपुर त्रिपाठी जी का अपना गाव है। कोइरीपुर की अहीरिनो के मुँह से उन्होने कई लोक गीत सुने। फिर उनका अनुवाद उन्होंने अग्रेजी मे किया। अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक की भूमिका में सग्रहीत लोक गीतो का परिचय देते हुए शेरिफ महोदय कहते हैं—

" The metre is rough and ready, but the language itself (Eastern Hindi) is musical and expressive it is a language which calls a spade a spade in the sense that there is one word for each material object, each action or each sentiment described, and that word is the right one, which is to

say, that is folk poetry and folk poetry at its best The songs are natural and dramatic and abound in pathos and humour, in romance and tragedy. Again and again in reading them one is struck by resemblances to the folk poetry of other countries Now it is AnnieLawrie (before Burns improved her)-

"She is backit like the peacock, she is breistit like the swan" —except that the Indian Annie has a nose like a parrot's beak and fingers like bunches of bananas —which are just as beautiful no doubt Or, we have what is almost a translation of that most dainty of German folk songs, "und schau ich him, so schanst du her, Das macht mein Herz so schwer, so schwer" in "Main Chitwat Tu Chitwat Nahin Rahi Rahi Ji Ghabrae," Or we hear an echo of "Edward, Edward," in the tragedy of the brother's murder, "Why does your brand sale drip wi' blind ?" to which the Indian Edward replied much as his Scotch prototype did, "I have killed roedeer"

इस उद्दहरण मे शेरिफ महोदय ने जिन लोक गीतों की तुलना विदेशी लोक गीतो से की है उनके कुछ अश इस प्रकार हैं

(१) *जैसे आम केर फकिया, जच्चा रानी नैन बनी।*
अपने पिया कै दुलारी, जच्चा रानी खूब बनी।
मतवाली जच्चा रानी खूब बनी।
जैसे सुगवा के ठोरवा जच्चा रानी नाक बनी।
अलबेली जच्चा रानी खूब बनी।
जैसे केरा केर खभिया, जच्चा रानी जाघ बनी।
अपने पिया कै सुहागिन, जच्चा रानी खूब बनी।
जैसा केरा केर छीमियाँ, जच्चा रानी अगुली बनी।
मतवाली जच्चा रानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा रानी खूब बनी।

(२) *चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।*
बहुत दिनन से तेरे दिखिबे कौ, मेरो जी ललचाय ॥
मै चितवति तू चितवत नाही, रहि रहि जी घबडाय ॥
निपट निठुर निरमोही मोहन, मोहिं रहो तरसाय ॥
तेरी चितवन मे चित्त लगा है, नेह सिरानो जाय ॥

(३) इस गीत मे बताया गया है कि देवर अपने भाभी पर आसक्त था। इस लिए उसने अपने भाई को मार डाला। घर पहुँचा तो भाभी उसकी भीगी जूती और रगी तलवार से सब कुछ भाप गयी। उसने देवर से सच सच बात पूछी और वायदा किया कि वह उसे छोडकर कही न जायगी। देवर ने सच बाते बता दी। वह स्त्री बन मे गयी और चिता तैयार कर देवर को आग लेने भेज दिया। एकान्त पाकर उसने निवेदन किया—

जौ तुम होउ स्वामी सच क बिअहुता
अचरा अगिनियॉ लइ उठौ, मोरे रामा!

तब—अचरा भभकि उठा सतिना भसम भई,
देवरा दूनौ हाथ मीजै, मोरे राम!

और, देवर चिल्लाता रह गया—
जौ हम जनेतेऊँ भौजी दगवा कमाबिउ,
काहे क मरतेउँ सग भैया, मोरे राम!

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो भाव हमारे लोक गीतो मे मिलते हैं, प्राय वही भाव स्काटलैन्ड, इगलैड, जर्मनी आदि देशा के लोक गीतो मे भी मिलते हैं। कही कही तो वाक्य के वाक्य एक दूसरे के अनुवाद सरीखे लगते हैं। यह भाव साम्य, विचार साम्य, दृष्टि साम्य आश्चर्यजनक है। परन्तु हम यदि मान ले कि सारे ससार के देशो का लोक मानस एक तरह से शुद्ध, निर्दोष, निश्छल और सरल है तो यह जान कर भी हैरानी न होगी की उनकी भावनाओ की अभिव्यक्ति मे इतनी अधिक सरलता और समत कैसे होती है!

हम जिस समझ, चेतना, आग्रह और सहानुभूति के साथ लो

गीतो का अध्ययन करना चाहते [illegible] तर्क और विज्ञान सम्मत बनाने के लिये हमे इनके पीछे छिपे साम[illegible] आर्थिक तत्वो को ढूँढना पडेगा। हमारे लोक गीतो मे कही कजरारे [illegible] का स्वागत किया गया है, कही खेती की हरियाली पर उल्लास प्रगट किया गया है, कहीं धरती माता और सूरज देवता तथा चन्दा मामा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी है, कही सरो-सरिताओ, बनो, पर्वतो की पूजा की गयी है, कही देवी देवताओ को मनौतियाँ मानी गयी है, कही सयोग और मिलन पर सुख तथा वियोग और विदाई पर दुख प्रकट किया गया है, कही पुत्र जन्म की खुशी है, कही बाँझपन पर विलाप है, कही कामिनी सुन्दरी का रसमय वर्णन है, कही सभा मे ऊँची पगडी रखने वाले, चोडी छाती, सुडौल हाँथ पाँव वाले पति पर गर्व प्रकट किया गया है, कही सामाजिक और आर्थिक विषमताओ पर क्षोभ प्रकट किया गया है, कही अनमेल विवाह की खिल्ली उडाई गई है, कही बहिन का प्यार, कही भाई का बलिदान, कही ननद भौजाई के झगडे, कही सास पतोह के टन्टे, कही एकता का सुफल, कहीं धर्म और कर्त्तव्य पालन की बडाई, कही अधर्म और दुष्टता की भर्त्सना है। कुल मिलाकर हमे इन लोक गीतो मे जीवन के प्रति बडा ही स्वस्थ, प्रकृत, सहज, पुष्ट दृष्टिकोण मिलता है। हरैलेपन, पलायनवाद, अतिशय भाग्यवाद के स्थान पर कर्मठता, सक्रियता, जुझारु मनावृति और विजय प्राप्त करने का अदम्य उत्साह ही हमें इन लोक गीतो मे मिलता है। बडी बात यह है कि शृङ्गार हो या वीर रस, प्रकृतिकी पूजा हो अथवा प्रकृति के अन्ध तत्वों से सघर्ष, जीवन का स्वागत हो या मौत से मुकाबिला, कही भी इन लोक गीतो में कमजोरी, अशक्तता, फीकापन, प्रभावहीनता नहीं है। पौरुष, उत्साह, लगन और जुझारुपन की कमी हम कही नहीं पाते। इसका कारण यह है कि इन गीतो के पात्र, सारे के सारे धरती के बेटे, बेटियाँ हैं। आतप वर्षा शीत सहकर, कडी धरती से सोना उगाने वाले लोग भी कही बेजान, अशक्त, फीके और प्रभावहीन हो सकते हैं? लोक गीत धरती के गीत हैं, धरती के बेटे बेटियो के गीत हैं।

यह सही है कि इन लोक गीतो मे हम वर्ग संघर्ष की वह तीव्रता नहीं पाते जो हमे पूँजीवादी युग के संगठित मजदूरों के लोक गीतो मे मिलती है, फिर भी आर्थिक और सामाजिक विषमता पर, क्रूरतम प्रहार तो हमे इन लोक गीतो के पद पद मे मिलता है। अपने भाग्य को अपने हाँथ मे लेकर जीने वाला किसान हल की मूँठ पकडकर जीवन के, शृंगार के, समृद्धि के, संघर्ष और विजय के गीत गाता है। इन गीतो मे हमारा लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन लोक गीतो के साथ धरती गाती है, आसमान गाता है, चाद तारे गाते है, बन पर्वत, नदी नद गाते हैं, प्रकृति के सारे तत्व गाते है, पूरा ग्रामीण समाज गा उठता है।

हमारे ग्राम गीत सामन्तवादी युग की देन हैं। आज वह सामन्तवादी युग नही रहा। धीरे धीरे, द्रुतगति से बदलती आर्थिक व्यवस्था के साथ ग्रामीण जीवन मे भी परिवर्तन आता जा रहा है। पुराने जीवन मूल्य भी धीरे धीरे बदलते जा रहे है और उनका स्थान नये जीवन मूल्य लेते जा रहे हैं। आज का युग पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का युग है और हमारी चेतना की यह माग है कि यथाशीघ्र इस पूँजीवाद अर्थव्यवस्था का स्थान समाजवादी अर्थव्यवस्था ले ले। सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था से समाजवादी अर्थ व्यवस्था तक की दूरी लम्बी है। बीच मे पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का पडाव भी है। इस पृष्टि भूमि पर यदि हम अपने लोक गीतो को रखकर देखे तो हमे उनकी व्याख्या नये सिरे से करनी होगी और नयी आवश्यकताओ के अनुसार उनका उपयोग भी करना होगा। यह काम महत्व पूर्ण है।

इन गीतो से हमारा हाल का, सीधा, संस्कारगत और रागात्मक सम्बन्ध है। इनमे हमारे मन प्राण बसते है, अभिव्यक्त होते हैं, मुखर होत हे, इनमे हम अपने पुरखो के चित्र देखते हैं, उनके मनोवेगो का दर्शन करते हैं, उनसे निकटता प्राप्त करते है। इसलिये हमारी दृष्टि मे इनका मूल्य बहुत है। इन गीतो की उपेक्षा करना अब सम्भव नही। हमे उत्तराधिकार मे मिली इस अमूल्य निधि पर गर्व है।

अगले पृष्ठों मे लोकगीतो का अध्ययन करते समय हम इन सारे

तत्वो का दर्शन करेंगे जिनकी चर्चा हमने यहाँ किया है। हम इस अध्ययन मे रस लेंगे, उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उनका मूल्य और महत्व पहिचानेंगे।

हमने आरम्भ मे लोक गीतो के सम्बन्ध मे उठने वाले जिन प्रश्नों को सामने रखा था उनमे से प्राय: सभी का उत्तर दिया जा चुका है। अन्य अधिकारी विद्वान उसका उत्तर अधिक तर्क पूर्ण और वैज्ञानिक ढग से देंगे। मेरा निवेदन सिर्फ यह है अब हमे इन लोक गीतो की ओर अपना दृष्टिकोण सही और सहानुभूति पूर्ण बनाना चाहिए।

आज हमारा देश स्वतत्र हो चुका है। हमारे देश का कृषक समाज और सर्व हारा वर्ग अब सुख और समृद्धि की ओर बढ रहा है। ऐसे अवसर पर उसे उसकी पुरानी थातियो की याद दिलाना और जो उसका है उसे उसके हाथो मे सौंप देना आवश्यक है। यह सही है कि यहाँ की सामन्त-वादी प्रथाएँ नियमतः समाप्त हो गयी हे, और धीरे-धीरे वे सत्यत भी समाप्त हो जाएँगी। परन्तु सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था के समाप्त होने का यह अर्थ नही है कि यहाँ की कृपि सभ्यता लुप्त हो जायगी। मैं यह मानता हूँ कि निकट भविष्य मे ही हमारा कृषक समाज उठेगा, उभरेगा और वह अपनी सस्कृति और सभ्यता के पुराने सूत्रो को ही फिर से नही बटोरेगा, बल्कि वह नयी आवश्यकताओ के अनुसार उनमे नए सस्कार करेगा, उनको नया रूप और स्वर भी देगा। कृषक समाज के अतिरिक्त श्रमिक समाज, सर्वहारा समाज, निम्नमध्यम श्रेणी कहलाने वाला समाज भी धीरे धीरे अपने खोये मूल्यो को पहिचानेगा। अपनी आर्थिक समृद्धि और सामा-जिक उन्नति के साथ साथ वह अपनी सास्कृतिक उन्नति की ओर भी ध्यान देगा। उस समय उसे इन लोकगीतो और लोक कलाओ का ही एक मात्र आधार होगा।

इसलिये मे मानता हूँ कि लोक गीतो, लोक साहित्य और लोक कलाओ की चर्चा करना, उन्हे पुनर्जीवित करना, उन्हे सामाजिक विकास-क्रम मे आवश्यक स्थान देना प्रतिगामिता नहीं है, बल्कि प्रगतिशीलता का

सबसे बडा प्रमाण है। इससे राष्ट्रीय एकता और उसके विकास मे बाधा नही पहुँचेगी, बल्कि इसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता का क्रम दृढ होगा। इसलिए हमे सावधानी और सहानुभूति और समझ के साथ इन लोकगीतो के अध्ययन मे लगना चाहिए, इनके सन्देशो को उभारकर जन समाज के सामने रखना चाहिए, इनके सच्चे मूल्यो और मानो को जानना चाहिए, इनकी भावधारा मे मग्न होकर, इनकी लोल लहरियो के स्पर्श से अपने मन-प्राण को पवित्र और ओजमय बनाना चाहिए।

आज हमारे देश मे चारो ओर प्राचीन सस्कृति और सभ्यता, प्राचीन सगीत और कला आदि के सम्बन्ध मे शोर उठ रहा है। हम इस शोर का, इस उत्साह का स्वागत करते हैं। सदियों की परतत्रता के बाद हमारा देश स्वतत्र हुआ है। वह अपनी खोई निधिया को पुन प्राप्त करने और उनका मूल्य पहिचानने का प्रयत्न कर रहा है। आधुनिक जीवन को अधिकाधिक आकर्षक और स्फूर्तिपूर्ण बनाने के लिए वह प्राचीन कला साधनो का प्रयोग कर रहा है। यह लक्षण शुभ है। यह इस बात का उदाहरण है कि देश को अपने अतीत पर समुचित गर्व है और वह अतीत की सभी मूल्यवान निधियो का प्रयोग करके अपने वर्तमान तथा भविष्य को सुन्दर और समृद्ध बनाने के लिए कृत सकल्प है। मगर इस नवीन उत्साह का आधार क्या है? यदि इसका आधार प्रत्येक प्राचीन वस्तु के प्रति परम्परागत अन्धी श्रद्धा ही है तो हम निवेदन करेंगे कि यह श्रद्धा अधिक दिनो तक टिक न सकेगी। हमे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही अपनी कलानिधियों का मूल्याकन करना चाहिए और उनमे से उन्ही तत्वा को ग्रहण करना चाहिए जो जीवनप्रद हो, जो हमारे सामाजिक जीवन को पुष्ट कर सके, समृद्ध और विकासशील बना सके।

हमे लोक गीतो की व्याख्या इसी प्रकार और इन्हीं आदर्शों को ध्यान में रखकर करनी चाहिये। इस व्याख्या और मूल्याकन का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने पाठको को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हमारे ये लोक गीत उनके हृदय की कोमलतम भाव-

नाओं का अभिव्यक्त करने में ही समर्थ न होंगे बल्कि वे उनकी जययात्रा के उद्घोषक, उनकी प्रगति के गायक और उनके विकास के मगलाचरण भी बन जाएगे। ये गीत धरती के गीत हैं, जीवन के गीत ह, सघर्ष और विजय के गीत ह। इनके रूप बदलते रहे है, बदलते जाएगे। परन्तु इनके स्वर नहीं बदल सकते, इनके सन्देशे शाश्वत और सनातन हैं क्योंकि इनके सदेशा मे भारतीय मानवता के अबाध अटूट विकास क्रम का सजीव इतिहास प्रतिध्वनित होता है। आइए, हम इन्हे सुने, इन्हे समझे, इनका मूल्य पहिचानें, इनके स्वर मे अपना स्वर मिलाकर अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को अधिक आकर्षक, शक्तिशाली और गतिशील बनाए।

अध्ययन

एक प्रसिद्ध लाक गीत इस प्रकार है—

छापक पेड छिउलिया त पतवन गहबर ।
अरे रामा, तेहि तर ठाढि हरिनिया त मन अति अनमनि ।
धरतै चरन हरिनवा त हरिनि से पूंछई ।
हरिनी, की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझिऊ ।
नाही मोर चरहा झुरान, न पानी बिनु मुरझेउ ।
हरिना, आज राजा जी के छट्ठी तुमहि मारि डरिहै ।
मचियै बैठी कौसल्या रानी हरिनि अरज करइ ।
रानी, मसवा त सिझहिं करहिया, खलरिया हमे देतेऊ ।
पेडवा से टगतिऊँ खलरिया त हेरि फेरि देखतिऊँ ।
रानी देखि देखि मन समुझउतिउँ जनुक हिरना जियतइँ ।
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाही देबइ ।
हरिनि, खलरी क खझडी मिढउबइ त राम मोर खेलिहइ ।
जब जब बाजै खझडिया सबद सुनि अनकइ ।
हरिनी ठाढि ढॅकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरइ ।

हरे हरे घने पत्तो वाले ढॉक के नीचे अनमनी सी हिरणी खडी है। चरते चरते हिरण ने हिरणी को देखा तो उसने पूछा, "क्या तेरा चरागाह सूख गया या तुझे पानी नहीं मिला कि तू इस तरह उदास खडी है ?"

हिरणी ने कहा, "न मेरा चरागाह सूख गया है, न पानी की कमी के कारण मैं मुर्झा गयी हूँ। हे हिरण, आज राजा जी के यहाॅ छट्ठी का उत्सव है। आज वह तुम्हारा बध कर डालेंगे। यही सोचकर मैं उदास हूँ।"

इसके बाद हिरण मार डाला गया।

कोशल्या रानी मचिया पर बैठी हुयी हैं। उनके सामने हिरणी बिनती कर रही, "हे रानी, मास तो कडाही मे सीभा जा रहा है। मैं उसक बार मे कुछ नही कह सकती। मगर एक भीख मागती हूं। आप मेरे हिरण का चमडा मुझे दे दे। मैं उसे पेड पर टॉग कर बार-बार देखती रहूँगी और अपने मन को यह समझा लूँगी कि मेरा हिरण मानो अभी जीवित है।"

मगर कठोर हृदय कौशल्या का हृदय न पिघला। उन्होने टका सा जवाब दे दिया, "ऐ हिरणी, तुम अपने घर जाओ। मै तुमको यह चमडा भी न दूंगी। मैं इस चमडे से खॅझडी मढाऊँगी, जिसे मेरे राम खेलेंगे।"

जब जब खॅजडी बजती है तो उसकी आवाज सुनकर हिरणी चौंक-चौंक उठती है। वह ढाक के नीचे अपने हिरण को याद करती खडी रह जाती है।

यह एक सोहर है जो प्राय प्रत्येक घर मे छट्ठी के दिन गाया जाता है। सोहर मागलिक गीत होता है। यह गीत आनन्द उछाह का प्रतीक माना जाता है। यह गीत करुणा रस का सम्भवत सर्वश्रेष्ठ लोकगीत है और प्राय हिन्दी के पूरे क्षेत्र मे गाया जाता है। कौन ऐसा कठोर हृदय प्राणी होगा जा इस अभागिन हिरणी के साथ स्वयं भी आह न कर उठे? इस गीत को करुण रस का प्रतीक कहा जा सकता है।

परन्तु क्या इतना ही कह देने से हम इस परम लोक प्रिय गीत का पूरा मूल्याकन कर लेते हैं? ये हिरण हिरणी क्या जन साधारण के प्रतीक नही हैं? इस लाक गीत की कौशल्या रानी क्या रामायण की कौशल्या से अलग अत्यन्त कठोर, निर्मम, स्वार्थी, गाव की ठकुराइन नही है; ऐसी ठकुराइन जिसे अपने आनन्द और उल्लास के आगे निरपराध, परवश, कमजोर प्रजाजन के दुख-मुख की कोई चिन्ता नहीं है? रानी कौशल्या के राज कुमार राम बडे होने पर विधवा हिरणी के निरपराध पति के चमडे की खॅझड़ी बजावेंगे। कौशल्या की कोख धन्य होगी, उनका बेटा बडा

होगा, आनन्द मगल मनावेगा। परन्तु अभागिनि हिरणी, निरपराध प्रजाजन का सौभाग्य सिन्दूर पुँछ जायगा। सदा सदा के लिये उसका सोहाग लुट जायगा, उसकी गोद खाली रह जायगी। शासक और शासित का, राजा और प्रजा का यह कैसा सम्बन्ध है? दोनो के हित और स्वार्थ इतने परस्पर विरोधी क्यो? परम्परा से यह गीत छठी के दिन गाया जाता है। ऐसा क्यो होता है? किस सामाजिक सच्चाई की याद ताजा रखने के लिये यह गीत गाया जाता है?

यदि हम इस गीत के पीछे छिपे सामाजिक सच्चाइयो और आपसी सम्बन्धा को अनदेखी कर देगे तो हम इसे पूरी तरह कैसे समझ सकेगे? इसका पूरा रस कैसे प्राप्त कर सकेगे? सहृदय पाठक गीत के इस पहलू पर जरा गम्भीरता पूर्वक विचार करेगे तो वे चमत्कृत होकर रह जाएगे। यह गीत सामन्तवादी युग के शासक शासित श्रेणी के आपसी सम्बन्ध पर जितनी रोशनी डालता है उतना अन्य कोई गीत नही डालता।

सुखिया दुखिया

एक दूसरा गीत लीजिये, यह भी सोहर है —

सुखिया दुखिया दोनो बहिनिया,
दोनो बधावा लै आयी, हरे राजा बीरन।
सुखिया ले आई गुजहरा गोडहरा,
दुखिया दूब कै पैडा, हरे राजा बीरन।
सुखिया जे पूछे अपने बीरन से,
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन।
लेहु न बहिनी कोछ भरि मोतिया,
सैया चढन का घोडा, हरे राजा बीरन।
दुखिया जे पूछे अपने बीरन से,
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन।
लेहु न बहिनी कोछ भर कोदौ,
वहै दूब का पैडा, हरे मोरी बहिनी।

गउवा गोइडवा नघही न पायी,
दुब्बन झरै लाग मोती, हरे राजा बीरन!
कोठे चढी जे भौजी पुकारै,
रूठी ननद घर लाओ, हरे मोरे राजा।

सुखिया और दुखिया दो बहिनें थी। उनके भाई के लडका हुआ था और उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये उसके पास बुलावा आया था। दोनो बहिने वहाँ पहुँची। सुखिया अपने साथ बच्चे के लिये गहने कपडे लायी थी। भाई भौजाई को इस बात से बडी प्रसन्नता हुई। सुखिया का उन्होने आदर पूर्वक रखा और जाते समय उसे कोछ भर मोती दिया तथा उसके पति के चढने के लिये एक घोडा भी दिया। सुखिया बाजे गाजे के साथ बिदा हुई। दुखिया बहिन गरीब थी। वह तो अपने आन्चल मे सिर्फ दूब लेती आयी थी। उस गरीब बहिन की वहाँ क्या कदर होती? जब उसने लौटने की इजाजत माँगी तो उसके भाई ने उसके आचल मे कोदो और दूब डाल दिया। भाई से यह विदाई पाकर दुखिया बहिन अपने घर की ओर चली। परन्तु वह गाव की हद से बाहर भी न निकल पायी थी कि उसके फटे आँचल से मोती झडने लगे। उसकी भौजाई छत पर चढकर उसका जाना देख रही थी। वह पुकार उठी, "मेरी ननद रूठ कर जा रही है। उसे मना कर वापिस लाओ।"

इस कथानक को ध्यान से पढने पर इस गीत का सन्देश साफ समझ मे आ जाता है। श्री राम नरेश त्रिपाठी ने कहा है, "दुखिया बहिन गरीब घर मे ब्याही थी। भाई के बालक को देने को उसके पास कुछ नही था। प्रेम विवश वह थोडी सी घास लेकर आयी थी। भाई ने प्रेम का कुछ मूल्य नही आका। केवल गहने और घास का मुकाबिला किया। उसने दोनो को उनकी लायी हुयी चीजो के अनुसार बदला देकर विदा किया। पर सुखिया स्वार्थ वश आयी थी। उसके स्वार्थ को दुखिया के विशुद्ध प्रेम से नीचा दिखाने के लिये ही यह रूपक बाँधा गया है। घास से मोती झडते देखकर बहू का स्वार्थ फिर प्रबल होता है। दुखिया

तिरस्कृत होकर गयी थी। अब इसकी ग्लानि बहू को हुयी। इस प्रकार स्वार्थ का नृत्य घर घर मे हो रहा है। पर शुद्ध प्रेम और चीज है। वह घास मे मोती होकर झड़ता है।"

इस लोक गीत का रचयिता इतना सजग तो था ही कि वह यह साफ देख रहा था कि पैसे की वेदी पर किस प्रकार भाई बहिन का स्नेह सम्बन्ध भी बलिदान हो जाता है। भाई, बहिन, माता, पिता, नातेदार-रिश्तेदार, सगे सम्बन्धी, समाज के सारे प्राणी, किस सूत्र से एक दूसरे के साथ बधे हैं? स्नेह के सारे सम्बन्ध किस चट्टान से टकरा कर चूर हो जाते हैं? हमारी नैतिकता के सारे आदर्श किस भँवर म फस कर टूट बिखर जाते हैं? इस लोक गीत के रचयिता ने इन तथ्यो को जान लिया था। घास भरे-आँचल से मोती का झड़ना आखिर किस सच्चाई को उजागर करता है?

नारी की मर्यादा

सोहर मे ही एक गीत है जिसमे एक बाँझ स्त्री घर से निर्वासित होने पर शेरनी के पास जाती है और शरण माँगती है। परन्तु शेरनी उसे शरण देने की हिम्मत नही करती क्योकि उसे डर है कि कहीं उस बाँझ स्त्री के सम्पर्क मे आकर वह स्वय न बाझ हो जाय। वह नागिन के पास शरण मागने जाती है। वहा भी उसे टका सा जवाब मिलता है। अन्त मे वह धरती माता की शरण मे जाती है। मगर सबको शरण देने वाली धरती माता भी उससे विमुख हो जाती है। अर्थात् वह बाझ स्त्री अपने बाझपन के कारण कही भी ठोर ठिकाना नही पा सकती।

इस गीत का उद्देश्य क्या है? इसका सन्देश क्या है? क्या यह सफल मातृत्व मे ही नारी जीवन की सार्थकता देखने का प्रयत्न नही है? एक ओर जहाँ यह गीत स्त्रियो के बाझपन की भर्त्सना करता है, वही दूसरी ओर वह उनकी कोख को भरा पूरा देखना चाहता है। वह परिवार भी क्या जो बच्चो की किलकारियो से गूजता न रहता हो? वह स्त्री भी क्या जो अपने आचल के तले सूनेपन को छिपाये उसासे लेती जिन्दगी काट

रही हो ? परिवार नियोजन के हामी लोग चाहे इस गीत को आज बेकार मान ले, परन्तु कोई सोवियत रूस तथा अन्य ऐसे देशो की नारी से पूछे, जहाँ आज भी सफल मातृत्व क लिये 'मदर हुड' के तमगे बॅटा करते हैं, कि यह गीत कैसा है ? इसका सन्देश क्या है ?

सोहर मे ही एक गीत है सीता जी के दूसरी बार बनगमन के सम्बन्ध मे। यह गीत विचित्र है। (इसकी पूरी व्याख्या आगे की जायगी)। इसमे वे सारी मान्यताए तोड दी गयी है जो कि बाल्मीकि अथवा तुलसी के राम सीता क सम्बन्ध मे स्वीकृत थी। इस गीत के सीता और राम मानव है, बिल्कुल हमारे जैसे। उनकी मानसिक स्थितियाँ अथवा अवस्थाए भी बिल्कुल वैसी ही हैं। वे हमारे जाने पहिचाने स्वजन है। लोक गीताकार ने उनको इतना स्वाभाविक, मानवीय, सहज चित्रित करके लोक मानस की स्वस्थता का परिचय दिया ह। ये पात्र हमारे परिवार के प्राणी बन गये हैं।

इस गीत के दो अश देखिए (१) सीता को बन से वापिस लाने मे जब लक्ष्मण और वशिष्ठ असफल हो गए तो स्वय राम गये। वहाँ उन्होने दो बच्चो को गुल्ली डन्डा खेलते देखा। राम ने पूछा, "बच्चो, तुम किसके पुत्र हो, किसके पौत्र हो, किसके भतीजे हो, किस माता की कोख तुम्हारे जन्म से शीतल हुई है ?" तो बच्चो ने जवाब दिया, "हम लक्ष्मण के भतीजे, राजा जनक के नाती, और सीता माता के बेटे है। पिता का नाम हमे नही मालूम।" रामचन्द्र बच्चो की यह बात सुनकर अवाक् रह गए और फलत—

"तरर तरर चुवै आसू, पटुकवन पोछहि हो।"

(२) राम आगे बढकर सीता के पास पहुँचते है। सद्यस्नाता सीता बृक्ष के नीचे बैठकर बाल सुखवा रही हैं। राम पीछे जाकर खडे हो गये और बोले, "सीता, चलकर अयोध्या को बसाओ, तुम्हारे बिना जग अन्धकारमय हो गया है, जीवन निरर्थक हो गया है।" धरती की बेटी सीता ने अयोध्या के राजा राम को केवल एक बार देखा, वह कुछ बोली नही। धरती की बेटी धरती की गोद मे समा गयी।

यदि इस पूरे लोकगीत को ध्यानपूर्वक पढा जाय तो आँखो के सामने उस समाज का चित्र खिंच जाता है जिसका प्रत्येक प्राणी सजीव और प्रकृत है, स्वाभिमानी और सत्यनिष्ठ है, अपने कर्त्तव्य के साथ अधिकारो से भी परिचित है। इस लोक गीत की सीता निश्चय ही हमारे घरो की अत्यन्त स्वाभिमानिनी मनस्विनी बेटी हैं।

बाल्मीकि रामायण मे लक्ष्मण जी के मुख से यह श्लोक सुनकर कि :

नाह जानामि केयुरे, नाह जानामि कुण्डले ।
नूपुरेत्वभि जानामि, नित्य पादाभिंवन्दनात्—

कौन ऐसा भारतीय होगा जो गर्व से सिर ऊँचा न कर ले ? तुलसी कृत रामायण मे भी ऐसे शानदार स्थल यहाँ वहाँ देखने को मिलते हैं।

बडी भाभी को मा का स्थान देना हमारी सस्कृति का एक अग है। इस तत्व को प्रत्येक भारतीग पहिचानता है। लोक मानस मे भी इस सम्बन्ध को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

एक लोक गीत मे सीता जी लक्ष्मण से कहती हैं कि, "राम तो है नही। अब मैं क्या करूँ ? किसके लिये सेज सजाऊँ, किसकी सेज पर फूल बिखेरूँ, किसकी सेवा सुश्रूषा करके अपना दुख भूलूँ ?"

लक्ष्मण ने उत्तर मे कहा, "आप मेरी सेज सजावें, उस पर फूल बिखेरें, मेरी सेवा करके अपना दुख भूलने की कोशिश करें।"

सीता ने कहा, "जिस मुँह से मैंने तुमको 'लक्ष्मण' कह कर पुकारा, उसी मुँह से तुमको पति कैसे कहूँगी ?"

लक्ष्मण तमक उठे। आवेश मे आकर उन्होने कहा, "भाभी, ऐसे पाप की बात मुँह से मत निकालो। मैं तुमको माता कौशल्या की तरह समझता हूँ। मै पिता दशरथ की शपथ खाकर कहता हूँ, मै राम का माथा छूकर कहता हूँ, गगा जी मे मेरा डुबकी लगाना व्यर्थ जाय, जो तुम्हे मैं अपनी स्त्री कहूँ।"

इस गीत मे किस आदर्श की स्थापना की गयी है ? महान मर्यादा-वादी तुलसीदास की तरह क्या इस लोक गीत का अनाम गायक समाज

के सामने आदर्श देवर-भाभी का सम्बन्ध स्थापित करने मे सफल नही हुआ ? और इस प्रकार क्या वह बाल्मीकि की परम्परा का महान विचारक, समाज हित चितक कवि नही गिना जाएगा ? क्या यह प्रसिद्ध लोक गीत सचमुच हमारे लोक मानस की स्वस्थता का गारन्टी नहीं है, उसकी पवित्रता का प्रमाण नही है ?

मेले का एक प्रसिद्ध गीत है —

धै देत्यो राम हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा दियना बरतु है.
हरि लेत्यो हमरो अधेर, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा जेवना बनतु है,
हरि लेत्यो हमरो भूख, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा गेडु वा घु टतु है,
हरि लेत्यो हमरो पियास, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा बीडवा कुँचतु है,
हरि लेत्यो हमरो अमलिया, हमारे मन धीरजा।
सबके महलिया रामा सेजिया लगतु है,
हरि लेत्यो हमरो नीद, हमारे मन धीरजा।

इस गीत मे किस मुक्ति और निर्वाण की कामना की गयी है ? कौन सा आध्यात्मवाद छिपा हुआ है ? हमारे गॉवो के मेले किसी पर्व पर लगते है, किसी देवी देवता की पूजा के अवसर पर सगठित होते हैं। इन मेलो मे हजारों लाखो प्राणी भाग लेते हैं। परिवार के पारवार अपना घर बार छोड़ कर इनमे सम्मिलित होने चले आते हैं।

जहॉ ये मेले लगते है वहॉ बाजारे लगती हैं। अस्थायी रूप से मेले क्रय-विक्रय, खेल-तमाशो और आनन्दोल्लास के केन्द्र बन जाते है। घर गृहस्थी के चक्कर मे पिसने वाले प्राणियो को कुछ समय के लिए इन मेलो मे मुक्त वातावरण मिलता है। लडके, लडकियॉ, बालक, बृद्ध, स्त्री, पुरुष,

सभी कुछ क्षणो के लिए इन मेलो की रेला-पेली, व्यस्तता, बहुरगीपन और अन्य आकर्षणो मे अपने जीवन के दुख-सुख को भूल जाते है।

परन्तु इन मेलो का मूल आधार किसी देवी-देवता की पूजा अर्चना ही होता है। ये किसी धार्मिक तिथि विशेष पर ही लगते हैं। इन मेलो का मूख्य आकर्षण होता है भयातुर, निराश, हारे, थके मानवो की अपने आराध्य से प्राप्त वर के सहारे फिर से आशा, आत्म विश्वास, सतोष और सुख प्राप्त करने की कामना।

मेलो मे भाग लेने वाली स्त्रियाँ जुट की जुट गीत गाती हुयी स्नान पूजा को जाती हैं। ऊपर जिस गीत को हमने उद्धृत किया है वह इसी अवसर का अत्यन्त लोक प्रिय गीत है।

गीत मे ईश्वर से यही माँग की गयी है कि वह उनके मन मे धीरज धरावे। क्यो ? इसलिये कि उनका मन व्याकुल है। वे उद्भ्रान्त और चकित है समाज की विषमता देखकर। सबके महलो मे दीपक जगमगा रहे हैं। मगर उनके यहाँ निपट घोर अधकार का साम्राज्य है। सबके महलो में सुस्वादु, भोजन बनते है, मगर उनके यहाँ भूख का ताण्डव होता है। सबके महलो मे सुराही का शीतल जल पिया जाता है, मगर उनके घरो मे लोग प्यासे के प्यासे रह जाते ह। सबके महलो मे पान के बीडे चबाए जाते हे, ओठो की लाली गहरी होती है, मगर इनके घर वह भी अलभ्य है। सबके महलो मे सुन्दर, सुसज्जित फूला से लदे मेज बिछते हे, लेकिन इनके घरो मे टूटी चारपायी भी मुयस्सर नही।

इस लिए इनकी माँग हे कि इनके मन मे धेर्य हो, ईर्ष्या, द्वेष, डाह न हो। वे दीपक की माँग नही करती, केवल यह चाहती है कि उनके घरो का अन्धेरा किसी प्रकार दूर हो जाय। दूसरे के घरो मे पकते सुस्वादु भोजन को देखकर वे यह नही माँग करती कि उनके घरो मे भी वैसा ही भोजन बनने लगे, वे सिर्फ यह चाहती है कि किसी प्रकार उनकी भूख ही हर ली जाती, ऐसा कुछ होता कि उनको भूख ही न लगती। दूसरे के महलो मे ठडा पानी देखकर वह यह माँग नही करती कि उनके घरो मे

भी सुराहियाँ हों और वे उनका ठंडा पानी पीने लगें। वे चाहती हैं कि प्रभु उनकी प्यास ही हर लेता। दूसरे के महलों में पान के बीड़े लगते हैं, सभी लोग उन बीड़ों को शौक से खाते हैं, मगर ये स्त्रियाँ केवल यह चाहती हैं कि किसी प्रकार पान खाने की उनकी आदत (अमल) ही छूट जाती। दूसरों के महलों में सुन्दर सेज लगते हैं, परन्तु वे अब यह आशा छोड़ चुकी हैं कि उनके जीवन में सुख-शृंगार का, आनन्द-वैभव का ऐसा सुअवसर फिर आ सकता है, उनकी कामना केवल यह है कि प्रभु उनकी नींद ही हर लेता, न नींद आती, न सुन्दर सेज की याद आती!

इस गीत में जिस सामाजिक वैषम्य का चित्र उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। वह तो आप ही आप उजागर और स्पष्ट होकर सामने आ गया है। लक्ष्य करने की बात यह है कि ये स्त्रियाँ उन सारे साधनों, उपादानों और वस्तुओं को पाने की आशा ही छोड़ चुकी हैं जिनके मिलने से जीवन सुखी सम्पन्न और जीने लायक बनता है।

उनका जीवन संतुष्ट नहीं, असन्तुष्ट है। उनमें अपने जीवन को अधिक सुखी और समृद्ध बनाने की मूल भावना थी, परन्तु वह इतनी बुरी तरह कुचली जा चुकी है कि अब उसके जागने की सम्भावना नहीं रही। वे अपने को घोरनिराशा, पराजय और परवशता का शिकार समझती हैं। यहाँ तक कि अब वे भूख मिटाने के लिए भोजन की माँग नहीं करती, वे भूख ही को मिटाने की माँग करती हैं, वे ठंडे पानी की माँग नहीं करती, वे प्यास के ही सदा सर्वदा के मिट जाने की माँग करती हैं, वे पान की माँग नहीं करती, वे तो यह चाहती हैं कि उनका यह अमल ही समाप्त हो जाय जिससे पान की कमी महसूस न हो, वे सुन्दर सेज की कामना नहीं करती, वे बस यही प्रार्थना करती हैं कि प्रभु उनकी नींद ही सदैव के लिये हर ले।

कोई भी मनोवैज्ञानिक सरलता पूर्वक यह बता देगा कि जब मानव मन इतना उदासीन, विरक्त और पराजित हो जाता है, तो उसे धीरज रखने,

सब कुछ सहने जाने, विद्रोह न करने, विषमता और अत्याचारों को भाग्य का लेख और विधि का विधान मान लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता। धीरज धरने की मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव तभी होता है जब कोई अन्य उपाय शेष नहीं रह जाता।

कैदी जब तौके गुलाकी को भी अपना गहना समझने लगे, जब जेल मे उसका मन इतना रमने लगे कि उसे अपने घर की याद ही न आवे, जब वह अपने को गुलाम बनाने वाले शासक के पॉव चूमने मे ही अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करने लगे तब यह मान लेना चाहिए कि उसकी निराशा की पराकाष्ठा हो चुकी, उसके भीतर की अन्तिम चिनगारी भी बुझाने वाली है।

मेले का यह गीत कुछ ऐसा ही प्रभाव मन पर छोड़ता है। यह गीत सामन्तवादी समाज के अन्तर्गत रहने वाले साधन सम्पन्न और साधन विहीन वर्गो का अन्तर ही स्पष्ट नहीं करता, वरन वह यह भी बताता है कि साधन हीन वर्ग किस प्रकार सब कुछ सह लेने के लिए, सहनशीलता की इस मनोवृत्ति को औचित्य प्रदान करने के लिए भी विवश हो गया है! जब मन इतना मर जाय और जब वह यह स्वीकार करले कि इस स्थिति मे परिवर्तन होने वाला नही है तो फिर धीरज धरने के अलावा रास्ता ही क्या रह जाता है? और इस प्रकार के धीरज की मॉग प्रभु से करना उस परवशता पर अन्तिम रूप से मुहर लगा देने की माग करने के समान है।

मेले का एक ही अन्य गीत है जिसमे भगवद्भक्ति तथा सफल गार्हस्थ्य जीवन का समन्वय अत्यन्त सुन्दर ढग से किया गया है। गीत यह है—

राम नहि जाने तो और जाने काभा!
फूल तो वह है जो राम जी को सोहै,
नाही तो बेला लगाए से काभा?
कपडा तो वह है जो राम जी को सोहै,
नाही गुलाबी रगाए से काभा?

गीत के इस अश मे सब कुछ भगवतार्पण करने की सीख दी गयी है। ससार मे सब कुछ जान लेने से क्या लाभ जब रामजी को न जान पाए? यदि भगवान जो को समपित न किया गया तो फल लगाने का कोई औचित्य नही। रग बिरगे कपडे रँगने से क्या लाभ? उसकी उपयोगिता तो यही है वह भगवान की मूर्ति को पहनायी जाय। भक्ति परम्परा का यह गीत "भगवान यह सब कुछ तुम्हारा ही है और तुम्ही को समर्पित करता हूँ" अच्छे से अच्छे और ऊँचे से ऊँचे भक्त कवियो के भजनो-गीतो की कोटि मे आ सकता है। मगर इसका दूसरा अश भी है।

पूत तो वह है जो पिता जी को सेवे,
नाही तो पाजी के जनमे से काभा?
तिरिया तो वह है जो दूनौ घर तारै,
नाही तो माई के कोख आए काभा?

पुत्र तो वह है जो अपने पुज्य पिता की सेवा करता है। यदि वह अपना यह पावन कर्तव्य पूरा नही करता तो उस पाजी के जनम लेने से कोई लाभ नही। वह न पैदा होता तभी अच्छा था। स्त्री तो वह जो अपने मायका और ससुराल दोनो का उद्धार कर सके। यदि वह ऐसा नही करती तो फिर माँ की कोख मे उसके आने से कोई लाभ नही। वह न भी आती तो बुरा न होता। मा की कोख तो तभी सार्थक होती है जब उसको सफल करने वाली सन्तान जीवन क्षेत्र मे उतर कर अपना कर्तव्य पूरा करे।

गीत के इस अश का भी अर्थ साफ है। यह गीत, जैसा कि निवेदन किया जा चुका है, जीवन के आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनो पक्षो को सुधारने और सार्थक बनाने की दृष्टि से ही गाया जाता है। मेले मे भाग लेने वाले स्त्री पुरुष गृहस्थ ही होते है और वे भक्ति भावना से प्रेरित होकर तीर्थ करने, स्नान करने, देवी देवताओ का दर्शन करने के लिए ही इन मेलो मे जाते हैं। इन भक्त हृदय गृहस्थो को इस गीत से कितनी सुन्दर शिक्षा मिलती है?

भाई-बहिन का प्यार

झूला झूलाने की प्रथा बहुत पुरानी और अखिल देशीय है, उमडत घुमडते बादलो की गडगडाहट और तेज हवा के झोको की चुनौतियो का ख्याल उडाती हुयी ग्राम बालाएँ आज भी पेडो की डालियो से लटक झूला पर पेंग मारती गीत गाती देखी जा सकती है।

झूले पर गए जाने वाले गीत मादक, रसपूर्ण और विभोर कर देने वाले होते है। ये गीत सावन मे गाए जाते है। परम्परा के अनुसार इस ऋतु मे नवविवाहता लडकियाँ भी अपने मायके चली आती हैं। जो लडकियाँ नही आ पाती वे अपने भाई, बाप और माँ को कोसती हैं। इन गीतो मे सभी प्रकार के भाव पाये जाते हे, सफल गृहस्थ जीवन के चित्र, भाई की वीरता का बखान, माता-पिता के प्यार की महिमा, पति की शक्ति सौन्दर्य पर गर्व आदि तो मिलते ही हैं, इनमे स्थल स्थल पर ऊँचे सन्त कवियो की दार्शनिकता और भक्त कवियो की सहज भक्ति भावना भी मिल जाती है।

एक गीत है जिसमे बहिन कहती है—

बिरना, हाली हाली जेवउ बिरन मोरा,
बिरना, तुरुक लडइया क ठाढ,
बिरना, मुगल लडइया का ठाढ।

कैसी वीर तथा मजबूत कलेजे की होगी वह बहिन जो चाहती है कि उसका भाइ शीघ्र ही भोजन कर ले क्योंकि उसे मुगलो और तुर्को से युद्ध करने के लिए जाना है। बहिन इस वीर भाई को खिला-पिला कर युद्ध करने के लिए भेज देती है। वह देखती है कि एक ओर अकेला उसका भाई खडा है दूसरी ओर साठ मुगल खडे हे। वह भाई साठो मुगलो से जूझता है और विजयी होता है। बहिन फिर गर्व से कहती है।

बिरना, कोखिया बखानऊ मयरिया कै,
जेकर पुतवा समर जीत ठाढ।
बिरना, भगिया बखानौ बहिनिया कै,
जेकर भैया समर जीति ठाढ।

बिरना, भगिया बखानौ मैं भौजी कै,
जेकर समिया समर जीति ठाढ़ ।

अर्थात मैं उस माँ की कोख को धन्य कहती हूँ कि जिससे उपजा हुआ यह वीर इस समर में विजयी हुआ । मैं उस बहिन के भाग्य को सराहती हूँ जिसका भाई ६० मुगलों को पराजित करने में सफल हुआ । मैं उस भाभी की मांग को धन्य कहती हूँ जिसके स्वामी ने शत्रुओं को पराजित कर अपनी वीरता का परिचय दिया !

इस गीत का ऐतिहासिक तत्व स्पष्ट है । निश्चय ही यह गीत उस समय रचा गया था जब गाँव की स्त्रियों को, साधारण ग्राम निवासियों को मुगल तुर्क आक्रमणकारियों से सदा भय बना रहता था । इन्हें सदैव ऐसे वीरों की आवश्यकता रहती थी जो इन आततायियों से उनकी रक्षा कर सके । "बीरन" भाई के लिए प्रयुक्त होने वाला बड़ा प्यारा शब्द है जिससे सदैव वीरता की ध्वनि निकलती रहती है । जो पुरुष अपनी बहिन, माँ, स्त्री की लाज न बचा सके, जो अपने कुल की मर्यादा और क्षेत्र की आजादी के लिए अपने प्राणों की बाजी न लगा सके उस पर कौन गर्व करेगा ? उसके जन्म लेने से लाभ ही क्या ? परन्तु जो तरुण अकेले साठ-साठ शत्रुओं को पराजित कर सकता है उस पर कौन मां, कौन बहिन, कौन स्त्री गर्व न करेगी ?

झूले के इस गीत का सन्देश अत्यन्त स्पष्ट है । इसमें जितना ओज है, जितनी शक्ति है, जितना स्वस्थ दृष्टि कोण है वह इस बात का प्रमाण है कि हमारे लोक जीवन का आधार भी उतना ही शक्तिशाली तथा स्वस्थ था । पंक्ति पंक्ति के बाद "बलैया लेउ बीरन" की टेक से जब यह मनोहारी गीत गाया जाता है तो स्वभावतः वह श्रोता को विभोर कर देता है ।

निर्धनता

निम्नांकित गीत को देखें—

टुटही मड़इया बुनिया टपकेइ रे,
के सुधि लेवै हमार ?

जेठा छवावइ आपन बगलवा,
देवरा छवावै चौपार।
हमरा मदिलवा केऊ न छवावै,
जेकर पियवा विदेश।

इस गीत मे उस सम्मिलित परिवार का चित्र है जिसके सदस्य अपने स्वार्थो मे लगे हुए है, जिन्हे पूरे परिवार के सुख-दुख की पर्वाह नहीं है। वियोगिनी स्त्री को बरसात आते ही अपने पति की याद आती है। उसके जेठ अपना बगला छवा रहे है। उसके देवर अपनी चौपाल ठीक करवा रहे है। मगर हाय! उसका मन्दिर कोई नही छवा रहा है, उसकी टूटी मडई से (जो कि पति के साथ रहने पर मन्दिर जैसा लगती है) बूंदे टपक रही है। उसकी सुधि लेने वाला कोई नहीं है, क्योंकि उसका पति परदेस मे है।

यहा "पिया बिन नागिन काली रात" का नारा नही बुलन्द किया गया है। इस गीत मे शृङ्गार-परकता नही है। इसमे जीवन की अत्यन्त कठोर सच्चाइयो को उघाड कर सामने रखा गया है। स्त्री गरीब है। उसका पति कमाने के लिए बाहर गया हुआ है। जब तक कमाकर वह वापिस न आवे उसके मन्दिर का, उसकी टूटी मडैया का जीर्णोद्धार नही हो सकता। वह स्त्री इस कठोर सच्चाई को भली भाति जानती है। इसीलिए जब उसके जेठ अपना बगला छवा रहे है और उसके देवर अपनी चोपाल सुधरवा रहे है उस समय उसे अपने प्यारे पति की याद आती है। हमारे ग्रामो मे निवास करनेवाली अगणित अभागिन, गरीब स्त्रियाँ इसी प्रकार जरा जरा सी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तडप कर रह जाती है, मगर उनके अरमान पूरे नही हो पाते।

छोटी मोटी दुहनी दुध के
बिना रे अगिन बाफ़ लेई, बलैया लेऊ बीरन।
इहै दूध पियै बारन मोरा,
भैया लडै मुगलवा के साथ, बलैया लेऊ बीरन।

चार पक्तियो का यह गीत अपने मे ही कितना सम्पूर्ण, कितना

प्रभाव पूर्ण, कितना आशाप्रद, कितना सजीव और कितना चुस्त है! ग्रामीण सस्कृति और सभ्यता का कितना प्यारा चित्र इन चार पक्तियों से उभर आता है।

बहिन कहती है, "दूध दुहने का मेरा छोटा सा बर्तन है। उसमें धारोष्ण दूध भरा है, अभी अभी का दुहा हुआ। वह इतना गर्म है कि उसम बिना आग के ही भाप निकल रही है। मेरा भाई इसी दूध को पीकर इतना बलशाली हो जाता है कि वह मुगलो से युद्ध करता है और उन्हे पछाड देता है।"

जानकारो का कहना है कि सोने के समय जो बाते दिमाग मे रहती है सपने मे वही दिखती है, और भोजन के समय जिस प्रकार के विचार मन मे आते है उनका भी सीधा प्रभाव पडता है। इस गीत मे बडी बहिन अपने छोटे भाई को धारोष्ण दूध पिलाते समय जैसी कल्पना करती है, भाई उसी कल्पना को अपने जीवन मे साकार रूप देता है। हममे से अनेक ऐसे भाग्यशाली लोग होगे जिन्हे माँ की तरह अपनी बड़ी बहिन का प्यार मिला हो। ये मगल मूर्ति बहिने कितने स्नेह से, कितनी शुभकामनाओ के साथ, कितनी आशा और कितने विश्वास के साथ, अपने भाइयो का लालन पालन करती है! उन्हे पालती, खिलाती, पहनाती है। और भोजन कराते समय कितने आशीर्वादो की वर्षा करती रहती हैं!

इस गीत म बहिन का वही निश्छल प्रेम, भाई के प्रति वही शुभाषणा, उसके शौर्य, शक्ति के लिये वही मगल कामना, कितनी सरलता पूर्वक, कितना स्वाभाविक बनकर उभर आयी है! इन चार पक्तियो मे क्या नही कह दिया गया है? अपनी बहिन से इस दूध जैसा पवित्र, निर्मल और उष्ण स्नेह पाकर कौन सा भाई अपने को धन्य न मानेगा, उसके सकेत मात्र पर अपने प्राण निछावर नहीं कर देगा?

झूले के गीत के ही अन्तर्गत लडकी की विदाई के समय का एक गीत है। यह गीत कितना मार्मिक है! यह गीत आँसुओ की भाषा मे रचा गया है। इसम पत्थर को पिघला देने की क्षमता है। इसका सन्देश शाश्वत

है। रस-परिपाक की दृष्टि से यह गीत अद्वितीय है। काव्य के सारे गुण इस गीत में अयाचित ही आ गये है। इस गीत की बिदा होती बेटी की वदना और माँ के सम्बन्ध में उसकी भावना पूरे नारी समाज की वेदना और भावना है—

बाबा, निबिया क पेड जिनि काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर।
बलैया लेऊ बीरन।
बाबा, बिटियउ जिनि कोउ दुख देय
बिटिया चिरैया की नाई।
बलैया लेऊं बीरन।
सब रे चिरैया उडि जइहै,
रहि जइहै निबिया अकेलि।
बलैया लेऊ बीरन।
सबरे बिटिया जइहै सासुर,
रहि जइहै माइ अकेलि।
बलैया लेऊ बीरन।

कन्या विदा होते समय अपने पिता से याचना करती है कि वह दरवाजे के सामने लगे नीम का पेड न काटेगे। क्यो? इसलिये कि उस नीम के पेड पर चिडियाँ बसेरा लेती हैं। कन्या फिर कहती है, "बाबा, कोई भी अपनी कन्या को दुख न दे।" क्यो? इसलिए कि इन कन्याओ की स्थिति ठीक उन चिडियो जेसी होती है तो कुछ समय पेड पर बसेरा लेकर उड जाती है। जिस प्रकार चिडियो के उड जाने पर नीम का पेड अकेला रह जाता है, उसी प्रकार जब माँ की गोद मे कुछ समय रहकर, उसके आँगन की शोभा बढाकर, उसके सिन्दूर और कोख को धन्य बनाकर, सभी कन्याएँ ससुराल चली जाती है तो माँ अकेली की अकेली रह जाती है।

कन्या की तुलना चिडियो से, माँ की उपमा नीम के वृक्ष से करके यहाँ इस लोक गीत के अनाम गायक ने सहज ही हमारी कोमलतम भाव-

नाओं को उभारने और हमारी करुणा को जगाने मे सफलता प्राप्त कर ली है। जब मानवीय संवेदनाओं का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है कि प्राकृतिक तत्व भी उसमे डूबने लगते है, उसमे समा जाते है तो उनकी शक्ति अपरिमित हो जाती है।

सूरदास की पंक्ति—

मधुबन तुम कत रहत हरे,
बिरह वियोग श्याम सुन्दर के
ठाढे क्यो न जरे ?

पढते ही सहसा हमारी आँखे भीग जाती है। जिस प्रकार वृक्ष की डाल पर चिड़िया रहती है, वहीं बसेरा लेती है, उसी की शीतल छाया मे पलती है, उसी प्रकार ये लड़कियाँ अपनी माँ की गोद मे, उसके आंचल की छाया मे पलती हैं और जब बडी होती हैं, विवाह योग्य हो जाती हैं तो वे परायी हो जाती है, माँ की गोद को सूना कर ससुराल चली जाती है।

मा की इस वेदना को लड़कियाँ खूब समझती हैं। उनका नारी-हृदय सरलता पूर्वक माँ की पीडा और व्यथा को अनुभव कर सकता है। इसीलिए लोक गीतकार ने पिता के घर से विदा लेती हुयी बेटी के मुख से यह निवेदन कराया है। यह गीत प्रत्येक माता की भावनात्मक स्थिति का परिचय देता है। सामन्ती युग का यह गीत आज भी नारी हृदय को वैसे ही रुलाता है। आज भी इस गीत को सुनाने पर आँसू रोके नही रुकते। जब तक बेटी के प्रति माँ की ममता बनी रहेगी, जब तक बेटी के विवाह के उपरात ससुराल जाने की प्रथा चलती रहेगी, जब तक मानव हृदय मे करुणा रस का स्रोत रहेगा, यह गीत अमर रहेगा, श्रोताओं को करुणा विगलित करता रहेगा।

हमारे गावो मे भूमिहीन खेतिहरो, मजदूरो का एक बहुत बडा भाग है। इन लोगो को वे सारे काम सौंपे जाते हैं जिनसे आमदनी बहुत कम होती है और जिन्हे दूसरे वर्ग के लोग करना भी नहीं चाहते। खेत खलिहानो मे मुख्य काम तो दूसरे लोग करते हैं परन्तु खेत निराने का

काम नीची जाति के लोगो, विशेषत औरतो को दिया जाता है। खलि-हानो के उठ जाने के बाद इनको खेतो से दाना बटोरने का हक भी मिल जाता है। निराना का अर्थ है खेतो मे से अनावश्यक घास-पातो को निकाल देना जिससे फसल के पौधो के उगने बढने मे दिक्कत न हो। यह काम सावन के महीने मे प्राय: होता है। खेत निराते समय औरते सामूहिक रूप से गाती भी रहती है। उनके गीतो मे रस तो होता ही है, विचार की सामग्री भी बहुत रहती है। उनमे सामाजिक मर्यादाओ के प्रति बडी सजगता रहती है। इन गीतो मे अन्य अगणित गुणो के साथ मानवीय सवेदनाओ और सामाजिक सघर्षो तथा विषमताओ के चित्र भी बहुत मिलते है।

निरवाही के एक गीत का साराश यह है। एक बहिन के घर एक भाई आता है। सास उसका अनादार करती है। बहिन किसी प्रकार लड झगडकर अपने भाई के लिये अच्छा भोजन तैयार करती है। भाई जब खाने बैठता है तो अपनी बहिन को देखता है। उसकी हालत देखकर भाई की आँखो से आँसू चलने लगता है। वह अपने बहनोई से शिकायत करता है कि, "आपने मेरी चाँद, सूरज जैसी दीप्तमती बहिन को इतना कष्ट दिया कि वह दुख मे जल जल कर कोयला हो गयी है।"

इसके बाद मौका पाकर बहिन अपने भाई को अपना दुखडा सुनाती है। वह कहती है, "भैया, मे जाने कितने मन कूटती हूँ, कितने मन पीसती हूँ, कितने मन की रसोई बनाती हूँ। उसके बाद भी बहुत सा बर्तन माजना पडता है, बहुत दूर जाकर गहरे कुएँ से पानी खीचकर लाना पडता है। जब सब लोग खा-पी लेते है तो मेरी बारी आती है। मुझे सबसे बाद वाली छोटी रोटी मिलती है। उसमे भी ननद के लिए कलेवा रखना पडता है, चरवाहे को देना पडता है, देवर के लिए बचाना पडता है, कुत्ते बिल्ली को देना पडता है। कपडो का हाल भी बुरा है। उतारा हुआ कपडा मुझे मिलता है। उसमे से भी ननद के लिए ओढनी देनी पडती है और देवर के लिए कछोटा बनता है। जो कपडा बच रहता है उसी से मे अपना तन-बदन ढँकती हूँ।"

भाई हाय कर उठा। बहिन ने फिर कहा, "भैया, यह दुख भोजी के सामने मत कहना, नही तो वह सब जगह शोर कर देगी। माँ से मत कहना नहीं तो उसकी छाती फट जायगी। चाची से मत कहना नही तो वह बोलियाँ बोलेगी। बाबू जी से मत कहना नही तो वह सबके सामने बैठकर रोवेंगे। बहिन से भी मत कहना नही तो वह ससुराल जाने से इन्कार कर देगी। यह दुख उस अगुआ से अवश्य कहना जिसने मेरी शादी करायी थी और उस ब्राह्मण से भी जरूर कहना जिसने लग्न की मुहूर्त देखकर विवाह कराया था।

अन्त मे बहिन कहती है, "भैया, तुम इस दुख की गठरी को बाँध कर नदी मे छोड देना।" अर्थात् किसी से भी मत कहना कि मैं इतनी दुखी हूँ।

भाई घर पहुँचाता है। पिता पूछता है, "बिटिया को क्यो नही लाए?" भाई कह पडता है, "जैसे जमुना उमड कर बह रही है वैसे ही मेरी बहिन की आँखो से आँसू उमडते आ रहे है।" पिता तडप उठता है, "तुम्हारी जाँघे थक गयी थीं या तुम्हारी बाहो मे घुन लग गया था कि तुम उसे रोता ही छोड आये?"

वह भीतर जाता है। पत्नी खाना खाते समय पूछती है कि ननद कैसे है। उत्तर म वह कहता है—

जैसे धनिया, उअले अंजोरिय रे ना,
धनिया तैसे उअल मोर बहिनियाँ रे ना।

'जिम तरह आसमान का चन्दा नित नित प्रकाशमान होता जाता है उसी प्रकार मेरी बहिन भी नित नित उन्नति कर रही है, सुखी और समृद्ध होती जा रही है।"

इस गीत से भारतीय कृषक समाज के जीवन पर सम्यक् प्रकाश पडता है। नव विवाहिता कन्या के साथ ससुराल मे जो अत्याचार होते हैं उसका यहाँ सच्चा वर्णन किया गया है। अतिशयोक्ति बिल्कुल नही की की गयी है। बहिन अपने भाई के सामने तो अपना सारा हाल बता जाती

है मगर वह नही चाहती कि उसके माता-पिता को किसी प्रकार का कष्ट हो या उन्हे अपमानित होना पडे। वह यह भी नही चाहती कि उसके ससुराल वालो की किसी भी प्रकार की बदनामी हो। वह मर्यादा शीला भारतीय ललना सब कुछ सह लेना चाहती है, मगर अपने ससुराल वालो की बद-नामी नही चाहती। उसे किसी से शिकायत नहा। यदि उसे किसी पर रोष है तो उस अगुवा पर जिसने ऐसे घर मे उसका विवाह तय करके उसकी जिदगी बरबाद कर दी और उस ब्राह्मण से है जिसने गलत तरीके से सायत देखी।

यह गीत नीची जाति की विशेषतया चमारो की स्त्रिया द्वारा सामूहिक रूप मे खेत निराते समय गाया जाता है। सामाजिक जीवन का कितना यथातथ्य वर्णन इस गीत मे है। इसमे कितनी व्यथा है, कितनी पीडा, कितना हाहाकार है! फिर भी कितना सयम, कितनी मर्यादाशीलता है! कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो इस गीत को सुनकर रो न उठे?

इस गीत का रचयिता कौन था? कौन वह कलाकार था जिसने इन शब्दो मे परवश स्त्री समाज के समस्त करुणा क्रन्दन को भर लिया? खेत निराते समय इस गीत को ऊँचे स्वर मे सम्मिलित रूप से गाती हुई अपढ, निम्न श्रेणी की अनाभिजात्य स्त्रियॉ क्या इस समाज के अत्याचारो का भण्डाफोड नही करती? कौन है जो इस गीत मे वर्णित सच्चाइयो को चुनौती दे सके? कौन है जो इसकी मर्यादाशीलता के सामने, सयमशीलता के सामने, सिर न झुका देगा? यह गीत सभी सवेदनशील व्यक्तिया के लिए, सभी कवियो और कलाकारो के लिए, सभी समाज के उद्धार का दम भरने वाले नेताओ के लिए मूक नारी समाज की खुली चुनौती है, जिसे अनसुनी करके इस जर्जर समाज व्यवस्था को अधिक दिनो तक नही चलाया जा सकता।

वीरपूजा

अभी कुछ वर्ष पहिले तक देहातो और शहरो मे भी हॉथ से चक्की पीसने की प्रथा रही है। आटा पीसने की मशीनो के आ जाने के कारण

धीरे-धीरे हाँथ से चक्की चलाकर आटा पीसने की प्रथा समाप्त होती जा रही है। जिस प्रकार निरवाही करते समय औरते गाना गाती हैं उसी प्रकार चक्की पीसते समय भी वे गाती रहती है। चक्की पीसने का समय प्राय भोर बेला ही हुआ करता था। सूरज निकलने के काफी पहिले ही यह काम समाप्त हो जाता था। ज्यो-ज्यो यह प्रथा मिटती जा रही है त्यो त्यो ये औरते जाँते-चक्की के गीतो को भी भूलती जा रही है। परन्तु इन गीतो मे कितना रस है, कितनी शक्ति है, कितनी चित्रात्मकता है यह तो इन गीता के सुनने पर ही मालूम हो जाता है।

चक्की का एक गीत है जिसका सम्बन्ध सन् १८५७ के प्रथम स्वातन्त्रय युद्ध क वीर सेनानी बाबू कुअर सिंह से है। बाबू कुअर सिह भोजपुरी क्षेत्र के राणा प्रताप कहे जा सकते हैं। वृद्धावस्था के बावजूद बाबू साहब ने जिस योग्यता और बहादुरी के साथ स्वतत्रता सग्राम का सचालन किया, जिस तरह बार-बार अग्रेजी फौजो को हराया और मरने के तीन दिन पहिले भी वह अंग्रेजी फौज को मार भगाने मे जिस तरह सफल हुए, इन घटनाओ की कल्पना करके ही हम रोमाचित हो जाते हैं।

कुवर सिह की पूजा अब भी घर-घर मे होती है। औरते उनके नाम से मनौतियाँ मानती हैं, नव विवाहित वधुएँ उनसे अपने अमर सोहाग की माँग करती है, माताएँ अपने बच्चो को बारे मे कहानियाँ सुनाकर उन्हे वीरता और देश भक्ति की शिक्षा देती हैं। उनके सम्बन्ध मे बिरहे गाए जाते है। खेतो पर काम करते अलमस्त किसान उनके नाम की टेर लगाते रहते हैं। जाँते पर भी उनके सम्बन्ध मे गीत गाए जाते हैं। कृषक समाज प्रत्येक सम्भव अवसर पर बाबू कुवर सिह को याद करता है, गीत गाता है, पुराने गौरवशाली इतिहास को बार-बार याद करता है। ऊँचे पढे लिखे समाज के इतिहासकारो ने चाहे अमर शहीद और सेनानी बाबू कुवर सिह की वीरता की गाथा को भुला दिया हो, परन्तु लोक मानस पर अपनी जो अमिट छाप बाबू कुवर सिह छोड गए थे, वह अब तक ज्यो की त्यो बनी हुई है।—

जॉति के एक गीत का थोडा सा अश हम नीचे दे रहे हैं—

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुअर सिह,
ए सुन अमर सिह, अमर सिह भाय हो राम।
चमडा के टोडवा दॉत से हो काटे कि,
छतरी के धरम नसाय हो राम।१।
बाबू कुँवर सिह औ भाई अमर सिह,
दोनो अपने है भाय हो राम।
बतिया के कारण से बाबू कुवर सिह,
फिरगी से रेढ बढाय हो राम।२।
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू,
कोइलवर मे रहे छाय हो राम।
लाख गोला तुहुँ के गनि के मरिहौ,
छोड बरहरवा के राज हो राम।३।
रोवत बाडे बाबू तो कुँवर सिह
मुखवा पर धर के रुमाल हो राम।
ले ली लडइया हमतो बूढा हो समय मे,
अब कउन होइहै हवाल हो राम।४।

बाबू कुवर सिंह और अमर सिह भाई थे। कुवर सिंह ने अमर सिह के पास पत्र लिखा कि अब तो चमडे का कारतूस दॉत से काटना होगा, ऐसा हुक्म सिपाहियो को हो गया है। परन्तु इससे क्षत्रिय का धर्म नष्ट हो जायगा, इसलिए हमे ऐसा हुक्म नही मानना चाहिए। इसी बात पर बाबू कुवर सिंह की अग्रेजो से चल गयी। दोनो की शत्रुता बढती गयी।

अँग्रेजो का कैम्प दानापुर मे था। वहॉ से उठकर उन्होने आगे आकर कोइलवर मे डेरा डाला। उन्होने कुँवर सिंह के पास कहला भेजा कि वह बरहरवा छोड दे, नही तो एक लाख गोले गिनकर बरसाए जाएँगे।

बाबू कुँवर सिह को अँग्रेजो से कोई डर न था। वे अपने परम्परागत क्षात्र धर्म से परिचित थे। उन्हे केवल इस बात का अफसोस था कि

अब वह अत्यन्त वृद्ध हो गए थे और उनके शरीर मे पहिले जैसी शक्ति नही रह गयी थी। अपनी वृद्धावस्था की परवशता के कारण बाबू कुँवर सिह खीझ कर रो पडे।

परन्तु इतिहास साक्षी है कि बाबू कुवर सिह की आँखो के ये आँसू, कायरता के नही, वीरता, क्रोध और प्रतिहिंसा के आँसू थे। अस्सी वर्ष के जर्जर शरीर मे इस राष्ट्रीय सग्राम के पुनीत अवसर पर नयी शक्ति, नया साहस, नया विश्वास और नयी आशा पैदा हो गयी थी। जहाँ-जहाँ मुठभेड हुयी, बाबू साहब ने अँग्रेजो के छक्के छुड़ा दिए। स्वर्ग जाते जाते भी वह शत्रुओ को पराजित करते गए।

बाबू कुँवर की वीर गाथा भोजपुरी लोकगीतो मे बिखरी पडी है। ये लोक गीत हमारे राष्ट्रीय इतिहास की मूल्यवान कडी है। जिस समय विन्सेन्ट स्मिथ, वैलेन्टाइन शिराल आदि इस सघर्ष के इतिहास पर असत्य का पर्दा डालने मे लगे हुए थे, उस समय इन लोक गीतो ने अपने आँचल मे छिपाकर इन पवित्र तथ्यो की रक्षा की थी। कुँवर सिह का नाम आज भी इन गीतों के कारण भोजपुरी क्षेत्र के प्रत्येक घर मे व्याप्त है।

प्रणय और भूख

हमारे लोक गीतो मे हृदय के सारे भाव पूरे वेग के साथ उठते उभरते दिखाई देते है। शृगार सम्बन्धी गीतो मे जितनी स्पष्टता और शक्ति होती है, आर्थिक वैषम्य, जीवन की कटुता और दुख पहुँचाने वाली सच्चाइयाँ भी उतनी ही तीव्रता और शक्ति के साथ इन गीतो मे अभिव्यक्ति पाती हैं।

भूखे भजन न होहि गोपाला।
ले लो कण्ठी, ले लो माला॥

इस अति प्रचलित कहावत मे भूख की तीव्रता पर ही बल दिया गया है। भूख मनुष्य से कौन सा पाप नही करवा लेती? इसीलिए अन्न को ब्रह्म के समक्ष ला बिठा देने की बात हमारे हमारे शास्त्रो मे की गई है।

एक लोक गीत का एक टुकडा है।

भूखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।

साथ ही बिरहे का एक टुकडा और भी है जो बिल्कुल इसके बिपरीत पड़ता है। वह टुकडा है—

भुखिया के मारे बिरहा बिसरिगा, भूलि गयी कजरी कबीर।
देखि के गोरि के मोहनि सुरति, अब उठै न करेजवा मे पीर।

स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण ही अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति है। इन दोनो टुकडो को जरा ध्यान पूर्वक देखे। प्रेमिका की ओर से कहा गया है, "मुझे न भूख लगती है, न प्यास लगती है। मुझे तो बस उनका (अपने प्रेमी का) मोह लगता है।" स्त्री का प्रेम पुरुष के प्रेम से अधिक गहरा, शक्तिशाली, वेगवान होता है। मनोविज्ञान के पडित इसको मानते है। वह जब प्रेम करती है तो अपना तन, मन, सुख, दुख, भूख, प्यास भूल जाती है। वह अपने को भूल जाती है। वह अपने को उन्ही का, उन्ही के लिए, समझती है। उसका निजी व्यक्तित्व रह ही नहीं जाता। तभी उसको न भूख लगती है, न प्यास लगती है, बस उसे पिया का मोह लगता है।

परन्तु पुरुष का प्रेम सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है। वह प्रेम तो करता है और उसके लिए नाना प्रकार के त्याग भी करता है। परन्तु वह अपने को बिल्कुल मिटा नही देता। वह अपने को बिल्कुल बिसरा नही देता। प्रेम करते हुए भी उसे अपने तन, मन, सुख, दुख, भूख, प्यास की सुधि बनी रहती है। इसीलिए जब उसे कडाके की भूख लगती है तो वह कजरी, बिरहा, कबीर, सब कुछ भूल जाता है और अपनी प्रेमिका की मोहनी सूरत देखकर उसके कलेजे मे पीर नही उठती।

परन्तु यह तो इस गीत की एकागी व्याख्या हुयी। असल बात यह है कि इस गीत मे गीतकार ने भावुकता के स्थान पर जीवन की कठोर सच्चाई, भूख का जोर, पर बल दिया है और कहा है कि जिस प्रेमिका के

कारण मनुष्य अपना राजपाट, धन धान्य, धर्म कर्म सब कुछ छोडने को उद्यत हो जाता है उसी प्रेमिका की मोहनी सूरत उस उस वक्त फीकी और अनाकर्षक लगती है, जब कि उसके पट मे चूहे डण्ड पेलते रहते हैं। अर्थात् प्रेम तभी किया जा सकता है जब कि तन मन स्वस्थ हो, भूख की विह्वलता से पीडित और क्लान्त न हो। स्वस्थ तन मे स्वस्थ मन और स्वस्थ मन मे ही स्वस्थ प्रेम निवास कर सकता है। जब तक मनुष्य अभावो से पीडित रहेगा, मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे असफल रहेगा, तब तक सच्चे अर्थ मे वह प्रेम नहीं कर सकता, सगीत, कला, कविता सब कुछ उसके लिए निरर्थक है।

अब, 'भूखिया न लागै, पियसिया न लागै, हमके मोहिया लागै हो' वाली पक्ति पर ध्यान दीजिये। पूरा गीत इस प्रकार है—

पुरुब से आयी रेलिया, पछिउ से आयी जहजिया,
पिया के लादि ले गयी हो।
रेलिया होइगा मोर सवतिया,
पिया के लादि ले गयी हो।
रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी,
उई पइसवै बैरी हो।
देसवा देसवा भरमावै,
उई पइसवै बैरी हो।
भुखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।
तोहरी देखि कै सुरतिया,
हमके मोहिया लागै हो।
सेर भर गेहुँवा बरिस दिन खइबै,
पिया के जाय न देबै हो।
रखबै अँखिया के हुजुरवा,
पिया के जाय न देबै हो।

निश्चय ही यह लोक गीत उस समय रचा गया था जब कि रेलवे की लाइने बिछ गयी थो और गॉवो के नौजवान लोग कमाने के लिए बम्बई, कलकत्ता रेलगाडियो पर चढकर जाने लगे थे। बिरहिणी ग्राम बधू पूरब-पश्चिम दोनो ओर से आने वाली रेलगाडी और जहाज को अपने शत्रु के रूप मे, सौत के रूप मे, देखती है। रेलगाडी और जहाज को सौत के रूप मे गीत मे प्रयुक्त करना लोकगीतकार के ही बूते की बात है। भावनाओ को तीव्रता प्रदान करने, विचारो को स्पष्ट करने और सवेदनाओ को सजग करने के लिए ही उपमाओ और उदाहरणो आदि का सहारा लिया जाता है। लोकगीतकार बेधडक प्रेमी को परदेश ले जाने वाले इन यातायात के साधनो को सौत के रूप मे चित्रित कर देता है। रोती बिलखती नई नवेली बहू चीत्कार कर उठती है कि, "हाय, मेरी सौत रेलगाडी मेरे पिया को मेरे पास से छीन ले गयी!" फिर वह कुछ स्वस्थ होती है। सोचती है, आखिर इस जहाज अथवा रेलगाडी मे कौन सा ऐसा आकर्षण है जो वह मुझसे मेरे पति को दूर कर देती है? उसे ध्यान आता है कि असली शत्रु पैसा है। इसी पैसे के ही कारण उसका पति उससे दूर होने पर मजबूर हुआ है। यदि पैसो की आवश्यकता न होती तो उसका पति उसे इस तरह रोता, बिलखता छोडकर रेलगाडी पर चढकर विदेश क्यो चला जाता?

पैसा! हाय, दो अक्षरा का यह शब्द कितना सत्यानाशी, कितना कठोर, कितना निर्मम है! गॉव की गरीब किसान बेटी सोचती है यदि वह भूख भूख न चिल्लाती, यदि वह कपडा की मॉग न करती, यदि वह घर की इच्छा न करती तो उसे पैसो की जरूरत ही न होती। यदि उसे पैसा की जरूरत न होती तो उसका पति उसे छोडकर कलकत्ता, बम्बई जाने के लिए मजबूर न होता।

वह अपनी भूख-प्यास, अपनी भौतिक आवश्तकताओ को याद कर आत्मग्लानि से गड जाती है, वह पछताती है और फिर आर्त कातरस्वर मे नारी के आत्म समर्पण की भावना को सार्थकता प्रदान करती हुई कह पडती है—

भूखिया न लागै, पियसिया न लागै,
हमके मोहिया लागै हो।

इतना ही निवेदन कर देने से उसका जी नहीं भरता। वह फिर आगे कहती है—

सेर भर गेहुँवा, बरिस दिन खइबै,
पिया के जाय न देबै हो।

बेचारी लडकी इस बात के लिए तैयार है कि वह केवल एक सेर गेहूँ पीस कर उसी पर बरस भर गुजारा कर लेगी, मगर वह अपने प्रिय को परदेस न जाने देगी।

जिस समय अंग्रेजी शासन का सिक्का जम गया और गरीब भूमिहीन खेतिहर बम्बई कलकत्ता जाकर पैसा कमाने पर मजबूर हो गये उस समय हजारो लाखो नवपरिणीता बहुओ को तारे गिन गिनकर बरसो तक राते बितानी पडी थीं। इस लोक गीत मे उसी सामाजिक स्थिति का एक रोमाचकारी चित्र है जब कि पैसा कमाने के लिए पति रेलगाडी पर चढकर विदेश जाने को मजबूर हुआ था, और सारी मिन्नत आरजुओ के बाद भी पत्नी पति को परदेश जाने से रोक न सकी थी, जब पैसो की वेदी पर प्रेम, शृगार और सयोग-सुख बलिदान हुआ था, जब अर्थ शास्त्र के कठोर नियमो ने प्रेम की कोमल गर्दन को मरोड दिया था।

चल ले चरखवा!

चरखा आदि काल से ही हमारी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का महत्व पूर्ण अग रहा है। इसीलिए वैदिक काल से आज तक के साहित्य मे हमे चर्खे का चर्चा मिलता है। कविवर मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत' मे बनवासिनी सीता से चर्खा चलवाया है। 'साकेत' आधुनिक युग का काव्य है अत उसमे राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतीक चर्खे का आ जाना अस्वाभाविक नही है, विशेषतया जब कवि ने जान बूझकर 'साकेत' के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न अगो को पुष्ट करने तथा बल पहुँचाने का स्पष्ट प्रयत्न किया है। मगर यदि चर्खे का इतिहास मानव सभ्यता के

विकास के इतिहास के साथ इतना मिला-जुला न होता तो सीता जी के हाथो मे चरखा थमा देने की गलती गुप्त जी कदापि न करते।

वेदो मे सूत कातने और कपडा बनाने का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि से लेकर हमारे लोकगीतो तक चर्खा चलाने, सूत कातने और कपडा बनाने का अटूट क्रम मिलता है। योरप मे भी ऐसा ही है। हो सकता है कि पहिले कपडा बुनने वालो की जाति अलग न रही हो और धीरे धीरे आबादी की सख्या बढने तथा कामो का बटवारा करने की प्रवृत्ति के जाग्रत होने पर यह काम एक वर्ग विशेष और फिर जाति विशेप के हाथ मे आ गया हो। लगता है कि चरखा तो फिर भी अधिक तर घरो मे चलता था। हॉ, बुनने का काम, कुशल काम होने के कारण, कुशल हाथो मे आ गया हो और बाद मे इन कुशल कारीगरो की जाति ही अलग हो गयी हो। चर्खे तो आज भी पजाब, गुजरात, आन्ध्र आदि प्रदेशो मे अच्छी तरह चलते है। इस उद्योग को गॉधी जी के आशीर्वाद से बहुत बल मिला। चरखा बापू जी की कृपा से ग्राम उद्योग का मूल आधार और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लडने का एक मजबूत अस्त्र भी बन गया।

'ग्राम गीत' मे पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा उद्धृत अथर्ववेद का एक मन्त्र है जिसमे वधू वर को अपने हाथ से काते हुए सूत का वस्त्र देती हुई कहती है, "जो कपडे के अन्तिम भाग है, जो किनारियॉ है, जो बाने और ताने है, इन सब के साथ पत्नी के द्वारा जो बुना हुआ कपडा होता है, वह हमारे लिए सुखदायक हो।"

एक पजाबी गीत है —

चरखा मेरा अठ फागुडा माल से मेरी नूँ ताड।
पूणी ता बदा लसलसी तन्द कड्ढा दर्याउ।
आगे तो चर्खा रँगला पिच्छे पीढा लाल।
चकलेदे उधर चाकला चकले दे उधर कत्यो।
कत्तन वाली नाजो कोमली।

इसका अर्थ है—

"मेरा चरखा आठ फाको का बना हुआ है। मेरी माल का ताव है। मै बहुत पतली पूनी बनाकर नदी जितना लम्बा तार निकालती हूँ। सामने रगीला चरखा है। पोछे लाल पीढा है। चकले के ऊपर चकला और चकले के ऊपर कथ है। और इस चरखे को चलाने वालो सूत कातने वालो लडको कोमल सुन्दरी है।"

अनेक ऐसे गीत भोजपुरी, अवधी, मैथिली, राजस्थानी आदि भाषाओं मे मिलते हैं जिनम चरखे ने वियोगिनिया को जीने का सहारा और अपने सतीत्व की रक्षा करने का सम्बल दिया है। एक राजस्थानी लोकगीत है—

चाल रे चरखला, हाल रे चरखला।
ताकू तेरो सो बणो, लाल गुलाबी माल।
चरकूँ मरकूँ फिरै घेरणी, मधरो मधरो चाल।
चाल रे चरखला।
गुड्डी तेरी राग रगीली, तकली चक्करदार।
चोखो बन्यो दमकडो तेरो, कूकडिए री लार।
चाल रे चरखला।
कातणवाली छैल छबीली, बैठी पीढो ढाल।
मही मही वा पूणी कातै, लम्बो काढै तार।
चाल रे चरखला।

इस गीत मे चरखे से सम्बन्धी सारे शब्द प्रायः आ गए हैं, जो उच्चारण भेद के साथ सारे उत्तराखण्ड मे प्रचलित हैं। उपर्युक्त पजाबी लोक गीत की भाति इस चरखे का चलाने वाली स्त्री भी छैल छबीली है। पजाबी लोक गीत की कातने वाली कोमल सुन्दरी है। राजस्थानी चरखा चलाने वाली स्त्री छैल छबीली है। दोनो मस्त होकर, तन्मय होकर, चरखा चलाती हे। वे श्रम करती है और अपने श्रम का मूल्य सतोष ओर आनन्द के रूप मे प्राप्त करती हे।

मगर भोजपुरी नारी चरखा कातकर अपने पति के वियोग का दुख सह लेती है। वह मन ही मन सोचती है—

धरि गइलै चनन चरखवा,
सिरजि गज ओबरि हो राम।
दिन भर कतबइ चरखवा,
ओहरिया ओठकाइ देबइ हो राम।
साझि के सुतबै मइया जी के कोरवा,
त प्रभु बिसराइ देबइ हो राम।

'वह तो कोठरी बनाकर उसमे चन्दन का चरखा रख गए हैं। मैं दिन भर चरखा कातूँगी, फिर उसे उठाकर रख दूँगी। सन्ध्या को मा की गोद मे सो जाऊगी और इस तरह मैं अपने पति के वियोग का दुख भुला दूँगी।"

श्रम की महत्ता—

जनेऊ (यज्ञोपवीत) का एक गीत है —

राइयो रुक्मिन बीज लै जाय।
राम लछिमन दोनो बोवै कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी, काहे की है डन्डी।
चन्दन चरखी, सोने की है डन्डी।
राइयो रुक्मिन ओटै कपास।
काहै की है धुनिया काहै की है तात।
सोने की धुनिया रेशम की है तात।
राइयो रुक्मिन धूनै कपास।
काहे की है रहटा, काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातै सूत।
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।

तीन तागा, चार तागा, पाचवे जनेउ।
पाच तागा, छः तागा, सातवे जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ।
पहिलो जनेउ गनेस जी को देव।
दूसरा जनेउ ब्रह्मा जी को देव।
तीसरा जनेउ महादेव जी को देव।
चौथी जनेउ विष्णु जी को देव।
पाचवो जनेउ सब देवतन को देव।
छठवो जनेउ सब पुरखन को देव।
सातवों जनेउ बरुवा को देव।
अहिर गडेरिया बम्हन कर लेव।

—ग्रामगीत

रामायण के राजा जनक ने हल चलाकर खेत जोता था। इस गीत के राम लक्ष्मण दोनो कपास बोते है। रुक्मिणी कपास धुनती है और सूत कातती है। उस सूत की जनेउ बनती है। वह जनेउ सारे देवताओ को समर्पित की जाती है। उसकी पवित्रता की महिमा का क्या कहना? अहीर गडेरिया भी उस जनेउ को धारण करने के बाद ब्राह्मणो की तरह पवित्र और उच्च हो जाते है। इस गीत मे श्रम की महत्ता और पवित्रता पर कितना बल दिया गया है? खेत जोतना, कपास बोना, रुई धुनना, और सूत कातना हेय कार्य नही है। श्रम अपने मे अत्यन्त पवित्र वस्तु है। उसमे ब्राह्मण और शूद्र का भेद नही होता। जो लोग हल की मूठ पकडना अधर्म समझते हैं, नीच कर्म समझते हैं, उनके लिए यह गीत चुनौती है। हरवाहा, धुनयाँ, जुलाहा आदि को इसीलिए नीच समझा जाता है कि वे खेत जोतते हैं, रुई धुनते हैं, कपडे बुनते है। जो लोग इनके परिश्रम से लाभ उठाते हैं, अपने तन की रक्षा करते हैं वे अपने को महापुरुष समझते है। यह गीत इस धारणा को भ्रामक और अनुचित सिद्ध करता है। श्रम स्वय पवित्र वस्तु है। श्रम का फल भी पवित्र ही होता है। पवित्र केवल

जनेऊ ही नही होती। हर प्रकार के श्रम से उत्पन्न वस्तु पवित्र होती है, क्योकि ईमानदारी से बहा हुआ श्रम स्वेद उसमे लगा रहता है।

श्रम और शृंगार का समन्वय, संघर्ष और संतोष का मेल, कर्म और आनन्द की एकता ही, कृषक जीवन की सबसे बडी विशेषता है। वह हल जोतते हुए, बीज बोते हुए, खेत निराते हुए, फसल काटते हुए, खलिहान से दाने घर ले जाते हुए गाता रहता है। वह गाता है। उसकी माताएँ, बेटियाँ, बहिनें और बहुएँ, सभी गाती है। परिश्रम करते समय गाते रहने से परिश्रम की थकान कम हो जाती है, उसमे एक रंगीनी पैदा होती है, जान आ जाती है। इसके अनेक उदाहरण हमने ऊपर दिये हैं।

पैसा और प्रेम

जाँते का एक गीत है—

देइ गए चनन चरखवा ओंठगनेक मचिया हो राम !
अरे पिया देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोडिउ हो राम !
घुनन लगे चनन चरखवा ओठगने क मचिया हो राम ?
अरे पिया, छुटै चाहै तोहरी दोहइया धरम चाहै डोलै हो राम।

इस गीत मे वियोगिनी पत्नी अब वियोग की स्थिति को सहने मे अपने को असमर्थ पा रही है। जाते समय वह चन्दन का चरखा दे गये थे। बैठने के लिए मचिया दे गए थे। और, अपनी शपथ देकर कह गये थे कि अपने धर्म की रखवाली करना, अपना सतीत्व बचाए रखना। वायदा कर गए थे कि वह परदेश से शीघ्र ही लौटेंगे। मगर उन्होने अपना वायदा पूरा नहीं किया। वह नहीं आए। इन्तजार करते करते आँखे पथरा गयी। समय बहुत बीत गया। यहाँ तक कि चन्दन का चरखा घुनने लगा। जो मचिया दे गये थे वह भी जवाब देने लगी। अब सब्र नहीं होता। बर्दाश्त की भी कोई हद होती है ! बाट जोहने का भी कोई अन्त होता है ! परेशान होकर, घबडाकर वह कह पडती है। "मेरा धर्म छूटा ही चाहता है, तुमने जो शपथ दिलाई थी, वह झूठी पडने वाली है। अब चले आओ।"

जाँता पीसते समय गाती हुयी, चरखा कातने वाली वियोगिनी बाला

के इस आत्म निवेदन के बहाने, गाँवो की अगणित वियोगिनी बालाएँ अपने प्रीतम को याद कर इस प्रकार का आर्तनाद करती आयी है। यदि प्रीतम को कमाने के लिए परदेस न जाना पडता, यदि वह परदेश मे, बगाले के जादू के चक्कर मे, अथवा छुट्टी न मिलने से, इतने लम्बे अरसे तक रुक जाने के लिए मजबूर न होता तो इतने करुण, इतने व्याकुलता पूर्ण, इतने घूँसेमार गीत क्यो सुनने को मिलते? इस प्रकार के गीत पूरबी जिलो मे अधिक इसलिए मिलते है कि यही के लोग अधिक सख्या मे पैसा कमाने के लिए, घर मे व्याहता स्त्री को छोडकर, बम्बई, कलकत्ता, बरमा आदि चले जाया करते थे। आर्थिक कारण मानव को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, और वे किस प्रकार रागात्मक सम्बन्धो को भी छिन्न भिन्न कर देते है, ये लोक गीत इसके प्रमाण है।

कृषक जीवन का आदर्श

एक मारवाडी गीत है—

उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो।
अथूणे होय खेत चवे न आसरो।
नाडा खेत नजीक जडे खोलणा।
इतना दे करतार फेर नही बोलणा।

इसका गायक किसान सिर्फ यह चाहता है कि उसके पिता का घर और उसकी ससुराल एक ही गाँव मे हो, खेत पश्चिम मे हो, झोपडी टपकती न हो और ताला़ब खेत के पास ही हो जिससे बैलो को पानी पीने के लिए उन्हे बहुत दूर न ले जाना पडे। भग.ान इतना दे तो और कुछ नही चाहिए। एक किसान की ये थोडी सी, सरल सी माँगे है, उतनी ही सरल जितना सरल यह गीत है। मगर इतने मे उस किसान ने अपनी सारी आवश्यकताएँ बता दी है। वह किसान किसी मुक्ति अथवा परलोक की आकाक्षा नही रखता। वह बहुत से हाँथी-घोडे, धन-सम्पदा, यश-वैभव भी नही चाहता। वह छोटी सी गृहस्थी चाहता है, जिसमे वह हो, उसकी पत्नी हो। उसकी ससुराल उसी गाँव मे रहेगी तो पत्नी का वियोग भी

सहना होगा। ऐसी झोपड़ी हो जो बरखा बूँदी मे उसे आश्रय दे सके। खेत सीचने ओर बैलो को खिलाने पिलाने की सुविधा हो। बस वह मेहनत करेगा, खेती से अनाज पैदा करेगा, खुद खाएगा, पत्नी को प्यार से रखेगा। बैल गाय की सेवा करेगा। इतनी सी उसकी कामना है, इतनी सी उसकी महत्वकाक्षा है।

इसी प्रकार का एक गीत हमे 'सुत्तनिपात' में मिलता है। यह गीत सहस्रो वर्ष पुराना है और अपनी प्रौढता, चुनौती तथा जीवन के प्रति सच्ची आस्था के लिए अत्यन्त लोकप्रिय है। इस गीत मे आदर्श, सुव्यवस्थित गार्हस्थ्य जीवन के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट की गयी है।

धनिय नाम का एक एक गोप आश्वस्त है कि उसकी गृहस्थी इतनी अच्छी है कि कोई उसका कुछ कर नही सकता। वह बिल्कुल निश्चिन्त है। इतने मे बादलो की गडगडाहट सुनायी देती है। धनिय सजग होता है। वह घर से बाहर निकल कर देखता है कि आसमान मे काले मेघ मडरा रहे है। बिजली कौंध रही है। घनघोर वर्षा होने ही वाली है। वह एक बार घूम कर अपने घर की ओर, खेतो की ओर, गाय बैलो की ओर, और ग्राम वासियो की ओर देखता है। फिर आश्वस्त हो वृष्टि के अधिष्ठाता इन्द्र से कहता है, "हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो।"

धनिय प्राचीन भारतीय कृषक समाज की, जनता की, कर्मठता, आत्मशक्ति और आत्म विश्वास का प्रतीक है। उसके इस चुनौती पूर्ण गीत मे सारे कृषक वर्ग के आत्म विश्वास का एक चित्र आखो के सामने आ जाता है। यह गीत पाली भाषा मे है। "सुत्तनिपात" के उरग वग्ग धनिय सुत्त से यह गीत लिया गया है। गीत का महत्व पूर्ण अश भाषानुवाद के साथ हम यहाँ दे रहे हैं।

पक्कोदनो दुद्ध खीरोऽहमस्मि अनुतीरे महिया समान वासो।
छन्ना कुटि आहितोगिनि अथचे पत्थयसी पवस्स देव!

"मेरे यहाँ भोजन यथेष्ट मात्रा मे वर्तमान है। मेरे घर मे दूध देने वाली गाएँ बधी है। मैं नदी के किनारे अपने कुटुम्बियो के साथ एक घर मे

रहता हूँ। मेरा घर भली भाँति छाया हुआ है। उसमे जलती हुई आग भी मौजूद है। हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो!"

अवक मकसात वज्जरे, कच्छे रुलहतिणे चरन्ति गावो!
बुद्विपि सह्येय मा गत, अथचे पत्थयसो पवस्स देव!

"न यहाँ मक्खियाँ है, न मच्छर। मेरे कछार मे गायो के लिए हरी घास लहरा रही है। वहा चरती हुई मेरी गाएँ वर्षा के वेग सहने मे समर्थ है। हे देव, तुम जितना चाहो बरस लो!"

खिला निखाता असम्प वेधी, दामा मु जमया नव सुसष्ठाना।
नहिं सक्खिन्ति धैनु पापि छेत्रु म, अथचे पत्थयसी पवस्स देव!

"मेरी गायो के खू टे धृढता पूर्वक गडे हुए हैं। मूज की बटी हुयी रस्सियाँ नयी और पोढी है। उन्हे गाय तोड नही सकती। हे देवता, तुम जितना चाहे बरस लो!"

इस पलि गीत मे जो ओज, जो अदम्य उत्साह, जीवन के प्रति जो सच्ची आस्था और विघ्न बाधाओ के प्रति जो उपेक्षा है, वह हमारे लोक गीतो की शाभा और शृगार है, मौलिक आधार है।

इस प्रकार के गीत किसानो के अपने सपनो को साकार रूप देने के प्रयास के प्रमाण होते है। अन्य भाषाओ मे भी ऐसे गीत मिलते हैं। हमने अभी अभी जिन गीतो की व्याख्या की है, उनमे इसी प्रकार की महत्वाकाक्षा अथवा कामना का अभिव्यक्ति मिलती है।

खेती सर्वोत्तम धन्धा मानी जाती है। खेतिहर अन्नदाता होता है। वह सारे समाज का पेट भरने के लिए अन्न उपजाता है। मगर उसकी आवश्यकताएँ कितनी कम होती है? वह अपने खेत को प्यार करता है, गाय बैलो को प्यार करता है, अपनी छोटी सी गृहस्थी को प्यार करता है और अपनी प्राण प्यारी पत्नी का सच्चा जीवन साथी बनता है। दोनो साथ मेहनत करते है। वह पुर हाकता है, तो उसकी पत्नी पुर खींचती है, वह खेत जोतता है तो उसकी स्त्री दाने बिखेरती है। वह खेत गोडता है, तो उसकी पत्नी रोटी माठा लेकर खेत की डाड मेड पर पहुँचा जाती है। उनके जीवन

मे श्रम और शृगार का सहज समन्वय दिखायी देता है, कोई काहिल, सुस्त और नाकारा नही है, कोई, मुफ्त की रोटी नही तोडता। उनका श्रम उन्हें सतोष देता है। उनके गीत उनके श्रम को सार्थक बनाते हैं। उनके गीत उनके जीवन के अग हैं, अविभाज्य अग।

सम सामयिकता

लोक गीतो पर सम-सामयिकता का अत्यधिक प्रभाव रहता है। यदि हम लोक गीतों को ध्यान मे रखे और उनका विश्लेषण करे तो हमारे सामने यह बात अधिक असानी के साथ स्पष्ट हो जायगी। अब तक जितने भी लोक गीत सग्रहीत हो चुके हैं उन पर दृष्टिपात करे तो हमे अनेक गीत इस प्रकार के मिल जाएँगे जो अपने समय की राजनीतिक चहल पहल, आक्रमणो और सघर्षों और उनकी प्रतिक्रियाओ की कहानी कहत है। उदाहरणार्थ, पडित राम नरेश त्रिपाठी के 'ग्राम गीत' मे सग्रहीत एक गीत देखिए—

घोडे चढु दुलहा तूँ घोडे चढ ु, यहि रन बन मे।
दुलहा, बाँधि लेहु ढाल तरुवारि, त यहि रन बन मे॥
पहिरो पियरी पितम्मर यहि रन बन मे।
दुलहा बाँधि लेहु लट पट पाग, त यहि रन बन मे॥
कैसे क बाँधौ पाग, त यहि रन बन मे।
दुलहिनि, मरम न जानौ तोहार, त यहि रन बन मे॥
जतिया तो हमरी पडित कै, यहि रन बन मे।
दुलहा, मुगल क डरिया लुकान, त यहि रन बन मे॥
मारि डारेनि भाई औ' बाप, त यदि रन बन मे॥
दुलहा, मुगल क डरिया लुकान, त यहि रन बन मे॥
यतनी बचनिया क सुनतइ, यहि रन बन मे।
दुलहा घोडे पीठि लिहिन बैठाइ, त यहि रन बन मे॥
यक बन गइलै, दुसर बन यहि रन बन मे।
दुलहा तीसरे मे लागि पियासि, त यहि रन बन मे॥

अरे अरे जनम संघाती, त यहि रन बन मे ।
दुलहा, यक बूँद पनिया पियाव, त यहि रन बन मे ॥
उँचवै चढि के निहारिन यहि रन बन मे ।
दुलहिनि झरना बहै जुड पानि, त यहि रन बन मे ।
दुलहिनि ठाढे है मुगल पचास, त यहि रन बन मे ॥
अरे अरे जन्म सघाती, त यहि रन बन मे ।
दुलहा, एक बूँद पनिया पियाव, त यहि रन बन में ॥
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया, त यहि रन बन मे ॥
यतना बचन सुनि पायनि, त यहि रन बन मे ।
दुलहा खीच लाहेन तरुवरिया, त यहि रन बन मे ॥
ठाढे एक ओर मुगल पचास, त यहि रन बन मे ।
दुलहा एक ओर ठाढे अकेल, त यहि रन बन मे ॥
रामा जूझै है मुगल पचास, त यहि रन बन मे ।
राजा जीति के ठाढ अकेलि, त यहि रन बन मे ॥
पतवा के दोनवाँ लगायनि, यहि रन बन मे ।
दुलहिन पनियाँ पियहु डभकोरि, त यहि रन बन में ॥
पनिया पियै दुलहिन बैठी, त यहि रन बन मे ।
दुलहा पटुकन करै बयारि, त यहिं रन बन में ॥
दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि, त यहि रन बन मे ।
दुलहा हम तोहरे हाँथ बिकानि, त यहि रन बन मे ॥
यतनी बचनियाँ के साथ, त यहि रन बन में ।
दुलहिनि मलवा दिहिन गर डारि, त यहि रन बन मे ॥

इस गीत मे परम्परागत वीर पूजा की भावना तो है ही, इसमें तत्कालीन समाज की दुरावस्था और अव्यवस्था का चित्र भी मिलता है। वह मुगलो और हिन्दुओ के सघर्ष का युग था। मुगल आक्रमणकारियो ने राजकीय स्तर पर जो कुछ किया इतिहास मे उसका वर्णन मिलता है। परन्तु सामाजिक जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, पारिवारिक और

कौटुम्बिक स्तर पर भी उन नवागन्तुको के सम्पर्क का क्या प्रभाव पडा यह जानने के लिए हमें तत्कालीन लोक गीतो की शरण लेनी पडेगी। हमे यह भली भॉति जानना चाहिए कि जिस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी और पद्मावती के कथानक को लेकर इतिहास मे ही नही साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत कुछ लिखा गया (पद्मावत काव्य हमारे सामने है), उसी प्रकार इस घटना के प्रभाव मे ही लोक गीतो मे भी अनेक आख्यान प्रस्तुत हुए। हम यदि इन प्रबन्ध गीतो को पढे तो हमे आज भी रोमाच हो जाएगा। इसी तरह मुगल सिपाहियो की लूट मार, अत्याचार, अनाचार के आधार पर अनेक गीत रचे गए। किसने इन गीतो की रचना की यह हम नहीं जानते। परन्तु ये गीत लोक सम्पत्ति के रूप मे ही प्रतिष्ठित हुए और आज भी वे अगणित लोगो के जिह्वाग्र पर सुशोभित हैं, इसमे कोई सन्देह नही।

ऊपर हमने जिस गीत को उद्वृत किया है उसमे सिर्फ यह कहा गया है कि जगल मे मुगलो के डर से एक लडकी छिपी हुई थी। उसके माता पिता की हत्या उन आततायियो ने कर दी थी। परन्तु वे उस ब्राह्मण कन्या को न छू सके थे। उस जगल मे एक बहादुर घोडसवार आ निकला। लडकी ने उसे सारा हाल बताया। घोड सवार ने उसकी रक्षा करने का जिम्मा लिया। घोडे की पीठ पर उस लडकी को बिठाकर वह वीर कुछ दूर चला ही था कि उस लडकी को प्यास लग आयी। उधर पचास मोगल सिपाही भी दिखाई दे गये। उस घोड सवार की बहादुरी की परीक्षा की घडी निकट आ गयी। उसने मोगलो से युद्ध करके उन्हे परास्त कर दिया। फिर लडकी को पानी पिलाया। अब उस लडकी को उस घोडसवार की हिम्मत और वीरता का प्रमाण मिल चुका था। इसलिए उसने इस बहादुर घोडसवार के गले मे जयमाला डाल दी।

उस युग मे इस प्रकार के गीत सारे देश मे बने होंगे, इसमे कोई सन्देह नहीं। जहॉ जहॉ इन मोगलो के चरण पडे होंगे, जहॉ जहॉ इस प्रकार के अत्याचार, अनाचर हुए होगे वहॉ वहॉ जन मानस मे इसी प्रकार के भाव उठे होंगे और कण्ठों से निकले होंगे। हिन्दी क्षेत्र मे, राज-

स्थान से मिथिला तक, इस प्रकार के गीत पाए जाते हैं। इन गीतो की सार्वभौमिकता और व्यापकता उस समय के पूरे समाज मे व्याप्त अराजकता और अनाचारा का प्रमाण है।

सती प्रथा का अन्त अग्रेजा के जमाने मे हुआ। इसके पहिले यह प्रथा किसी न किसी रूप मे सारे देश मे व्याप्त थी। यो तो इस प्रथा का इतिहास बहुत पुराना है। परन्तु अग्रेजी शासन के कुछ समय पहिले यह प्रथा इसलिए अधिक व्यापक हो गयी थी कि देश और समाज मे व्याप्त अराजकता के कारण नारी समाज अपने को सर्वथा अरक्षित समझने लगा। अपनी मान मर्यादा को बचाने के लिए आग मे जल मरने के सिवाय उसक पास कोई अन्य उपाय नही रह गया था। इसलिए सती होना दैनिक जीवन का अग बन गया था। इस प्रकार के अनेक लोक गीत हमे मिलते है जिनमे 'सत' की रक्षा के लिए अपने शरीर को अग्नि मे झोक देने वाली नारियो की पूजा प्रशसा की गयी है। यह भी समसामयिक स्थिति को चित्रित करने वाले लोक गीतो की पुरानी परम्परा का एक चिह्न है।

सुखी परिवार

एक मारवाडी गीत है—

आज म्हारी ईमली फल लायो।
बहू रिमझिम महला से उतरी, बहू कर सोला सिंगार।
आज म्हारी ईमली फल लायो।
म्हारा सासू जी पूछया ए बहू, थारे गहणारो अर्थ बताव।
सासू गहणा नैके पूछौ, गहणा म्हारो देवर जेठ।
गहणा म्हारी भोली बाई जीरो वीर।
आज म्हारी ईमली फल लायो।
म्हारा ससुरो जी घर का राजा, सासु जी मोरी अर्थ भण्डार।
म्हारा जेठ बाजू बन्द बाकडा, जिठाणी म्हारी बाजू बन्द की लूँगी।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हारी देवर चूडलो दात को, देवराणी म्हारी चूडलारी टीप।
म्हारा कवर जी मोती बाटला, कुल बहू मोरा मोत्या बीच की लाल।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हारी धीयज चोलीपान की, जवाई म्हारे चमेल्या फूल।
म्हारी ननद कसूमल कांचनी, नणदोई म्हारो गजमोत्या रो द्वार।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हारा सायब सिर को सेवरी, सायवानी म्हे तो से जांरा सिणगार।
म्हे तो वार्या जी बहू जी थारे बोलने, लडायो म्हारे सो परिवार।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

म्हे तो वार्या जी सासू जी थारी, कूखने थे जो आया अर्जुन भीम।
म्हे तो वार्या जी वाई जी थारी गोदने, थे खिलाया लछिमण राम।
आज म्हारी ईमली फल लायो।

यह गीत शीलवती बहू और उस सुखी परिवार का चित्र पेश करता है जो सचमुच आदर्श है। गीत का भावार्थ यह है—आज मेरी ईमली मे फल आया है। सोलहो शृङ्गार करके छमछम करती बहू महल से उतरी। उसे इतना प्रसन्न देखकर सास ने पूछा, "हे बहू, तुम्हारे पास क्या गहने हैं तुम आज इतनी प्रसन्न क्यो दिख रही हो ?"

बहू ने तपाक से उत्तर दिया, "मेरी सास जी, आप मेरे गहनो की बात क्या पूछती हैं ? मेरे असली गहने तो मेरे देवर और जेठ हैं। मेरा गहना तो मेरी सुशील ननद का प्यारा भाई है। मेरे ससुर तो मेरे घर के राजा हैं। मेरी सास जी घर की मालकिन हैं, अन्नपूर्णा हैं। मेरे जेठ जी तो बाजूबन्द हैं और जेठानी जी बाजूबन्द की लटकन, मेरा देवर मेरी हाथी दात की चूडी है और देवरानी उसकी टीप। मेरा पुत्र मोतियो का हार है और मेरी बहू मोतियो के बीच का लाल। मेरी कन्या जरीदार चोली है और मेरा दामाद चमेली का फूल। मेरी ननद कुसुम्बी चोली है और ननदोई गजमुक्ताओ का हार।

"मेरे स्वामी सिर के मुकुट हैं और में उनकी सेज का सिंगार हूँ (सभवा मे चमके पिय की पगरिया, सेजिया पर बिदया हमार !) ।"

बहू की इन प्यारी प्यारी बातो का सुनकर सास को बडी खुशी हुई। उन्होने स्नेह से कहा, "बहूरानी, मे तो तुम्हारी मिश्री जैसी बोली पर निछावर हूँ। तुमने मेरे सारे परिवार को सच्चा सुख और आनन्द प्रदान किया है। (माता कौशल्या ने इन्ही शब्दा मे सीता जी को भी तो सदैव याद किया था !)

बहू कब चुप रहने वाली थी ? उसने अपनी सास को फिर शानदार और आदर तथा श्रद्धा से भरा उत्तर दिया, "सास जी, मैं तो तुम्हारी कोख पर निछावर हूँ। तुमने तो भीम और अर्जुन जैसे प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये हैं। और हे ननद, मैं तुम्हारी गोद पर निछावर हूँ। तुमने तो राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को अपनी गोद मे खेलाया है।"

इस मारवाडी लोक गीत मे सास-बहू तथा ननद-भौजाई के आपसी सम्बन्ध तथा पति, ससुर और देवर के प्रति श्रद्धा, भक्ति, गर्व और स्नेह का जो सजीव चित्र रखा गया है, वह आदर्श ही नही सत्य भी है। अक्सर लोक गीतों मे सास बहू और ननद भौजाई के झगडा टन्टों को ही चित्रित किया जाता है। परन्तु ऐसे भी अनेक गीत मिलते हैं जिनमे उपर्युक्त गीत की ध्वनि रहती है। हमारे परिवारिक जीवन का यह शुक्ल पक्ष कितना मोहक और प्रेरणा पूर्ण है !

वसुधैव कुटुम्बकम्

हमारे गॉवों मे कुआँ खोदवाने, तालाब बनवाने, बाग लगवाने आदि की प्रथा सदा से रही है। ये सारे काम पुण्य के लिए, सारे गॉव वालो के उपयोग के लिए होते थे। इनका मालिक कोई एक व्यक्ति नही होता था। इसी के आधार पर एक अति प्रसिद्ध लोक गीत है—

कु अवा खोदाए कवन फल, हे मोरे साहब।
झोकवन भरै पनिहारिन, तबै फल होइहै॥
बगिया लगाये कवन फल, हे मोरे साहब।

राहे बाट अमवा जे खैहै, तबै फल होइहै ॥
पोखरा खोदाये कवन फल, हे मोरे साहब ।
गौआ पियै जूड पानी, तबै फल होइहै ॥
तिरिया के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब ।
पुतवा जनम जब लैहैं, तबै फल होइहै ॥
पुतवा के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब ।
दुनिया अनन्द जब होई, तबै फल होइहैं ॥

यह गीत अपनी कहानी खुद कहता है, अपना आदर्श स्वय ज्ञापित करता है, अपने उद्देश्यो की घोषणा स्वय करता है । कुआ खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड लगे । बाग लगवाने का फल यह है कि राहगीर मनचाहा आम तोड़कर खांय । पोखरा बनाने की सार्थकता इसमे है कि गाये आकर ठडा पानी पी सकें । स्त्री के जन्म को सुफल तब माना जायगा जब उसकी गोद भरे और आचल सफल हो और बेटा का जन्म भी तभी सार्थक होगा जब उससे सारे ससार को सुख और आनन्द प्राप्त हो ।

इस गीत में जोकुछ कहा गया है वही ग्रामीणजीवनका सबसे ऊँचा आदर्श है । ग्राम सस्कृति इसी आदर्श के सहारे इतने सहस्रों वर्षों तक जीती जागती रही है । जो लोग समझते हैं कि हमारी ग्राम सस्कृति की प्राण-वायु कमजोर होती जा रही है और उसके दिन अब इने गिने ही रह गए हैं वे इस गीत को गौर से पढे और देखे कि हमारा ग्रामीण समाज आज भी इन आदर्शो की रखवाली कर रहा है अथवा नही । नगर के शिष्ट समाज की सस्कृति और सभ्यता की चकाचौंध मे पलने वाले जो लोग ग्राम सस्कृति का उपहास करते हैं, उसे हीन और मरणशील समझते हैं, उन्हे इस गीत की पुकार और चुनौती सुननी चाहिए और हो सके तो इससे प्रेरणा भी लेनी चाहिए ।

गीत की अन्तिम पक्तिया मे दो बाते सबसे अधिक महत्वपूर्ण कही गयी हैं । नारी के जीवन का साफल्य किस बात मे है ? बहुत से धन सम्पदा पर प्रभुता प्राप्त करने में ? बहुत अधिक सुन्दर, आकर्षक होने मे ?

नही, नारी के जीवन को सफलता इस बात मे है कि वह ऐसी सन्तान उत्पन्न करे जिसके कारण सारे ससार को, केवल कुटुम्ब और परिवार को ही नही, आनन्द हो, सुख मिले। उसी मा की कोख धन्य है जो ऐसी सन्तान को जन्म दे, उसी मा का दूध धन्य है जो ऐसी सन्तान को पाल-जिलाकर मानव समाज की सेवा के लिए तैयार कर दे। ऐसी ही सन्तान का जन्म लेना सार्थक है जो अपने इस कर्त्तव्य को पूरा करने की क्षमता रखती हो। सोहर का यह गोत सचमुच कितना अर्थपूर्ण, कितना मगलमय, कितना पवित्र और कितना आजपूर्ण है!

ग्राम सस्कृति

ग्राम सस्कृति को उजागर करने वाला एक दूसरा गीत देखिए—

द्वारेन द्वारे बरुआ फिरै, बखरी पूछै बबा की हो।
द्वारेन उनके है कुइया, भीतीं चित्र उरेही हो॥
आगन तुलसी क बिरवा, बेदवन झनकारा है हो।
सभवन बैठे बाबा तुम्हरे, बैठे पुरवै जनेउवा हो॥

इस गीत मे एक उच्च धर्म प्राण ब्राह्मण कुल का चित्र है। एक ब्रह्मचारी गाव मे, दरवाजे, दरवाजे घूमकर बाबा के मकान का पता पूछ रहा है। (सुनते हैं कुमारिल भट्ट ने मडन मिश्र का पता भगवान शकराचार्य को इसी प्रकार बताया था, जिस प्रकार इस गाव का ही कोई प्राणी बाबा के घर का पता इस ब्रह्मचारी को बता रहा है!) यह गीत जनेऊ का है। बाबा के घर की पहिचान क्या है? उनके दरवाजे पर कुँआ है। दीवारो पर चित्र बने हुए हैं, आगन मे तुलसी का पेड है, घर में वेद ध्वनि गूज रही है और बाबा बैठे हुए जनेऊ बना रहे हैं। गृहस्थ ब्राह्मण के घर का इससे अधिक सुन्दर और पूर्ण चित्र क्या हो सकता है? खेतिहर मजूरों, गरीब किसानो, हरिजनो आदि के घरों के चित्र तो गीत गीत मे मिलते हैं। उनके सम्बन्ध मे अधिक कुछ कहना नही है।

लोक गीतों मे परिवार के विभिन्न सदस्यो के आपसी सम्बन्धो के बारे मे अक्सर चर्चा मिलता है। पति-पत्नी तथा भाई बहिन के सम्बन्ध की

महत्ता लोक गीतों की जान है। भाई बहिन को कितना मानता है इसका प्रमाण यह है कि वह अपने भान्जे को डॉट फटकार भी नहीं सकता। लोगो का विश्वास यह है कि यदि मामा अपने भान्जे को मार दे तो उसका हाथ कापने लगता है। मामा भान्जे के सम्बन्ध के आधार पर निर्मित यह लोक गीत देखिए—

लम्बी लम्बी गैया क डूडी, डूडी सीग।
चरै चोथै जाय गैया जमुना के तीर॥
चरि चोथि गैया पानी पियै जाइ।
बाघ बघिनिया घाट छेकै आइ॥
छोडो रे बघवा मोरे पनि घाट।
हम है पियासी पनिया पीऐ देउ॥
घर से आइब बछरु पियाइ।
हमका दिहे जा सखिया गवाह॥
चाद सुरुज दूनौ सखिया गवाह।
अइबै हे बाघा बछरु पियाइ॥
आउ बच्छा रे पीले दूध डभकोरि।
सबेरे हम जाबै अपने नैहर की ओर॥
रोज तो आव माई होकरत चोकरत।
आज तोर मनवा काहे मलीन॥
आजु की रात बच्छा रहबै तोहरे पास।
होत बिहान होबै बाघे क अहार॥
जो तू जाबिउ माता बाघ के पास।
हमहुँ क लिहेउ गोहनवा लगाय॥
आगे आगे बछरु कुलाचत जाय।
पीछे पीछे गैया विषमातल जाय॥
जाइके पहुँची गैया बाघ के पास।
मामा कहि बाछा किहा सलाम॥

आवहु मोर मामा मोहि भच्छ लेहु।
पीछे भच्छेहु आपन बहीन॥
गैया मोर बहिनी, बछौवा मोर भैने।
जाइके बाछा रहो केदरी के बन में॥—ग्राम गीत

एक लम्बी गाय है। उसकी छोटी-छोटी सींग है। वह घास चरने के लिये जमुना के तीर पर जाया करती थी। एक बार की बात है। घास चरने के बाद गाय पानी पीने गयी। वहाँ पर बाघ और बाघिन ने आकर उसका रास्ता रोक लिया। गाय ने उनसे प्रार्थना की, "हे बाघ, तुम मेरा घाट छोड़ दो। मुझे बहुत प्यास लगी है। मुझे पानी पीने दो। जब मैं अपने बच्चे को दूध पिलाकर घर से वापिस आ जाऊँगी तो तुम मुझे खा लेना।"

बाघ ने उत्तर दिया, "यदि तुम अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए जाना चाहती हो तो जाओ। परन्तु तुम गवाह साखी दिये जाओ।"

गाय ने कहा, "चाद और सूरज मेरे साक्षी रहेंगे।" इस पर बाघ ने गाय को घर जाने दिया। घर पहुँच कर गाय अपने बच्चे से बोली, "मेरे बच्चे, आ, तू जी भर के दूध पी ले, सबेरे मैं अपने नैहर की ओर जाऊँगी।"

गाय अपने बच्चे से अपने मरने की बात छिपाना चाहती थी। परन्तु बच्चा भाप गया। उसने पूछा, "मा, रोज तो तुम उछलती कूदती हुंकरती मेरे पास आती थी, आज क्यों तुम दुखी लग रही हो?"

आखिर विवश होकर गाय को कहना ही पड़ा, "बेटा, आज ही रात भर में तुम्हारे पास रहूँगी। सुबह होते ही मैं बाघ का आहार बन जाऊँगी।"

बच्चे ने कहा, 'जब तुम बाघ के पास जाना तो मुझे भी साथ ले लेना, मा।"

सबेरा हुआ। आगे आगे गाय का बच्चा कुलाचे भरता हुआ चला जा रहा था। पीछे पीछे गाय अधमरी सी चली जा रही थी। किसी कारण बच्चे के मन मे विश्वास और उत्साह था। परन्तु गाय तो यही समझती थी कि अभी थोड़ी देर बाद बाघ उसे और उसके बच्चे को खा

जाएगा। थोडी देर मे गाय बाघ के पास पहुँची। गाय के बच्चे ने आगे बढकर बाघ को 'मामा' शब्द से सम्बोधित करके सलाम किया और बोला, "आओ मामा, अपने भान्जे को खा लो। बाद मे अपनी बहिन को भी खा लेना।"

बाघ स्तम्भित रह गया। फिर अपने को सम्भाल कर बोला, "गाय मेरी बहिन है और बछवा मेरा भान्जा है। जाओ मेरे भान्जे, तुम कदली बन मे मौज करो।"

यह गीत अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमे गाय के बचन पालने पर ही जोर नहीं दिया गया है, बल्कि इस बात पर बल दिया गया है कि 'मामा' कहे जाने के बाद शेर का दिल भी पिघल जाता है। वह अपने खाद्य पदार्थ को बहिन मान लेने पर अभय दान दे देता है। वह किसी भी स्थिति मे रहे, कभी अपनी बहिन और उसकी सन्तान के साथ दुर्व्यवहार नही कर सकता। जब शेर बाघ जैसे हिंस पशुओ का यह हाल है, तो मनुष्य का क्या हाल होगा? क्या मनुष्य कभी भी, किसी भी हालत मे, अपनी बहिन का अनिष्ट कर सकता है? आखिर बहिन अकारण ही भाई को 'बीरन' नहीं कहती! और, भाई भी अपनी बहिन के लिए अपनी जान की बाजी यो ही नहीं लगा देता!

यह गीत कितना अर्थपूर्ण, कितना सारगर्भित है यह बताने की जरूरत नही।

काम और शृंगार

एक गरीब स्त्री की कार्यव्यस्तता और असहायावस्था का चित्र देखिए—

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा।
साझ भई दिया बाती की बेरिया,
राजा दुहावे लागे गइया, मै जेवना बनाऊँ,
मोरे राजा॥

आधिरात चपरसिया का फेरा,
राजा बिछावय सुख सेजा, मै जतवा बहारौ,
मोरे राजा।
भोर भए चुहचुहिया जो बोलै,
राजा सवारै सिर पागा, मै जाते पर जूझऊँ,
मोरे राजा।

गरीब स्त्री को अपना सारा काम काज अपने हाथों से ही करना पड़ता है। वह बेचारी सुबह से रात तक पिसती रहती है। उसे शृंगार करने, अपने पति के साथ उठने, बैठने तक का समय नही मिलता। इस बात के लिए वह तरस कर रह जाती है कि उसे अपने स्वामी के पास कुछ समय रह पाने का अवसर मिलता। इस गीत मे दुखियारी गरीबिनी यही रोना रोती है। वह कहती है, "शाम होने को आ गयी। बादल घिरते आ रहे हैं। अब मुझे दिया-बत्ती करनी है। मेरे राजा गैया दुहने मे लग गए हैं और मे भी भोजन बनाने जाती हूँ। आधी रात का समय आया कि पहरा पड़ने लगा। मेरा पति मन मारकर रह गया। उसके बाद उसने किसी तरह बिस्तरा ठीक भी किया तो मैं जाते के पास झाड़ू लगाने गई। भोर हो गई। चुहचुहिया चिड़िया बोलने लगी। राजा अपने सिर पर पगड़ी बाधने लगे। अब उन्हे अपने काम पर जाना था। और, मैं भी विवश होकर जाते से जूझने लगी। इस प्रकार, 'चलो बस हो चुका मिलना, न वह खाली, न मैं खाली।"

गाव की गरीबिनी की व्यस्तता और कार्याधिक्य का यह चित्र कितना सत्य और स्वाभाविक है! कल्पना कीजिये उस बेचारी तरुणी की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति की, जो इस प्रकार एक के बाद दूसरा दिन इसी आशा से काटती जाती है कि आज नही तो कल उसे 'उनसे' मिलने का अवसर अवश्य मिलेगा। परन्तु वह हतभागिनी अपना दिल मसोसकर रह जाती है, अपने पति से मिलने का उसे मौका ही नही मिलता, श्रम और स्नेह-सयोग का यह अन्तर्विरोध कितना विनाशकारी है!

विकृत स्वभाव

लोक गीतो मे विभिन्न प्रकार के स्वभाव की स्त्रियों के चित्रण हमे मिलते हैं। यहा एक कर्कशा नारी का चित्र देखिए, कितना सजीव, किस कदर सच्चा है यह चित्र—

धनि धनि रे पुरुष तोरि भाग, करकसा नारि मिली !
सात घरी दिन रोय के जागी, लिहिन बढनिया उठाय।
निहुरे निहुरे अगना बटोरे, घर भर को गरियाय।
करकसा नारि मिली ॥
बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइलै तीन।
आवा पाहुन घर मे बैठ, कडा लाऊ बीन।
करकसा नारि मिली ॥
ह डिया भरके अदहन दिहली चाउर मेरवली तीन।
कठवत भरि के माड पसवलिन, पिय हिलोर हिलोर।
करकसा नारि मिली ॥
सात सेर के सात पकवलिन, नौ सेर का एक।
तू दहिजरउ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक।
करकसा नारि मिली ॥
डेहरी बैठे तेल लगावैं, सेदुर भरावै मागि।
आचर पसारि के सूरज मनावै, होइहो कब मै राडि।
करकसा नारि मिली ॥
—ग्रामगीत

इस गीत मे उन स्त्रियो के स्वभाव का वर्णन है जो कर्कशा होती हैं, जिन्हें अकारण सबसे झगड़ा करने, सब को बुरा भला कहने, सबके नाश की कामना करने मे ही मजा आता है। हर बात मे उन्हे नाराज होने का एक कारण मिल जाता है। लगता है यदि उन्हे सबको कोसने, बुरा भला कहने, गालियाँ देने का अवसर न मिलेगा तो उनका पेट फूलने लगेगा। उनका गला घुटने लगेगा।

ऐसी स्त्रियाँ आर्थिक, सामाजिक या व्यक्तिगत कारण से ही ऐसा व्यवहार नहीं करती। मनोवैज्ञानिक यदि इनकी मनोदशा का अध्ययन करे तो पता चलेगा कि वे किसी विशेष प्रकार के मनोविकार का शिकार होती हैं। बचपन से ही यह विकार उनके मन मे पलता रहता है। समय पाकर यह विकसित होता है और फिर उनके व्यक्तित्व को छा लेता है, उनके स्वभाव का प्रधान अग बन जाता है। इस गीत मे ऐसी ही झगडालू, कर्कशा नारी का चित्र उपस्थित किया गया है।

"हे पुरुष, तेरा धन्य भाग्य है जो तुझे ऐसी कर्कशा नारी मिली है! सात घडी तक वह दिन मे रोती है, फिर झुक झुक कर झाड़ू लगाती है और घर भर को गाली देती चली जाती है। सारा घर उजाड, वीरान, टूटा-फूटा सा दिखता है। दीवार पर कौवा रोता है। कही उस घर मे तीन मेहमान आ गए तो उन्ही से कहती है, 'तुम लोग बैठो मैं उपले लेने जाती हूँ।' उसकी गृहस्थी का यह हाल है। उपले लाकर उसने चूल्हा जलाया और उस पर हॉडी भरकर पानी चढा दिया और उतने पानी मे तीन दाना चावल डाल दिया। फिर कठौता भर माड निकालकर अतिथियो को पीने के लिए दे दिया। मेहमानो के लिये ही उसका व्यवहार ऐसा नही है। उसने सात सेर की सात रोटियाँ तैयार की और नौ सेर का एक रोटी, फिर अपने पति को गालियाँ देती हुई बोली 'तुमने तो सात रोटियाँ खायी और मैंने सिर्फ एक रोटी खायी। तुम नीच घराने के हो, मैं तो उच्च कुल की कन्या हूँ, इसीलिये मैंने एक रोटी खाकर सब्र कर लिया।' इतना कहकर ही वह चुप नही रहती। वह दरवाजे की देहली पर बैठकर सिर मे तेल लगाती है और माग मे सिन्दूर भरती है। इस निर्लज्जता के साथ शृगार करके वह आचल फैलाकर सूर्य भगवान से प्रार्थना करती है कि कब वह राड होगी (अर्थात् उसका पति कब मरेगा)।"

कर्कशा नारी का यह चित्रण कितना वीभत्स है, परन्तु साथ ही वह सच्चाई के कितना निकट है! जिस प्रकार की नारी का चित्रण इस

व्यंगात्मक गीत मे किया गया है वैसी नारियाँ ग्रामीण समाज मे तो मिलती ही है, नागरिक समाज मे भी इनकी कमी नही है।

कुल लक्ष्मी

श्री कृष्णादेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी ग्राम गीत' मे दो छोटे छोटे उडिया गीत उद्धृत किये है जिनमे राम और सीता अति साधारण परिवार के किसान और उनकी स्त्री के रूप चित्रित किए गए हैं। गीतो की सरलता के पीछे छिपे उनके परिवारिक जीवन की सच्ची झाँकी देखिए—

दौदरा माठिया हाते धारि करि
खीर दुहिबाकु सीताया गला। मो राम रे।
सबु खीर जाको तले बहि गला।
सीताया ए कथा जानो न पारीला। मो राम रे।
बौहडीला राम हल काम सरि,
खीर मन्दे वेगे सीताकु मगीला। मो राम रे।
धाई धाई सीताया पाखकु अईला,
घोइताकु सब कथारी कहिला। मो राम रे।
रामक आखी टी रग होइ गला
मन कि तो लो बाइया हेला। मो राम रे।

फूटे हुए बर्तन को लेकर सीता जी दूध दुहने के लिए गयी। वह दूध दुहती रही और दूध नीचे बहता रहा। परन्तु सीता जी को इस बात का पता न था। हल चलाकर राम खेत से घर लौटे तो उन्होने धीरे से सीता से दूध मागा। सीता दौडकर आयी और उन्होने राम को सही बात बतायी। राम की आँखे लाल हो गयी और वह कहने लगे, "तुमको क्या हो गया है? तुम पागल तो नही हो गयी हो, मन को स्थिर रखो न।"

राम ने थक कर घर वापिस आने पर दूध न पाने के कारण सीता के ऊपर जो क्रोध दिखाया उससे देखकर हमे स्वय अपनी स्थिति का ध्यान आ जाता है। क्या ऐसी स्थिति मे हम भी अपनी पत्नी से ऐसी बातें नहीं

कहते, इसी प्रकार क्रोध नहीं दिखाते ? परन्तु इस ऊपरी क्रोध के तल मे कितना प्रांजल स्नेह, कितना अगाध और प्रगाढ़ प्रेम भरा होता है ?

एक अन्य उड़िया गीत लीजिये और उसकी मार्मिकता देखिए—

सरि गला दीप र तेल
कि परि दीप जालिबी। महाप्रभु से।
तेल आणी वाबु जाओ हे राम
से तेल दीप, रे ढालिवी। महाप्रभु से।
सुना-र दीप रे चन्दन तेल
सीता या दीप जाल्छी। महाप्रभु से।
दीप जाली जाली सीताया
माघर कथा भालछी। महाप्रभु से।

सीता कहती हे, "तेल खत्म हो गया है। मैं दीपक कैसे जलाऊँ ? हे राम, तुम जाओ और तेल ल आओ। उसी तेल को मैं दीपक मे डालूँगी।" सोने का दीपक हे, चन्दन का तेल है, जिससे सीता दीप जला रही हैं। दिया जलाते जलाते सीता को अपनी माँ की याद आ जाती है !

ऐसी स्थिति मे माँ की याद आना कितना स्वाभाविक है ! कभी वह इसी समय अपनी मा के साथ साथ अपने नैहर मे दीप जलाया करती थी। तमसावृत्त अँधियारी से घिरे दीपक की लौ मे माँ का चेहरा किस प्रकार उद्दीप्त हो जाया करता था ! लक्ष्मी स्वरूपा, अन्नपूर्णा, स्नेह की प्रतिमा मा, उस समय कितनी असीम श्रद्धा के साथ, आचल पसार कर उस दीप से समस्त परिवार वालो, गाव और देश वालों के मगल की कामना किया करती थीं ! माँ की वे स्नेहार्द्र आखे और झुकी पलके, बुदबुदाते ओठ, बिनय से उठे हाथ, फैला हुआ आचल और सामने घोर गहन अन्धेरे के माथे पर टिमटिमाता प्रकाश दीप ! कितना मनोरम, पवित्र दृश्य था वह ! इस लोक गीत की सीता ने बचपन से वह दृश्य नित्य प्रति देखा था। वह दृश्य उसके मानस पटल पर अमिट बनकर खिंच गया था। अब वह स्वय गौरी से लक्ष्मी बनी है। मा की वह पावन परम्परा अब उसके

आँचल मे प्रश्रय पा रही है। उस निर्बाध, अटूट ज्योति माला की एक कड़ी उसका वह दीपक भी है जिसको प्रकाशित करना, जिसकी रक्षा करना, उसका धर्म है। इसी धर्म के पालन के लिये तो उसे भी नारी जाति में ही जन्म मिला था। कल वह सीता बालिका थी, मा के साथ साथ, उसके इशारो पर वह दीप जलाती थी। आज वह विवाहिता कुल-बधू, कुल-लक्ष्मी हैं। आज मा के हाथों का वह ज्योति दीप उसने अपने हाथा मे, अपने आचल के साये मे, सम्हाल लिया है। इस समय उसे मा की सीख, मा का उदाहरण, मा की चेतावनी, और मा की आखो के चिर वरदानी आसू याद आ रहे हैं। वह कामना कर रही है, "मा मुझे शक्ति दे कि मैं तेरी ही तरह परिवार वालो, गाव और देश निवासियो की मगल कामना इस ज्योति दीप से करती रहूँ।"

सरि गला दोपर तेल

कि परि दीप जालिबी—सुनते ही 'मीर' की प्रसिद्ध पक्तिया याद आ जाती है

शाम ही से बुझा सा रहता है।
दिल है गोया चिराग मुफ़लिस का।

परन्तु ज्यो ही राम तेल ले आते है और सीता उस तेल को दीप में डालती हैं, त्यो ही दीप सोने का हो जाता है, तेल चन्दन का। राम के प्रयत्न और सीता के स्पर्श से ही दीप सोने का हो जाता है और तेल चन्दन का हो जाता है। कुल लक्ष्मी की यही तो शान है, यही तो प्रभाव है, यही तो उसकी मर्यादा का अर्थ है। इसी के लिए तो सीता की माता ने बचपन से ही उसे अपने साथ-साथ रखकर दीपक जलाना सिखाया और अपनी ज्योतिर्मय परम्परा से उसका शृगार किया था। आज उसी ज्योतिर्मय, मगलमय परम्पराओ से मडित सीता दीप जलाते समय अपनी मा को याद कर रही हैं!

विवाह की समस्या

हमारे गाँवो मे विवाह की समस्या बडी कठिन रही है। दहेज की प्रथा के कारण योग्य वर ढूँढ पाना प्राय: असम्भव ही माना जाता रहा है।

यदि किसी कन्या के योग्य घर बर मिल जाय तो वह कन्या ही भाग्यवती मानी जाती है। इसी कारण कन्या माता पिता की चिन्ता का कारण रही है। वर ढूँढने की परीशानियों का वर्णन करने वाले अगणित लोक गीत हमें ऐसे मिलते है, जिनको पढकर मन की चिन्ता और उदासी बढ जाती है और कभी कभी तो आखो मे आसू आ जाते है। जब पिता चारों ओर से निराश होकर घर लौटने पर अपनी बेटी से कहता होगा—

पूरब खोजलो बेटी, पच्छिम खोजलो,
अवरु ओडीसा, जगरनाथ।
चारो भुवन बेटी, तोहि बर खोजलो,
कतही ना मिले सिरीराम, ए।

—तो बेटी को कितनी ग्लानि होती होगी, उसको कितनी चोट लगती होगी, वह अपने को कितना कोसती होगी, अपने को कितनी अभागिनी समझती होगी!

दहेज की इस प्रथा के कारण समाज मे अनमेल विवाहो की सख्या बढ गयी। अनमेल विवाहो का जो भी परिणाम हो सकता था, सामने आया। समाज मे पापाचार, अत्याचार, बढने लगा। कही वृद्ध के साथ फूल सी कोमल बच्ची का विवाह, कही प्रौढा स्त्री के साथ नन्हे बच्चे की शादी-यह अवस्था आम हो गयी। इस प्रकार के अनमेल विवाह के फल स्वरूप दुख और सताप से पीडित स्त्री का हाहाकार इस गीत मे सुनिए।—

बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा
बनवारी हो, रहरी मे बोले ला सियार॥
खोले के त चोली बन्द खोले ला किवार।
बनवारी हो, जरि गइले एडी से कपार॥
सुतै के त सिर वा सुतैला गोत नार।
बनवारी हो, जरि गइले एडी से कपार॥

रहरी में सुनि के सियरा के बोलिया ।
बनवारी हो, रोवे लगले लरिका भतार ।।
अगना से माई अइली, दुअरा से बहिना ।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार ।।

इस गीत का अर्थ बताने की जरूरत नही । यह गीत प्रत्येक उस पिता के लिए चुनौती है जो अपनी बेटी का विवाह योग्य वर से नही, आयोग्य वर से कर देते हैं, जो वर की उम्र, स्वास्थ्य आदि का ध्यान न कर किसी प्रकार अपने सिर से बला टालते हैं ।

नौकरी

गावो से अक्सर लोग दूर नौकरी करने जाते हैं । किसी जमाने में हमारे देश की धरती अन्नपूर्णा थी । आज नहीं है । किसी जमाने मे कहा जाता था—

उत्तम खेती, मध्यम बान ।
निकृष्ट चाकरी भीख निदान ।।

पर समय की गति बदली और नौकरी ने समाज मे आदर का स्थान प्राप्त किया । आज नौकरी पाने के लिए ही पढाई लिखाई होती है । अग्रेजी शासन का सबसे बड़ा बरदान यही था । नौकरी करने और उसमे गौरव अनुभव करने की परम्परा अब हमारे सामाजिक जीवन का महत्व पूर्ण अग बन गयी है । अब बिना नौकरी के जीवित रह पाना ही कठिन हो रहा है ।

नौकरी पाते ही क्या होता है और नौकरी छूटते ही कैसी स्थिति हो जाती है इसका एक हल्का सा चित्र देखिए ।

जबरे सोनरवा के लगली नोकरिया,
उठावे लगले कोठा बगलवा रे ।
सियावे लगले चोली बन्द .अगिया,
गढावे लगले बाजू बन्द अगिया रे ।

जबरे सोनरवा के छुटली नोकरिया,
ढहाए लगले कोठा बगलवा रे।
बेचाए लगले चोली बन अँगिया रे,
तोराए लगले बाजू बन्द तिलरी रे।

नौकरी मिलते ही कोठी बगला बनने लगता है, स्त्री के लिये वस्त्राभूषण तैयार होने लगते हैं, सम्पन्नता और समृद्धि का वातावरण छा जाता है। नौकरी छूटते ही हालत खराब हो जाती है। कोठा, बगला ढहने लगता है। कपडे गहने बिकने लगते हे। विपन्नता, गरीबी के दिन आ जाते है।

इसी नौकरी पाने और उसे कायम रखने के लिए बडी कोशिश की जाती है, अफसरो की खुशामद की जाती है, हर प्रकार का अपमान सहा जाता है।

कोई नौजवान गाव छोडकर परदेश नौकरी करने गया था। वहाँ किसी कारण उसका मन नही लगता था। उसने माता, पिता, चाचा, चाची, स्त्री सबके पास चिट्ठी लिखी कि वह नौकरी छोडना चाहता है।

स्त्री को छोडकर सबने समझाया रुपया बडी चीज है, नौकरी मत छोड़ना। केवल स्त्री ने कहा, "रुपया कोई चीज नही। नौकरी छोड़कर चले आओ।" गीत इस प्रकार है—

पहिले ही चिट्ठी चाचा भेजायो, नोकरि जनि छोड।
रुपया बडा ही चीज।
दूसरी ही चिट्ठी चाची भेजायो, बचवा नोकरि जनि छोड।
रुपया बड़ा ही चीज।
तीसरी ही चिट्ठी अम्मा भेजायो, बबुआ नोकरि जनि छोड।
रुपया बडा ही चीज।
चौथी ही चिट्ठी पिता भेजायो, बबुआ नोकरि जनि छोड।
रुपया बडा ही चीज।
पचवी ही चिट्ठी धनिया भेजायो, संइया नोकरि तुम छोड।
रुपया है कुछ ना चीज।

घनिया क चिट्ठी सुनि सैया जी अइले, सबके मन को तोड ।
रुपया है कुछ ना चीज ।

चाचा, चाची, माॅ, बाप, सभी अनुभवी थे । सभी रुपयो का महत्व समझते थे । सभी जानते थे कि एक बार नौकरी छूट जाने पर फिर दूसरी बार नोकरी का मिलना कठिन होगा । उनकी आॅखो मे बेटे का मूल्य यही था कि वह कमासुत है, कमा कर रुपये घर भेजता है और उन रुपयो से उनका पेट पलता है । सहज स्नेह का स्थान उपयोगिता ने ले लिया था । इस लिये वे बेटे को नौकरी छोडने की राय कभी भी नही दे सकते थे ।

मगर स्त्री की बात दूसरी थी । वह अपने पति के दिल की बात समझती थी । वह जानती थी कि उसका मन वहाॅ न लगता होगा । वह उसे याद करता होगा, रात को उसी के सपने देखता होगा, दिन को परिश्रम करते समय भी उसे उसकी याद आती होगी और वह अपनो आॅखो मे आॅसू भर लाता होगा । वह स्वय जाग जागकर, तारे गिन गिन कर राते काटती थी । वह तडप रही थी, अपने प्रीतम से, साजन से मिलने के लिये, चार गाल बाते करने के लिए, उसे आॅख भर देखने के लिए, उसकी गोल गोल बाॅहो पर सिर रखकर नीद भर सोने के लिए, अपने सोहाग को धन्य और आचल को सार्थक बनाने के लिए । उसकी आॅखो मे इस जीवन का मूल्य अधिक था, पति का परदेश मे रहकर, कमाकर पैसा भेजने का मूल्य कम था । तभी उसने चिट्ठी लिखी, "पैसा कोई चीज नही, तुम चले आओ ।"

बेटी की बिदाई

कहते हैं जब भावुक मन और भरी आॅखे, अपने ही रग में सारी प्रकृति को रगा हुआ और अपने ही रस मे सारी प्रकृति को डूबा हुआ देखने लगती हैं तब काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है, सच्चा प्रभावशाली, मार्मिक, मुखर और ओजपूर्ण ! कन्या की बिदाई सारे देश के नारी और पुरुष समाज के आत्म सयम और धैर्य की परीक्षा ले लेती है । जो पिता जीवन के बडे से बडे सकट के समय भी धैर्य नही खोता और अपने ऊपर पूरा सयम रखता है वही पिता कन्या की बिदाई के समय धरा-

तियों और बरातियों के सामने बच्चों की तरह बिलख पड़ता है, उसका सारा संयम टूट जाता है, उसका धैर्य साथ छोड़ देता है। और माँ, उसकी तो छाती फटने लगती है, अपनी कोख को खाली करते समय उसको जो मार्मिक वेदना होती है उसका वर्णन असम्भव है, लेखनी की क्षमता के परे है।

एक राजस्थानी लोक गीत है जिसमें कन्या की बिदाई के समय मानव जाति के सनातन सहचरों, पहरेदारों से सहानुभूति की माँग की गयी है—

"कोयल ये कोयल वैरण, पिहु पिहु बोल,
हाँ ये वैरण, पिहु पिहु बोल !
चढ़ती बाई नै ये शब्द सुणाइयो,
डूंगर रे डूंगर राजा, नीचो सो झुक ज्याय,
हां ओ राजा, नीचो सो झुक ज्याय !
चढ़ती बाई की ओ दीखै बोरग चूनड़ी,
चढ़तै जंवाई की दीखै पचरंग पागड़ी !
सूरज ओ सूरज राजा, मोडो सो उग जाय,
हां ओ राजा, मोडो सो उग ज्याय।
चढ़ती बाई ने होसी सामोता बड़ो
बालए वाल राणी, मदरी मदरी चाल,
हाँ, ये वैरण, धीमी धीमी चाल !
चढ़ती बाई की ए चूनड़ी सरकी जाय
चढ़तै जवाई का कपड़ा रवे हमरै!

"कोयल, ए री बैरिन कोयल, तूं बिदा होती हुई बाई को पिऊ पिऊ का मीठा शब्द सुना। पर्वत, ऐ मेरे पर्वत राज, तू ज़रा नीचा झुक जा जिससे मैं बिदा होकर जाती हुई अपनी प्यारी बिटिया की बहुरंगी चुनड़ी को दूर तक, नज़र भर कर, देख सकूँ और देख सकूँ प्यारे जंवाई की पंचरंगी पगड़ी को।

"सूरज, ऐ सूर्यदेव, जरा देर से उदय हो जिससे बिदा होती हुई मेरी बिटिया के सामने धूप न हो।

"पवन, हे महारानी पवन, मंद मंद चलो। देखती नहीं हो, मेरी विदा होती बिटिया की चुनरी उड़ी जा रही है और जंवाई के कपड़े धूल से भर रहे हैं।"

इस गीत में मानवेतर सृष्टि के साथ, उसके विभिन्न अंगों के साथ, मानवीय भावनाओं का जो सामंजस्य हुआ है वह कितना स्वाभाविक और कितना मर्म वेधी है!

कालिदास ने इसी अवसर पर कण्वऋषि से भी कहलाया है,

भो : भो : संनिहित देवतास्तपोबनतरव : !
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्पीतेषु या।
ना दत्ते प्रियनन्डानऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व: कुरुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव:
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।

"बन देवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षो, जो शकुन्तला तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों के निकल आने पर उत्सव मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब अब अपनी शकुन्तला को प्रेम पूर्वक विदा दो।"

कालिदास के समय के बहुत पहिले से आज तक कन्या की विदाई की परम्परा हमारे समाज में चली आ रही है। तब से अब तक माता, पिता तथा अन्य स्वजनों की आंखें इस कठिन अवसर पर भीगती आ रही हैं। शिष्ट साहित्य, शास्त्रीय साहित्य और लोक साहित्य में समान रूप से यह भावधारा, यह प्रक्रिया चलती चली आ रही है। कब तक यह परम्परा चलती रहेगी, हम नहीं जानते; परन्तु इतना निश्चित है कि जब तक यह परम्परा चलती रहेगी, इस प्रकार का रस भींगा काव्य भी रचा जाएगा,

ऐसा काव्य जो कभी पुराना नहीं पड़ेगा, जो हमारी आंखों को निरन्तर भिगोता रहेगा।

कौन वह पाषाण हृदय व्यक्ति है जो कण्व के इन शब्दों को सुनकर आह न कर देगा?

यस्व त्वया व्रण विरोपणमिङ्गुदीनां,
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे—
श्यामाकमुष्टि परिवर्धित को जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।"

"वत्से, कुशा के कांटे से छिदे हुए जिसके मुंह को अच्छा करने के लिए तू उस पर हिंगोट का तेल लगाया करती थी वही तेरे हांथ के दिये हुए मुट्ठी भर सावें के दानों से पला हुआ तेरा पुत्र के समान प्यारा हरिण तेरा मार्ग रोके खड़ा है।"

और शकुन्तला के निम्नांकित वाक्य किस नव यौवना, नव परिणीता, पतिगृहाभिमुख तरुणी को आन्दोलित और करुणाभिभूत न कर देंगे?

वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि,
अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पिमए विरहिदं
तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहिदाव।

"वत्स, मुझ साथ छोड़कर जानेवाली शकुन्तला के पीछे पीछे तू कहां चला आ रहा है? तेरी मां जब तुझे जन्म देकर मर गयी थी उस समय मैंने तुझे पाल पोसकर बड़ा किया था। अब मेरे बाद, मेरे पिता जी तेरी देख भाल करेंगे। जा वापिस लौट जा।"

जिस तरह शकुन्तला इस मृगशावक को सान्त्वना देकर पति गृह की ओर चल पड़ी, उसी प्रकार हमारी लड़कियां अपने तोते मैनों को छोड़, बाग फुलवाड़ी से मुंह मोड़कर, अपने सभी स्वजनों, परिचितों, स्नेहियों से विदा लेकर, नये घर में, नये जीवन में, प्रवेश करने के लिए, चली जाती हैं। उनके कौमार्य के समाप्त होने के साथ उनके इस जीवन की सारी मर्यादायें, सारे ढंग, सारी भावधाराएं बदल जाती हैं, उनकी दुनियां नयी

हो जाती है। वे भी नयी नवेली बधू बनकर अपने पति के घर की शोभा श्रृंगार बन जाती हैं।

हमारी सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था में कन्याओं के जीवन में सर्वाधिक परिवर्तन उपस्थित करने वाला यह मोड़, यह अवसर एक ही बार आता है, और आकर भावी जीवन की सारी रूप रेखा बना जाता है। कौमार्य से गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने का यह अवसर माता पिता, स्नेही सम्बन्धियों के प्रेमाश्रुओं से सिंचकर पवित्र और महिमा मण्डित हो जाता है। माता पिता और वर वधू के जीवन में इससे अधिक महत्वपूर्ण घड़ी अन्य कोई नहीं आती।

सीता का सामाजिक रूप

हमारे लोक गीतों के नायक राम अथवा कृष्ण और देवियां सीता, राधा, रुक्मिणी आदि हैं। दशरथ, कोशल्या, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, लछमण, भरत, शिव, पार्वती भी यत्र तत्र आए हैं। परन्तु राम और सीता का प्राधान्य सर्वत्र रहा है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि शिष्ट साहित्य और शास्त्रीय साहित्य के स्रष्टाओं की ही तरह लोक साहित्य के स्रष्टाओं ने भी राम सीता को आदर्श रूप में देखा, राम सीता की जीवन-कथा से प्रेरणा ली और उनके कार्य कलापों से स्वयं अपने जीवन के आचार, विचार, व्यवहार को प्रभावित होता देखा।

परन्तु शास्त्रीय साहित्य और शिष्ट साहित्य में राम सीता को या तो पूर्ण परब्रह्म परमात्मा आदि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया या कम से कम उनमें सहज मानवों से भिन्न लोकोत्तर गुण देखे गए। परन्तु लोक गीतों में इस दम्पति को सहज मानव के रूप में, साधारण परिवारों के सदस्य के रूप में ही स्वीकार किया गया। यही कारण है कि लोक गीतों के राम अपने सगे स्वजन जैसे लगते हैं और सीता अपनी पेटी, बहिन या बहू मालूम पड़ती है।

लोक गीतों के राम और सीता का व्यवहार सहज मानवों जैसा होता है, वे साधारण मनुष्यों की भांति क्रुद्ध होते हैं, हंसते हैं, बोलते हैं, झगड़ा

करते हैं, रोते हैं, गाते हैं। इससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम अथवा भगवती सीता की मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा मे किसी प्रकार का धक्का नहीलगता, बल्कि इस साधारण रूप मे आ जाने से वे जन साधारण के जीवन क जीवन, प्राणो के प्राण, सासो की सास बन जाते हैं। जहा शिष्ट और शास्त्राय साहित्य के रचयिता राम और सीता के मानवीय पक्ष को दबाकर रखना चाहते है, वही लाक गीतकार उनके मानवीय पक्ष को अधिक उजागर और स्पष्ट रूप मे रखना चाहते ह।

श्री बाल्मीकि की रामायण और भवभूति के 'उत्तर राम चरित नाटक' मे राम और सीता अधिक मानवीय गुणो से सम्पन्न हैं उनके पास तक हमारी पहुँच हो सकतो है। परन्तु तुलसीदास का बार बार यही आग्रह रहा है कि राम भगवान हैं, सीता भगवती हैं। जब जब राम और सीता श्री रामचरित मानस मे मनुष्यों जैसा व्यवहार करना चाहते हैं, तुलसीदास जी तुरन्त पाठक और श्रोता को यह याद दिला देते हैं कि राम भगवान हैं और सीता भगवती हैं।

विशेषतया राम के सम्बन्ध मे तो तुलसीदास इतने सतर्क और चौकन्ने रहते हे कि कभी कभी कला, मनोविज्ञान और काव्य की दृष्टि से श्री राम चरित मानस के विभिन्न स्थलो पर कमजोरी सी दिखाई देने लगती है, और वहाँ रस परिपाक भी पूर्ण रूप से नही हो पाता। अपने नायक के प्रति सजग रहना प्रत्येक कलाकार का सबसे बड़ा कर्तव्य है। परन्तु अतिरेक से, आवश्यकता से अधिक सतक और होशियार रहने से, कभी-कभी खेल बिगड़ जाता है।

यह सही है कि तुलसीदास मूलत. भक्त कवि थे और लोक रजन, लोक कल्याण तथा लोक सग्रह की दृष्टि से ही उन्होने श्री राम चरित मानस की रचना की थी। भक्त होने के कारण वह क्षण भर के लिए भी राम को परब्रह्म, परमेश्वर, पूर्णपुरुष, अव्यक्त, अनादि, अगोचर आदि के अतिरिक्त सहज, सरल मनुष्य के रूप मे नही चित्रित कर सकते थे। धर्म की रक्षा के लिए राम ने मनुष्य के रूप मे अवतार लिया था। बालकाण्ड से उत्तर

काण्ड तक राम ने 'लीला' की। बच्चे के रूप मे हो, किशोर के रूप मे हो, तरुण और गृहस्थ के रूप मे हो, बनवासी हो, विजयी सम्राट हो, अथवा चक्रवर्ती राजा हो, दशरथ कौशल्या के बेटे हो, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के सगे भाई हो, हनुमान और विभीषण के प्रभु हो, सुग्रीव के मित्र हो, सीता के पति हो, चाहे जो हो, जिस रूप मे हो, जिस प्रकार का भी कार्य और व्यवहार कर रहे हो, राम ईश्वर है—मनुष्य कभी नही। तुलसीदास जी का यह आग्रह श्री रामचरित मानस की पंक्ति पंक्ति मे विराजमान है।

फलत तुलसीदास के राम पर जनता श्रद्धा रखती है, उनको प्रभु समझती है, उनसे भयाक्रान्त और आतंकित रहती है, शरणागत होने और पग-पग पर इस लोक और उस लोक के लिए भीख मांगने, दया कृपा की याचना करने के लिए विवश रहती है। परन्तु वह राम को गोद में लेकर खेलाने, उनका गाल चूमने, बाल सहलाने, आँसू पोछने की हिम्मत नहीं कर सकती। वह राम को सच्चे अर्थ मे स्वजन, प्रिय, सहयोगी, सुख-दुख का साथी नहीं समझ पाती। सीता के साथ अन्याय करने पर वह उनसे क्रुद्ध होने की दृढता और हिम्मत नहीं दिखा सकती। तुलसीदास जी ने राम और जनता के सच्चे मनोभावो के बीच यह गहरी खाई खोद दी है जो भक्त और धार्मिक नेता के लिए सर्वथा उचित काम था, परन्तु लोक मानस के गायक के लिए पूर्णतया उचित न था। यदि यह बात न होती तो हम श्री रामचरित मानस को लोक मानस का सच्चा और एक मात्र प्रतिबिम्ब मानते, उसे केवल शिष्ट साहित्य मानकर, शास्त्रीय साहित्य की कोटि मे रखकर जन साधारण से दूर न कर देते।

अनेक लोग इस बात को इस ढग से भी रखते हैं। वे कहते है कि लोक साहित्य मे सहज हृदय के सहज भाव सहज रूप मे अभिव्यक्त होते हैं। शिष्ट साहित्य मे बुद्धि का स्थान हृदय से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। बौद्धिकता का आग्रह कृत्रिमता की जननी होती है। इसीलिए शिष्ट साहित्य मे स्वाभाविकता कम और बौद्धिकता अधिक होती है। लोक साहित्य की रचना मे बुद्धि का प्रयोग करने, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन आदि

का अध्ययन करने, रस, अलकार, पिंगल आदि के चक्कर में पड़ने की जरूरत नही होती। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों मे, "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमे अलकार नहीं, केवल रस है, छद नही, केवल लय है, लालित्य नही, केवल माधुर्य है।"

श्री त्रिपाठी जी आगे कहते हैं, "पूर्व काल मे किसी व्याध के तीर से क्रौंच पक्षी को निहत देखकर मर्माहत महर्षि बाल्मीकि के हृदय मे स्वभावत करुणा उत्पन्न हुई थी। उसी करुणा से कविता का जन्म हुआ था। जो हृदय बाल्मीकि के पास था, वह गावो मे सदा रहता है, अब भी है। उसी मे से प्रकृति का गान निकला करता है।

"कविता प्रकृति का गान है। वह मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है। इसी से कृत्रिम सभ्यता के प्रकाश मे उसका विकास नही होता।

"ग्राम गीतो का स्थान ग्राम है। जिनकी वाणी मे मस्तिष्क नही, हृदय है। जिनके विनय के परदे मे छल नही, पाश्चात्ताप है। जिनकी मैत्री के फूल मे स्वार्थ का कीट नही, प्रेम का परिमल है, जिनके मानस जगत मे आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करुणा है, सतोष है, त्याग है, क्षमा है, विश्वास है, उन्हीं ग्रामीण मनुष्यो के, स्त्री पुरुषो के बीच मे हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती हैं। प्रकृति के वे ही गान 'ग्राम गीत' हैं।"

लोक गीतो के सम्बन्ध मे उपर्युक्त सब बातें सही हैं, साथ ही यह भी कि उनमे हार होते हुए भी विजय के लिए अदम्य उत्साह है, चारो ओर निराशा का भयानक वातावरण होते हुए भी आशा का टिमटिमाता दीप अपनी मधिम मधिम किरणें बिखेरता रहता है। वहाँ क्षोभ, आक्रोश, प्रतिहिसा, सघर्ष की प्रवृत्ति, जुझारूपन, कठिनाइयो का सामना करने का जीवट और सफलता प्राप्त करने के लिए लगन भी है। सच यह है कि इन लोक गीतो मे परलोक और मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास तो है, परन्तु इससे कही अधिक स्पष्ट और पुष्ट लक्षण मिलते हैं, इस जीवन को सासारिक,

गृहस्थ जीवन को अधिक सुखी, अधिक स्वस्थ, अधिक पवित्र अधिक सहज और अधिक मगलमय बनाने के। ये लोक गीत इस बात के साक्षी ही नहीं हैं। वे तो सच्चे अर्थ मे जीवन की सारी मागलिक वस्तुओ, विचारो, दृष्टियो और आदर्शो के पहरेदार भी हैं।

यहाँ हम सीता के द्वितीय बार बन गमन के प्रकरण को लेंगे।

बाल्मीकि की रामायण मे इस घटना का वर्णन इस प्रकार आता है। राम का राज्याभिषेक हो चुका है। नगर मे, प्रजानन मे सतोष और सुख व्याप्त है। भरत जी सम्राट रामचन्द्र से कहते है "वीर, देव स्वरूप, आपके शासन करने के समय जो मनुष्य नही है वे भी बोलते देखे जाते है। अभी आपके राज्याभिषेक के हुए एक महीना से अधिक समय नही हुआ पर सभी मृत्यु-लोक वासी निरोग हो गये हैं। बूढो की भी मृत्यु नही होती, स्त्रियाँ बिना कष्ट के प्रसव करती हे। पुरुष हृष्ट पुष्ट हैं। राजन, पुरवासी भी बहुत प्रसन्न है। मेघ समय पर अमृतमय जल की वर्षा करते हैं। वायु भी शीतल सुखकारी और हितकारी रहती है। राजन, नगर वासी तथा राज्य वासी कहते है कि हम लोगो का ऐसा ही राजा सदा हो।"

भरत की यह बात सुनकर राम प्रसन्न हुए। फिर अशोक वाटिका मे जाकर निवास करने लगे। वहाँ नृत्य और सगीत विद्या के दक्ष अपने कला कौशल का परिचय देते। किन्नरिया के साथ अप्सराए, नाग कन्याए तथा दक्षिण देश की सुन्दरी स्त्रियाँ रामचन्द्र के सामने नाचती। इसी वातावरण मे एक बार प्रसन्न मुद्रा मे (सीता को कल्याण मय गर्भ के चिह्नो से युक्त देखकर) राम बोले, "देवि, तुम्हारा पुत्र पाने का समय आ रहा है। सुन्दरि, तुम क्या चाहती हो, तुम्हारा कौन मनोरथ पूरा करूँ?"

सीता जी ने हस कर कहा, "गगा तीर पर रहने वाले उग्र तपस्वी ऋषिया के पवित्र तपोवन को मैं देखना चाहती हूँ। फल फूल भोगी ऋषियो के पास मैं बास करना चाहती हूँ। यह मेरी बडी इच्छा है कि फल फूल भोगी ऋषिया के तपोवन मे कम से कम एक रात मैं निवास करूँ।"

पुण्यात्मा राम ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की और कहा, "निश्चिन्त रहो, कल तुम अवश्य जाओगी।"

इसके बाद राजाराम चन्द्र महल के बिचले खण्ड मे मित्रो के साथ गए। वहाँ विजय, मधुमत्त, काश्यप, मगल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दत्नक्य और सुमागध आदि विदूषको ने हास्य विनोद से राजा राम का मन रिझाया, उन्हे प्रसन्न किया। किसी कथा प्रसग मे राम ने कहा, "भद्र, आज कल नगर मे तथा राज्य मे कौन सी बात हो रही है? मेरे विषय मे, सीता के विषय मे तथा भरत और लक्ष्मण के विषय मे नगर और राज्य वासी क्या कहते हैं? हम लोगो के सम्बन्ध मे उनका क्या मत है? शत्रुघ्न तथा माता कैकेयी के विषय मे उनकी क्या राय है? यह सब इसलिए पूछ रहा हूँ कि बनवासी तथा राज्यवासी राजाओ की प्राय निन्दा होती रहती है।"

भद्र हाथ जोडकर बोला, "राजन, पुरवासियो की बाते शुभ हैं। आपकी कोई निन्दा नही करता।"

इस पर रामचन्द्र ने फिर पूछा, "जो भी बाते हो, ठीक-ठीक सब कहो। अच्छी या बुरी जो बात नगर वासी कहते हो, वह कहो। मैं अच्छी बातो को स्वीकार करूँगा और बुरी बाते छोड दूँगा। जिन्हे नगर वासी और राज्य वासी अच्छी समझेगे उन्हे मैं करूँगा और जिन्हे वे बुरी समझेगे उन्हे छोड दूँगा। तुम विश्वास पूर्वक, निर्भय और निश्चिन्त होकर सब कहो। पुरवासी और राज्यवासी जो बुरी बात कहते हैं वह कहो, वे हमारी जो निन्दा करते हो, वह कहो।"

तब भद्र बोला, "राजन, नगर वासी, चोपाल मे, बाजार मे, गलियो मे, बन मे, उपवन मे जो अच्छी बाते कहते है वह सुनिए। वहाँ चर्चा है कि रामचन्द्र ने समुद्र मे सेतु बाधकर अद्भुत काम किया। अजेय रावण को सेना और वाहन के साथ मारा। बानरो, भालुओ और राक्षसो को अपने वश मे कर लिया। युद्ध मे रावण को मारकर रामचन्द्र सीता को ले आए और क्रोध न करके उन्होंने उन्हे घर मे रख लिया। रामचन्द्र के हृदय

मे सीता के सभोग का सुख इतना बद्धमूल हो गया है कि जिसे गोद मे उठाकर रावण ले गया था, जो लका मे गयीं और अशोक वाटिका मे राक्षसो के अधीन होकर रही उनको रामचन्द्र ने निन्दित नही समझा। उनका त्याग नही किया। (चलो अच्छा हुआ!) यदि हम साधारण लोगो की स्त्रियो के सम्बन्ध मे ऐसी बाते होगी तो समाज उन्हे सह लेगा। वे बुरा न समझी जायगी, क्योकि जैसा राजा करता है, प्रजा भी वैसा ही करती है।"

इसके बाद रामचन्द्र ने मित्रो से पूछा, "क्या यह सवाद सत्य है?" उन सभी लोगो ने कहा कि, "यह बात सत्य है। ऐसी ही बाते नगर मे कही जा रही हैं।"

इतना सुनने पर राम ने सभा विसर्जित की, तीनो भाईयों को बुलाया और उनसे कहा, "सीता के सम्बन्ध मे पुरवासियो मे जो बाते फैली हुई है उन्हे तुम लोग हमसे सुनो। पुरवासियो और राज्य वासियो मे मेरा बडा अपवाद फैला हुआ है। मेरी बडी निन्दा हो रही है जिससे मेरा कलेजा फटा जा रहा है। मैं महात्मा इच्छ्वाकु के व श मे उत्पन्न हुआ हूँ। सीता भी महात्मा जनक के कुल मे उत्पन्न हुई हैं। तुम जानते हो कि सीता को निर्जन दण्डक बन से रावण हर ले गया। तब मैंने रावण का बध किया। वहा लका मे मैंने सोचा कि सीता इतने दिनो तक लका मे रही हैं, तो इन्हे अयोध्या कैसे ले जाऊँ? उस समय सीता ने अपनी शुद्धि का विश्वास दिलाने के लिये अग्नि प्रवेश किया। लक्ष्मण, तुम उस समय उपस्थित थे। तुम्हारे और देवताओ के सामने अग्नि ने सीता को पवित्र कहा। आकाश-चारी वायु ने सीता को निष्कलक कहा। इस प्रकार शुद्ध आचरण वाली सीता का इन्द्र, देवता और गन्धर्वों के सामने लका द्वीप मे मुझे अग्नि ने सौपा। मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीता को शुद्ध समझती है। तभी मैं सीता को लेकर अयोध्या आया। पर यह निन्दा बहुत बडी है। इससे मुझे दुख भी है। पुरवासियो और राज्यवासियो मे फैली यह निन्दा बडी भयानक

है। जिसकी निन्दा ससार मे फैलती है, जिसका अपवाद फैलता है वह तब तक निन्दित लोको मे रहता है जब तक उसकी निन्दा होती रहती है।"

राम ने आगे कहा, "हे भाइयो, कीर्ति की कामना सभी लोग करते है। अपकीति कोई नही चाहता। इसलिए (अपकीर्ति से बचने के लिए) मैं अपने प्राण छोड सकता हूँ, तुम लोगो को छोड़ सकता हू, सीता को छोडना कौन बडी बात है ?"

फिर राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम सुमन्त के रथ पर सवार होकर तथा उस पर सीता को बैठाकर उन्हे अपने राज्य के बाहर ले जाकर छोड आओ। गगा के उस पार तमसा तीर पर महात्मा बाल्मीकि का आश्रम है। वही निर्जन स्थान मे उन्हे छोड आओ। सीता ने पहिले भी मुझसे कहा है कि वह गगा तीर के आश्रमो को देखना चाहती हैं। सीता का यह मनोरथ पूरा करो।"

लक्ष्मण ने सुमत्र को सहेज कर सीता जी से कहा, "आपने आश्रम मे जाने के लिये राजा से प्रार्थना की थी। उन्होने भी बचन दिया था। उन्होने आपको आश्रम मे ले जाने के लिये मुझे आज्ञा दी है। राजा की आज्ञा के अनुसार मैं आपको गगातीर वासी मुनियो के आश्रम मे पहुँचा दूँगा।

सीता जी लक्ष्मण की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। वह अपने साथ ऋषि पत्नियो को देने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभरण लेकर रथ पर सवार हो गयी और जाते समय लक्ष्मण से बोली, "अनेक अपशकुन इस समय हो रहे हैं। मेरी दाहिनी आँख फडक रही है। कलेजा हिल रहा है। मेरा जी खराब हो रहा है। मन घबडा रहा है। बडी अधीरता मालूम पड रही है। समूची पृथ्वी मुझे सूनी लग रही है। तुम्हारे भाई का कल्याण हो। वीर, मेरी सभी सासो का कल्याण हो। नगर तथा राज्य के प्राणियो का कल्याण हो।"

निरपराध सीता को राम और लक्ष्मण दोनो ने धोखा दिया। उनकी सरल सी माग थी, बाल्मीकि के आश्रम को देखने की। उसी का सहारा

लेकर, उसी की आड में मर्यादा पुरुषोत्तम राम और उनके प्राणा से प्यारे भाई लक्ष्मण ने सीताको राज्य से निष्कासित कर दिया।

अयोध्या से इस प्रकार विदा होते समय सीता के मुख से निकले निम्नाकित वाक्य सदा सर्वदा प्रत्येक मानव प्राणी को, प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को करुणा विगलित, शोक सतत और क्रुद्ध भी करते रहेगे।

अशुभानि बहुन्येव पश्यामि रघुनन्दन।
नयन मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते।
हृदय चैव सौमित्रे, अस्वस्थमिव लक्षए।
औत्सुक्य परम चापि आतुरते भ्रातृवत्सल।
श्वश्रूणा चैव मे वीर, सर्वासामविशेषत.।
पुरे जनपदे चैव कुशल प्राणिनामपि।

इस तरह जिस जनपद और पुरवासिगो के द्वारा मिथ्या प्रचार और कलकित किये जाने के कारण और जिस राजा राम की सर्वथा अनुचित आज्ञा के कारण निष्पाप, निष्कलक, निरपराध, निर्दोष सीता को, गर्भवती स्थिति मे भी, धोखा देकर अयोध्या से निकाला गया और भेजा गया, उसी जनपद तथा पुर के वासियो और उनके राजाराम का कुशल मनाती हुई वही सीता जी प्रसन्नता और पूर्ण विश्वास तथा आस्था के साथ बन चली गई।

बन मे पहुँचकर लक्ष्मण ने सीता से कहा, "आपके सम्बन्ध मे जो भयकर जनापवाद नगर और राज्य मे फैला है उसे राजा रामचन्द्र ने भरी सभा मे सुना। राजा अपने हृदय मे, जो क्रोध और दुःख से भरा हुआ है, कलक की जो बात छिपाए हुए हे, उसे म आपके सामने नहीं कह सकता। आप निर्दोष हैं। मेरे सामने आपकी अग्नि परीक्षा हो चुकी है और आपकी निर्दोषिता प्रमाणित हो चुकी है। फिर भी राजा ने आपका त्याग किया है। वह जनापवाद से डरते है। आप अन्यथा न समझे। आप मुझे अपराधी न समझे। मैं आपको आश्रम के समीप लेजाकर छोड दूँगा। ऐसा मैं राजा की आज्ञा और आपकी अनुमति से करूँगा।"

लक्ष्मण की कठोर बाता को सुनकर सीता बेहोश हो गयीं। होश-आने पर वह बोली, "मैंने पूर्व जन्म मे कौन सा पाप किया है, किसको स्त्री वियोग कराया है कि सदाचारिणी होने पर भी मेरे पति ने मुझे त्याग दिया? पहिले मैंने रामचन्द्र जी के साथ रहकर आश्रम मे निवास किया था। वहाँ के दुखो का अनुभव करने के बाद भी मैंने पुन आश्रम मे रहने के लिए निवेदन किया था (क्योकि मैं समझती थी कि राम, मेरे पति, साथ रहेंगे!) अब मैं निर्जन बन मे बिना राम के कैसे रहूँगी? जब यहाँ के ऋषि मुनि पूछेंगे कि रामचन्द्र ने तुम्हे क्यो त्यागा, तुमने कौन सा बुरा काम किया, तो मैं क्या कहूँगी? मैं तो इस समय गगा जी मे डूब कर प्राण भी नही गवा सकती क्योकि ऐसा करने पर मेरे पति का राजवश नष्ट हो जाएगा।"

फिर सीता जी ने कहा, "लक्ष्मण, वापिस जाकर तुम सबसे मेरा प्रणाम कहना, सबको मेरा कुशल क्षेम बता देना। राजाराम स कहना राघव, आप जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है। अपयश से डरकर ही आपने मेरा त्याग किया है। आपकी जो निन्दा, जो अपवाद हो रहा है, उसको मैं दूर करूँगी क्योकि आप मेरे आश्रय है। आप पुरवासियो के साथ अपने भाइयो जैसा ही व्यवहार करे। यही श्रेष्ठ धर्म है। इससे उत्तम कीर्ति प्राप्त होती है। मैं अपने शरीर के बारे मे कुछ नही सोचती। मेरे बारे मे पुरवासियों का जैसा अपवाद है, वह बना रहे। उसकी मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि पति ही स्त्रियो का देवता है, गुरु है, बन्धु है। प्राणों का त्याग कर भी पति की इच्छा पूरी करनी चाहिए। अतएव शरीर के अपवाद का मुझे कष्ट नहीं है। त्याग का भी कष्ट नहीं है क्योंकि इससे आप के यश की रक्षा होती है।"

सीता जी ने अन्त मे लक्ष्मण से कहा, "तुम मुझे देखकर जाओ। मेरा ऋतु समय टल गया है। मैं गर्भवती हूँ।"

लक्ष्मण जी सीता की प्रदक्षिणा कर नत शिर हो यह कहते हुए नाव पर आ गए, "मैंने आज तक केवल आपका पाव देखा है। यहाँ राम की अनुपस्थिति मे मैं आपका मुख कैसे देखूँ?"

कुछ समय बाद जब शत्रुघ्न किसी कारणवश ऋषि आश्रम मे उपस्थित थे, उसी रात को सीता के पेट से दो शिशु जन्मे। बाल्मीकि ने उनका नाम लव कुश रक्खा। शत्रुघ्न ने सीता जी का दर्शन भी किया, फिर वह चले गये।

फिर राम को राजसूय यज्ञ करने की सूझी। परन्तु भरत के समझाने पर उन्होने अपना निश्चय बदल दिया और अश्वमेध यज्ञ करने की ठानी। सुग्रीव, विभीषण, सारे बानर भालु, मित्र राजा, ऋषि मुनि तथा ब्राह्मण बुलाए गये। यज्ञ के उपरान्त लक्ष्मण की देख रेख मे काला घोडा छोडा गया।

वहॉ राम के पास ऋषि बाल्मीकि भी पहुँचे थे। उन्होने अपने दो शिष्यो को रामायण का गायन करने की आज्ञा दी। जब दो बालक शिष्य वहॉ गये तो राम ने उन बालको को बुलाया और सबके सामने गाने को कहा। बालक गाने लगे। श्रोता मत्र मुग्ध हो सुनने लगे। मुनि तथा पराक्रमी राजा उन दोनो बालको को ऐसे देख रहे थे मानो वे उन्हे आखो ही आखो पी जाना चाहते हो। आपस मे चर्चा होने लगी कि इन बालको की शक्ल राम से बिल्कुल मिलती है। यदि ये अपने सिर से जटा उतार दे तो इनमें और राम मे भेद करना मुश्किल हो जाय। यह चर्चा नगर वासियो मे फैल गयी।

जब राम ने भरत द्वारा गाने के बदले मे उन बालका को सोना देना चाहा तो उन्हाने इनकार कर दिया। इससे राम बहुत विस्मित हुए। पूछने पर बालकों ने बताया कि उन्हे यह चरित बाल्मीकि ने बताया है। उनसे पूरी कथा सुनी जा सकती है। राम ने बाल्मीकि से यह पूरी कथा सुनी। तब उन्हें पता चला कि ये दोनो बालक उन्ही के बेटे थे।

राम ने फौरन बाल्मीकि के पास कहलवाया कि यदि सीता शुद्ध आचरण की और पवित्र हों तो वह यहाँ इस सभा मे अपनी शुद्धता प्रमाणित करे। बाल्मीकि ने सीता की ओर से हामी भर दी। दूसरे दिन सारे ऋषि, मुनि और प्रजाजन एकत्र हुए। बाल्मीकि सीता को लेकर उस स्थल

पर आये। सभी लोग साधु साधु कह उठे। समस्त एकत्र भीड़ मे कोलाहल मच गया।

उस जन समूह के सामने महर्षि बाल्मीकि ने उच्च स्वर मे कहा, "दशरथ पुत्र, यह सीता धर्मचारिणी और सुव्रता है। इसे लोकावाद के कारण मेरे आश्रम के पास कोई छोड़ गया था। रामचन्द्र, लोकापवाद से भयभीत तुमको, सीता अपने पातिव्रत का विश्वास दिलावेगी। तुम उसे आज्ञा दो। ये दोना जानकी के पुत्र हैं, यमज हैं, ये दोनो वीर तुम्हारे ही पुत्र हैं। में तुमसे यह सत्य सत्य कह रहा हूं। मैं प्रचेता का दसवा पुत्र हूं। मुझे अपने झूठ बोलने का स्मरण नही है। मैं कहता हूं ये दोनो बच्चे तुम्हारे पुत्र हैं। मैंने हजारो वर्ष तपस्या की है। उसका फल मुझे न मिले, यदि सीता पापिनी हो। मन, बचन और कर्म से मैंने कभी पाप नही किया। उनका फल मुझे तभी मिले यदि सीता निष्पाप हो। पचेन्द्रियो तथा मन से मैंने सीता की शुद्धि जान ली है। तभी बन के निर्झर पर इसे पाकर मैंने शरण दी। यह शुद्धाचारिणी है, निष्पाप है और पति को देवता समझती है। तुम लोकापवाद से भयभीत हो। सीता तुमको विश्वास दिलावेगी। हे राज-पुत्र, जानकी शुद्ध है। यह बात दिव्य दृष्टि से मैंने जान ली है। लोकापवाद के डर से ही तुमने इसका परित्याग किया है, यद्यपि तुम भी इसे शुद्ध जानते हो।"

इसके बाद काषाय वस्त्र पहने, सिर झुकाए सीता आयी और हाथ जोड़कर बोली—

यथाहं राघवादन्य मनसापि न चिन्तए।
तथामे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथामे माधवी देवी विवर दातुमर्हति।
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्पर न च।
तथामे माधवी देवी विवर दातुमर्हति।

"यदि मैं रामचन्द्र को छोड़कर दूसरे पुरुष की चिन्ता मन से भी न

करती होऊँ तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दे। यदि मैं मन, बचन और कर्म से रामचन्द्र की पूजा करती होऊँ तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दे। मैं राम के अतिरिक्त दूसरे पुरुष को नही जानती, यदि मेरा यह बचन सत्य हो तो विष्णु पत्नी पृथ्वी देवी मुझे स्थान दे।"

सीता जिस समय इस प्रकार बोल रही थी, सामने की धरती फट गयी। उसमे से एक सिहासन निकला। पृथ्वी ने सीता जी का अभिनन्दन दोनो हाथो को बढाकर किया और उन्हे सिहासन पर बिठाया। सिंहासन पर बैठकर सीताजी धरती मे समा गयी।

धरती ने अपनी बेटी को अपनी गोद मे वापिस ले लिया।

श्री बाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड मे सीता जी के दूसरे बार बन गमन का विवरण आपने देखा। यो तो हमारे देश मे अनेक रामायणें हैं। परन्तु इन सब मे श्री बाल्मीकीय रामायण ही ऐसी रचना है जिसका लोकगीतो से निकटतम और सबसे सीधा सम्बन्ध है। ऐसा क्यो है? श्री बाल्मीकीय रामायण के बाद सबसे लोक प्रिय राम सीता के चरित्र से सम्बन्धित रचना श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरित मानस है। परन्तु तुलसीदास जी ने अपने राम और सीता को साधारण मनुष्य के रूप मे चित्रित नही किया, फलत वे हमारे लोक मानस के पूज्य होते हुए भी उसके अविभाज्य अग नही हो पाए।

श्री बाल्मीकि के राम और सीता, अवतार होते हुए भी लोकोत्तर प्रतिभा तथा गुणों से सम्पन्न होते हुए भी, व्यवहार मे सहज, सरल मानव प्राणी हैं। इसलिए उनके ईश्वरत्व को प्रमाणित करने की चिन्ता तुलसीदास की तरह बाल्मीकि को नही हुई। राम और सीता आदर्श नायक और देवी हैं। आदि कवि ने उन्हे इस रूप मे चित्रित करने मे अद्भुत सफलता प्राप्त की है। परन्तु उन्होने अपने राम और सीता को साधारण मानव की कोटि से दूर या अलग रखने की बेकार कोशिश नही की।

सीता, रामचन्द्र, लक्ष्मण और लवकुश को चित्रित करते समय कवि ने स्वाभाविकता का ध्यान सर्वत्र रखा है। तुलसीदास ऐसा नही कर सके।

इसलिए बाल्मीकि के राम और सीता लोक मानस के अति निकट आ गए। यदि भाषा का व्यवधान न होता तो बाल्मीकि रामायण के सभी महत्वपूर्ण पात्र और कथानक लोक गीतो मे आ गये होते। परन्तु यही क्या कम है कि श्री रामचरित मानस की महान लोक प्रियता के बावजूद बाल्मीकि के राम और सीता लोक गीतों के माध्यम से जीवित रहे, वे सर्वथा लुप्त नही हो गए? इससे यह पता चलता है कि बाल्मीकि रामायण की रचना और लोक प्रियता के बाद उस कथा से अनुप्राणित लोकगीतों की परम्परा अविच्छिन्न रही, वह समय और भाषाओं के स्तरों को पार करती आज तक चली आयी है। इस प्रकार, इस कथा से सम्बन्धित जो लोकगीत प्राप्त हैं, उसकी परम्परागत प्राचीनता के सम्बन्ध मे कोई सन्देह नहीं रह जाता।

'उत्तर रामचरित नाटक' की रचना करते समय भवभूति ने श्रीबाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड से ही प्रेरणा प्राप्त की। इस महान नाटककार ने बाल्मीकि से प्रेरणा तो प्राप्त की, परन्तु उसे जन साधारण तथा दर्शको के मनोविज्ञान का सदेव ध्यान रहा। उनके हृदय मे नारी जाति के लिए कितनी अधिक श्रद्धा थी, वह उनके लिए कितनी सहानुभूति और करुणा रखते थे! वह उनके प्रति किए अन्याय को किस तरह असह्य समझते थे और उसके प्रतिकार और किसी हद तक प्रतिशोध के लिए भी कितने आकुल रहते थे, 'उत्तर रामचरित' इसका उदाहरण है। करुण रस का इतना महान नाटक शायद ससार की किसी भी भाषा मे नहीं मिलेगा।

यहा हम उत्तर राम चरित्र के अन्तिम अश को लेंगे। स्थान बाल्मीकि का आश्रम है। गगा तट पर पवित्र रग भूमि तैयार है। महर्षि बाल्मीकि ने ब्राह्मणो, क्षत्रियो, पुरवासियो, प्रजाजनो, देवताओं, राक्षसो, नागों, चराचर के जीवो को नाटक देखने के लिए निमन्त्रित किया है। राम और लक्ष्मण भी वहा हैं। लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु के साथ ही लवकुश बैठे हैं। नाटक आरम्भ होता है।

गगा और पृथ्वी बच्चो को गोद मे लिए मूर्छित सीता को सम्हाले रग मच पर आती हैं। इसी समय गगा कहती हैं—

अत्रभवती विश्वम्भरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन।
यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तश्चेतनावतामुपप्लव.
ससारतन्तुः। सखि भूतधात्रि वत्से वैदेहि समाश्वसिहि।

"भगवती बसुन्धरा भी दुखी हो रही हैं। इसीलिए कि सतान स्नेह ने उन्हे जीत लिया। अथवा यह मोह ग्रन्थि सर्वसाधारण है। यह ससार सूत्र सभी जीवो के हृदय मे रहने वाला है। सखि पृथ्वी, बेटी सीता, धीरज धरो।"

इसके उत्तर मे सीता की माता पृथ्वी कहती हैं—

देवि, सीता प्रसूय कथमाश्वसिमि ?
सोढश्चिर राक्षस मध्यवास
स्त्यागो द्वितीयस्तु सुदु सहोऽस्याः।

"देवि मैंने सीता को जन्म दिया है। मैं धीरज कैसे धारण करूँ ? एक तो बहुत दिनो तक उसका असह्य निवास राक्षसा के बीच रहा। फिर दूसरी बार वह निर्वासित की गयी। यह असह्य है।"

गगा ने पृथ्वी को समझाया कि प्रारब्ध के आगे किसी की नही चलती। इस पर पृथ्वी ने एक सतप्त दुखी मा की तरह चिढकर कहा—

भगवती भागीरथि, युक्तमेतत्सर्व वो रामभद्रस्य ?
न प्रमाणीकृत पाणिर्बाऽल्ये बालेन पीडित।
नाह न जनको नाग्निर्नतु वृत्तिर्न सन्ततिः॥

"भगवती भागीरथी, आपके वश मे उत्पन्न रामचन्द्र के लिए क्या यह उचित था ? रामचन्द्र ने बचपन मे किए गए पाणिग्रहण को प्रमाण नही माना। उन्होने न मुझपर, न विदेहराज पर, न अग्नि पर, न पातिव्रत धर्म पर और न सतान पर ही कुछ ध्यान दिया।"

गगाजी ने पृथ्वी को बहुत कुछ समझाया, लोकापवाद की बात कही, इच्छ्वाकु वश के कुल की दोहाई दी। बाते चलती रहीं। तब तक सीता जी ने कहा—

णेदु म अत्तणो अगेसु विलअ अम्बा।
"—मा, मुझे अपने अङ्गो मे छिपा ले।"

पृथ्वी तथा गंगा दोनों सीता को समझाती हैं। अन्त में सीता की पवित्रता की दोहाई देती हुई दोनों एक स्वर मे सीता से ही कह उठती हैं—

जगन्मंगलमात्मानं कथं त्वमवमन्यते।
आवयोरपि यत्संगात् पवित्रत्वं प्रकृष्यते।

"विश्व कल्याण की मूल तू, अपने आप को हीन क्यों समझ रही है ? तेरे ही संसर्ग से हम दोनों की पवित्रता का उत्कर्ष है।"

इस पर लक्ष्मण कह उठते हैं, "आर्य, सुनिए" और राम भरे हुए कण्ठ से इतना ही कह पाते हैं—लोक शृणोतु—"संसार सुने।"

नाटक आगे चलता है। सीता जी पृथ्वी से पुनः प्रार्थना करती हैं कि, "मा, मुझे अपने अंगों मे छिपा ले। मृत्यु लोक मे मैं इस प्रकार का अपमान सहन करने मे असमर्थ हूँ।"

णेदु म अत्तणो अंगेसु विलअ अम्बा, ण सहिस्स ईरिस जीअलोअस्स परिभव अणुभविदुम्।

सीता की इस चुनौती भरी मांग को पृथ्वी माता अस्वीकार न कर सकीं और उन्हें कहना पड़ा कि जब बच्चे दूध पीना छोड़ देंगे तो वह अपनी बेटी सीता को अपनी गोद मे वापिस बुला लेगी।

और सीता धरती की गोद में समा भी जाती हैं!

इसके बाद राम व्याकुल होकर चीख पड़ते हैं, "क्या सीता विलीन हो गयी ? हाय, पातिव्रत धर्म की देवि रसातल को चली गयी!"

और, वह उसी समय मूर्छित होकर गिर जाते हैं।

उधर गंगाजल खौलने लगता है। सभी लोग आश्चर्य चकित होकर देखने लगते हैं कि अब क्या होता है। उसी समय नभ वाणी होती है, "हे विश्व वन्द्ये अरुन्धती, हम दोनों, गंगा और पृथ्वी को संतुष्ट करो, तुम्हारी इस पुण्य व्रता बहू को हम तुम्हे सौंपती हैं।"

अरुन्धती सीता के साथ आती हैं। अरुन्धती सीता को आदेश देती हैं कि वह अपने स्पर्श से राम को जाग्रत करें। सीता संकोच के साथ राम का बदन छूती हैं और कहती हैं—

समस्ससदु समस्ससदु अज्जउत्तो ।

सीता ने इस तरह राम को जाग्रत और आश्वस्त किया। अन्त मे माता अरुन्धती ने समस्त पुरवासियो को ललकारते हुए घोषणा की :

भो भोः पौरजानपदा, इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेव प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या च समर्पिता पूर्व भगवता वैश्वानरेण निर्णीत पुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता सावित्र कुल बधूदेव यजनसम्भवा जानकी परिग्रह्यताम् । कथमिहि भवन्तो मन्यन्ते ।

"पुरवासियो, भगवती गगा और पृथ्वी से प्रशसित और उन्ही के द्वारा मुझको समर्पित की गयी तथा इससे पहिले अग्नि द्वारा पवित्र मानी गयी, ब्रह्मा सहित सभी देवताओ से बन्दनीया सूर्य बश की पतोहू, यज्ञ भूमि से उत्पन्न इस सीता को राज रानी के रूप मे स्वीकार करो। कहिए, आप लोगो की क्या राय है ?"

इसके बाद विरोध करने की हिम्मत किसकी हो सकती थी ? राम ने घुटने टेक दिये । सीता ने बस इतना पूछा और वह भी स्वगत, अपने मन से, "क्या आर्य पुत्र मेरे दुख को दूर करना जानते है ?"

सीता का दुख दूर करना राम जानते हो या न जानते हो, परन्तु राम का दुख तो सीता ने दूर कर ही दिया, राम को अपनी बिछुडी पत्नी और अपने बेटे प्राप्त हो गये । सीता को अपनी कीति, अपना यश, अपनी विमलता की प्रतिष्ठा पुन प्राप्त हो गई । इस प्रकार यह सुखान्त नाटक समाप्त हुआ ।

श्री बाल्मीकीय रामायण तथा उत्तर रामचरित नाटक मे आपने इस अत्यन्त करुणा पूर्ण कथानक को इस रूप मे देखा । पिछले सहस्रो वर्षों से भारतीय जनता इस कथानक को पढती, सुनती, रोती और सिर धुनती चली आयी है और सहस्रा वर्षों से वह करुणा विगलित होकर सीता के प्रति किए गए अन्याय को याद कर आक्रोश से राम की मर्यादाशीलता, न्याय-प्रियता और वीरत्व पर शका करती तथा लव के शब्दो मे कहती आयी है,

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हु वर्तते ।
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्य कुण्ठयशसो लोके महान्तोहिते ।
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने ।
यद्वा कौशलमिन्द्र सुनुनिधने तत्राप्य भिज्ञो जनः ।

"श्री रामचन्द्र आलोचना करने योग्य नहीं हैं। (बड़ा की भी भला कभी आलोचना करनी चाहिए !) यहाँ पर उनके सम्बन्ध मे कुछ भी कहना उचित नही है। अबला ताड़का को मारकर ही वह ससार मे पूज-नीय हैं। और, राक्षस के साथ लड़ते समय तीन पग पीछे हट जाने की बात और बालि बध सम्बन्धी उनके कौशल को कौन नही जानता ?"

जनता के मन मे यह आक्रोश है कि सीता जब निर्दोष थी तो राम ने उन्हे निर्वासित क्यो किया ? लोकापवाद से भय राजाराम को था ? हुआ करे ? परन्तु व्यक्ति और नागरिक राम को किस बात का भय था ? सीता निष्पाप थी । राम लक्ष्मण दोनो को यह अच्छी तरह पता था। फिर भी पुरुषोत्तम राम ने अपने प्रभुत्व की मर्यादा के दम्भ मे, सीता को बिना बताए, बिना उनसे कुछ भी पूछे, धाखा देकर, उन्हें गर्भवती स्थिति मे अकारण बन भेज दिया। क्या राम का यह कार्य उचित था ? बाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्य सब ऋषियों, मुनियो, सतो और विचारको के अथक प्रयत्नो के बावजूद सहस्रो वर्षों से जनता का सरल मन यही कहता आया है कि राम ने अन्याय किया, अपने अह तथा स्वार्थ की रक्षा के लिए, अपना यश बनाए रखने के लिए निरपराध सीता का बलिदान कर दिया।

लोक गीतो मे यह विचारधारा, यह भावना और भी अधिक उभर-कर, खुलकर सामने आयी है। लोक मानस पूरी तरह सीता के साथ है। जनता के सरल कोमल हृदय ने साफ देखा है कि उसकी बेटी, उसकी बहिन, उसकी बहू सीता के साथ राम ने घोर अन्याय किया है। इसीलिए वह राम को क्षमा नही कर सका है। आइये, जनता के आसुओं से लिखे इस लोकगीत की करुणा धारा मे हम भी अपने को डुबा दे ।

ननद भौजाई दूनो पानी गई, अरे पानी गई।
भौजी, जौन रवन तुहे हरि लेइग उरेहि दिखावहु।
जौ मै रवना उरेहौ उरेहि दिखावहु।
सुनि पैहै बिरन तुम्हार ते देसवा निकरिहै।

सीता जी श्रीरामचन्द्र की बहिन के साथ एकबार पानी भरने चली। रास्ते मे ननद भौजाई मे बाते हो रही थी। बात ही बात मे ननद ने भौजाई से कहा, "भौजी, जो रावण तुमको हर ले गया वह किस तरह का था, कैसा था, जरा उसका चित्र बनाकर दिखाओ तो।"

सीता जी ने जवाब दिया कि, "यदि म रावण का चित्र बनाऊँगी और उसे बनाकर तुम्हे दिखाऊँगी तो बडा अनर्थ हो जायगा। अगर तुम्हारे भैया सुन लेंगे कि मैंने उनके शत्रु और अपने को हरकर ले जाने वाले रावण का चित्र बनाया तो उन्हे मेरे चरित्र पर सदेह हो जायेगा। वह समझेंगे कि मैं रावण से अब भी स्नेह करती हूँ इस कारण क्रुद्ध होकर वह मुझे इस देश से निकाल देंगे।"

लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौ।
भौजी, लाख दोहइया लछिमन भैया जो भैया से बतावौ।

सीता जी की ननद ने कहा, "मैं अपने पिता राजा दशरथ की लाखो दोहाइयाँ देकर कहती हूँ, में राम का माथा छूकर शपथ लेती हू, में अपने भाई लक्ष्मण की भी लाख दोहाई देकर बचन देती हूँ कि मैं यह बात अपने भाई से न बताऊगी। तुम मेरी बातो पर विश्वास करो और रावण का चित्र बनाकर मुझे दिखा दो।"

सरलहृदया, निष्कलुषमना सीता ने अपनी ननद की बातो पर विश्वास कर लिया। उन्होने कहा—

मागो न गाग गगुलिया गङ्गा जल पानी।
ननदी समुहे कै ओबरी लिपावउ मै रवना उरेहौ।
मगिन गाग गगुलिया गगा जल पानी।
सीता समुहे का ओबरी लिपाइन त रवना उरेहै।

"अच्छा, गगाजल मगवा लो और सुनो, तुम सामने वाली कोठरी को लीप पोतकर दुरुस्त करा दो तो मैं रावण का चित्र बना दू।" गगाजल आ गया। सामने की कोठरी भी साफ कराकर लिपा दी गयी। इसके बाद सीता जी ने रावण का चित्र बनाना शुरू कर दिया।

हथवउ सिरिजन गोडवहु नयना बनाइन।
आई गए सिरीराम अचर छोरि मूँदिनि।

सीता जी ने धीरे धीरे रावण का चित्र बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने पहिले हाथ बनाया फिर पाव का चित्र खीचा। बाद मे आँखें बनायी। इस प्रकार सीता जी रावण के शरीर के विभिन्न अग चित्रित कर रही थी कि उधर से राम आ निकले। तब इस डर से कि कही रामचन्द्र जी उस चित्र को न देख ले सीता जी ने उस अपने आचल से ढक लिया। इस प्रकार चित्र छिप गया और राम जी उस देख न सके। और, उस वक्त की मुसीबत टल गयी।

परन्तु सीता जी की ननद कब मानने वाली थी? अगर वह चुप रह जाती और अपने बचन के अनुसार रामजी से यह बात न बताती तो लोक परम्परा म प्रसिद्ध ननद भोजाई की जन्मजात ईर्ष्या और द्वेष आदि की बात कैसे सच होता? ननद का अपना स्वाभाविक काम करना ही था। इसलिए जब राम चन्द्र घर मे आये और चोके मे पहुँचे तो ननद जी के नये अभिनय के लिए रगमच प्रस्तुत हो गया।

जेवन बैठे सिरी राम बहिन लोहि लाइन।
भइया जोन रवन तोर बैरी त भौजी उरेहैं।

श्री रामचन्द्र भोजन करने बैठे तो उनकी बहिन ने उनके कान भरे, लाई लगायी। उन्होंने रहस्यात्मक ढग से, शिकायत भरे अन्दाज मे राम चन्द्र जी से कहा, "भैया क्या बताऊँ? कुछ कहा नही जाता। परन्तु बिना कहे रहा भी नही जाता। मैंने अपनी आख से देखा है कि जो रावण तुम्हारा बैरी था, भौजी उसका चित्र उतारा करती हैं।"

इतना सुनते ही राम आग बबूला हो गए। उन्होने सीता जी से कुछ पूछना भी उचित न समझा। उन्होने आव देखा न ताव, फौरन उन्होंने हुक्म दे दिया—

अरे रे लछिमन भइया, विपतिया के नायक।
सीता के देसवा निकारहु ई त रव ना उरेहै।

"अरे विपत्तियो के दिनो के साथी, मेरे भाई लक्ष्मण, तुम सीता को देश निकाला दे दो। इसे शीघ्र अयोध्या से बाहर निकाल कर जगल मे छोड आओ। यह तो रावण का चित्र खीचती है (अर्थात् यह मुझे प्यार नही करती। यह उस रावण को अब भी याद करती है जिसकी लका मे वह इतने दिनो रही है। हो सकता है कि वहा रहने के कारण उसके मन मे मेरे शत्रु रावण के प्रति ममता उत्पन्न हो गयी हो। ऐसा सीता ने तब किया जब कि इसी सीता को बचाने के लिए मैंने इतना बडा युद्ध किया। अत यह पापिनी है, कलकिनी है, इसे शीघ्र घर से निकालो और जगल मे छोड आओ।)

रामजी के इस आदेश से लक्ष्मण जी हतप्रभ हो गए। वह जानते थे कि सीता जी सर्वथा पवित्र है। उनके सामने ही सीता जी ने अग्नि परीक्षा देकर अपने को पवित्र साबित कर दिया था। फिर भी राम अकारण उनके चरित्र पर सन्देह कर रहे थे। लक्ष्मण यह अन्याय बर्दाश्त नही कर सकते। उन्होने जीवन भर अन्यायो का विरोध किया था। यहाँ भी उन्होने कहा—

जे भौजी भूखे का भोजन, नागे के बरतर
से भौजी गरुवे गरभ से मै कैसे निकारो।

"सीता पवित्र है, सीता निरपराध हैं। वह धर्म परायणा है, दया और स्नेह की मूर्ति है। उनके हृदय मे अपार करुणा का सागर हिलोरे लेता रहता है। उनकी दया की हद यह है कि वह भूखे के लिए भोजन बन गयी है, वह नगे के लिए वस्त्र बन गयी हैं। जो दानशीलता की प्रतिमा हैं, उदारता और करुण जिनका सहज शृगार है, ऐसी पावन, पवित्र, धर्म प्राण, भाभी को घर से निकाल देना असम्भव है। फिर यह भी तो

सोचना चाहिए कि इस समय वह गर्भवती हैं। दिन पूरे होने को आए हैं। उनकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति ऐसी नही है कि वह यह धक्का सह सके। गर्भवती स्त्री को घर से निकाल देना शास्त्रो के विरुद्ध है, अनीति है, पाप है।" इसलिये लक्ष्मण अपनी गर्भवती भाभी सीता को अकारण घर से निकालने के लिए राजी न हुए।

मगर राजा राम, पुरुष राम, स्त्री के पति और उसके जीवन के मालिक राम, कब लक्ष्मण की नीति युक्त बातें सुनने वाले थे? इससे तो उनके पति और पुरुष और मालिक होने की भावना को धक्का लगता था। फिर, एक बार उनके मुँह से जो बात निकल गयी, जो आदेश निकल गया वह भी तो किसी न किसी प्रकार पूरा होना ही चाहिए था। उन्होने फिर कहा, "भाई लक्ष्मण? तुम मेरे विपत्तियो के साथी हो। यह सीता रावण का चित्र उतारती है। मुझे इसके चरित्र पर सन्देह है। तुम इसे घर से निकाल दो और बन मे छोड आओ।"

अब लक्ष्मण मजबूर हो गये। दूसरी बार जब राम ने अपनी बात दोहराई तो लक्ष्मण के पास चुप रहने के अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता न रह गया। विवश हो कर वह भाभी सीता के पास पहुँचे और बोले—

अरे रे भौजी सीतल रानी, बडी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहका नेवतवा, विहान बन चलबै।

लक्ष्मण की हिम्मत न पड़ी कि वह सीता को असल बाते बता देते। जिस सीता जी की पवित्रता के साक्षी वह स्वयं थे, जिसे उन्होने केवल मा के रूप मे देखा था, जिसके नुपुरो के अतिरिक्त किसी अन्य गहने को उन्होंने बन मे बरसों चौबीस घटा साथ रहने पर भी कभी नहो देखा था, जो सीता आदर्श भाभी और आदर्श पत्नी थी, और जो सीता इस समय गर्भवती थीं उनको बिना किसी अपराध के घर से निकाल देने का आदेश राम ने दे दिया था। लक्ष्मण क्या करते? भीतर आग लगी हुई थी। विद्रोह, क्रोध और अन्याय जनित प्रतिहिंसा तक की भावना जाग उठी थी। परन्तु वह मर्यादाशील व्यक्ति थे। बडे भाई की आज्ञा का पालन उन्हे करना

ही था। साथ ही सीता भाभी से कठोर शब्द बोलना भी असम्भव था। लक्ष्मण ने बहाना किया। कहा, "बन से निमन्त्रण आया है। मेरी प्यारी भाभी, मेरी अच्छी नेक ठकुराइन, हम दोनो कल बन चलेगे।"

सीता जी को हैरानी हुई, बन से निमन्त्रण, वहा तो—

ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर,
देवरा, ना रे जनक अस बाप, मै केहि के जइहौ।

मिथिला के राजा जनक ने तो निमन्त्रण भेजा नहीं था। राजा जनक बन मे तो रहते नही थे। बन मे ससुराल भी न थी। वह तो स्वय अयोध्या मे उपस्थित थी। फिर निमन्त्रण कैसा? किसका निमन्त्रण और क्यो? इस स्थिति मे बन मे किसके पास जाएँगी?

लक्ष्मण ने सीता जी को समझाया, जो भी तर्क दे सके दिया, जो भी बहाना बना सके बनाया। सरलहृदय सीता जी ने अपने देवर की बातो पर विश्वास कर लिया। वह लक्ष्मण के साथ बन जाने को तैयार हो गयी। जाते समय सीता जी के मन मे किसी प्रकार का सशय नही था। वह किसी तरह यह सोच भी नही सकती थी कि लक्ष्मण उन्हे धोखा देंगे। इसलिए जाते समय,

कोछवा के लिहिन सरसइया छिटत सीता निकसी।
सरसो, यही क अइही लछिमन देवरा कंदरिया तोरि खइहै।

सीता जी ने अपने कोइछा में सरसों भर लिया और चलते समय उसे छीटती गयी। सरसो को सहेजती गयी कि वापिसी मे देवर लक्ष्मण जब इधर से निकलेंगे तो भूखे होगे और वह सरसो की कदरी (कोमल डन्ठल) तोडकर खायेंगे। (सीता जी के हृदय मे इस समय भी देवर लक्ष्मण के लिए जो सहज ममता भरी हुई थी उसी का प्रमाण सरसो का यह छीटना है!)

एक बन डाकिन दूसर बन डाकिन तिसरे विन्द्राबन।
देवरा एक बूंद पनिया पिअवतेव पियसिया से व्याकुल।

सीता जी लक्ष्मण जी के साथ चलीं। उन्होने एक बन पार किया। दूसरा बन पार किया और फिर वृन्दाबन पहुँच गयी। (लोक गीतों मे अक्सर वृन्दाबन का अर्थ साधारण बन ही माना गया है)। वहा पहुँची तो सीता जी को बहुत तेज प्यास लगी। बाल्मीकि अथवा तुलसीदास की सीता होती तो बात दूसरी थी। यह तो ग्राम वासिनी सीता थी। लक्ष्मण के साथ पैदल बन यात्रा कर रही थी। दो दो बन पार कर चुकने के बाद उनका इस प्रकार प्यास से परेशान हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। उन्होने कहा, "हे देवर, म प्यास से व्याकुल हो रही हूँ। एक बूद पानी पिला देते।"

लक्ष्मण ने कहा,

बैठहु न भौजी चदन तरे, चदना बिरिछ तरे।
भौजी पनियाँ क खोजि करि आई त तुमका पियाई।

लक्ष्मण ने आगे यात्रा स्थगित कर दी। उन्होने कहा, "भाभी, आप चन्दन के वृक्ष के नीचे, शीतल छाया मे बैठे। मे पानी ढूँढने जाता हूँ। पानी लाकर मे अभी आप को पिलाता हूँ।"

लक्ष्मण पानी लाने के लिए चले गये। उधर सीता जी आराम से वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। शीतल बयार चलने लगी। शीतल छाया थी ही। सीता जी श्रमश्लथ हो चुकी थी। थोडा सा आराम मिला, धरती पर लेट गयी। वह कुम्हला कर, प्यास से व्याकुल होकर, सो गयी।

उधर लक्ष्मण जी ने कदम के पत्तो का दोना बनाया। उसमे पानी भरकर लक्ष्मण जी सीता जी को पिलाने के लिए आए। यहाँ आकर उन्होने सीता जी को गहरी नीद मे सोती पाया। लक्ष्मण जी न सोचा यही मौका है कि उनको चुपके से निकल जाना चाहिए। लक्ष्मण जी ने यही किया। लक्ष्मण जी ने जिस समय यह कायरता पूर्ण धोखे का काम किया होगा उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी? वह अपनी मातृवत भाभी को इस दुरावस्था मे, पूर्णतया अरक्षित, बिना उनसे कुछ सुने छोडकर चोरो की तरह, चुपके से भाग निकले। उनकी हिम्मत न पड़ी कि वह सीता जी को जगाकर, उनको पानी पिलाकर, उनसे आज्ञा लेकर वापिस जाते। वह सीता

जी को धोखे से बन लाए थे। और सीता जी को धोखा देकर वह चुपके से चल दिये।

थोड़ी देर मे सीता जी उठी और चकपका कर चारो ओर देखने लगी। वह उठ बैठी। उनकी नजर लवग के पड से टगे दोने पर पडी। वह विलाप कर उठी।

कहाँ गए लछिमन देवरा त हमे न बतायउ।
हिरदइया भर देखतेऊँ, नजर भर रोउतेऊँ।
को मोरे आगे पीछे बैठइ, को लट छोरै।
को मोरी जागि रयनियाँ त नरवा छिनावइ।

"हाय, मेरे देवर लक्ष्मण। तुम कहाँ चले गए? हाय तुम मुझसे कहकर क्यो नही गए? यदि तुम मुझसे कहकर जाते तो तुम्हे कम से कम एक बार जी भर कर देख तो लेती। जाते समय तुम्हे देखकर अच्छी तरह रो तो लेती। अब मेरा क्या होगा? कौन मेरे आगे पीछे बैठेगा? कौन मेरी देख रेख करेगा? कौन मेरे बाल खोलेगा? कौन मेरे साथ रात भर जागेगा? कौन नारा काटेगा?"

लक्ष्मण की क्रूरता सीता जी को खल गयी। लक्ष्मण का इस तरह जाना सीता की बहुत बडी पीडा का कारण हुआ। परन्तु लक्ष्मण के लिए एक भी कठोर शब्द उन्होने नहीं कहा। उलटे यह सोचकर बिलखती रहीं कि जाते समय लक्ष्मण का वह देख भी नही सकी।

अब उनको अपनी गर्भावस्था का ध्यान आ गया। अपनी निर्जनता से वह घबरा गयी। आगे पीछे कोई नही था। इस कठिन समय मे कौन उनकी मदद करता? सीता जी निराशा, अवसाद, भय और अनिश्चयता के भवर मे डूबने लगी। वह अपनी विवशता पर विलाप करने लगी। उनकी करुण चीत्कार से सारा बन गूज उठा। उसी समय उस निर्जन बन में से तपस्विनियाँ निकली और उन्होने सीता जी को समझाना शुरू किया—

सीता हम तोरे आगे पीछे बैठब, हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रयनियाँ त नरवा छिनउबै।

हम तुम्हारे आगे पीछे रहेगी, तुम्हारी देख भाल करेगी, तुम्हारा जूडा खोलेगी, तुम्हारे साथ रात भर जागेगी, हम नारा काटेगी। उन तपस्विनियो ने समझाया और आश्वस्त किया कि चिन्तित होने का कोई कारण नही है, सीता अपने को अकेली न समझे, उनकी सेवा परिचर्या के लिए, देखभाल के लिए, सब प्रकार की सुविधा पहुँचाने के लिए, वे सदैव तत्पर रहेगी।

किसी तरह रात कटी। लोहा लगा। अरुणोदय हुआ। और, उसी भोर बेला मे सीता जा को दो पुत्र उत्पन्न हुये। पुत्र उत्पन्न होने पर तपस्विनिया ने सीता जी से कहा कि वह लकडी जलाकर उजाला कर लें और उसी रोशनी मे बच्चा का मुँह देख ले। सीता जी को इस समय बडा दुख था। अयोध्या के राजा रामचन्द्र के बच्चों का जन्म ऐसी दयनीय स्थिति मे हुआ यह साच कर सीता जी का कलेजा फटा जा रहा था। उन्होने रोकर कहा—

तुम पूत भयेहु विपति मे, बहुतै सासति मे,
पूत, कुसै ओढन कुस डासन बन फल भोजन।

"हाय मेरे बच्चो, कैसी विपत्ति मे तुम्हारा जन्म हुआ है! कितनी सासत मे, कितनी कठिनाई और मुसीबत में तुम पैदा हुए हो! हाय, तुम्हें कुश का ही ओढना कुश का बिछौना मुयस्सर हो रहा है! बन मे फलों को ही खाकर तुम्हे सतोष करना होगा।"

जो पूत होते अयोध्या मे, वही पुर पाटन,
राजा दशरथ पटना लुटौते, कौसल्या रानी अभरन।

"मेरे बच्चो, यदि तुम्हारा जन्म अयोध्या मे हुआ होता, यदि तुम अपनी राजधानी मे पैदा हुए होते तो आज राजा दशरथ सारा शहर लुटा देते, कोशल्या रानी सारे कपडे गहने लुटा देती।"

परन्तु यहाँ तो परिस्थिति ही दूसरी थी। इन बच्चो की माँ सीता परित्यक्ता थी, निर्वासिता थी। उस बन प्रान्त मे उन तपस्विनियो के अतिरिक्त उनको पूछने वाला और कौन था? माँ के हृदय के इस कलक को, इस

ग्लानि और पीड़ा को कौन समझ सकता था। परन्तु सीता के पास चुप रह जाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या था?

उसके बाद सीता जी ने बन के नाई को बुलाया कि वह जल्दी आवे और उनका रोचना लेजाकर अयोध्या पहुँचा दे। वहाँ वालो को यह सन्देश दे दे कि सीता को पुत्र उत्पन्न हुए हैं। नाई के आने पर सीता-गर्वीली, मानिनी सीता ने उसे सहेजा—

पहिले दिहौ राजा दशरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तीसरे रोचना लछमन देवरा, पै पिये न जनायउ।

"पहिले रोचना राजा दशरथ को देना, दूसरे रोचना कौशल्या रानी को देना, तीसरे रोचना मेरे देवर लक्ष्मण को देना, पर मेरे पति रामचन्द्र से कुछ मत कहना, उनसे मत बताना कि मेरे बच्चे पैदा हुए हैं।"

नाई ने ठीक यही किया। उसने सबसे पहले राजा दशरथ को रोचना दिया, फिर उसने रानी कौशल्या को रोचना दिया। अन्त मे उसने लक्ष्मण देवर को रोचना दिया। परन्तु उसने रामचन्द्र से कुछ न कहा। राजा दशरथ ने इस सुखद समाचार को सुनकर खुश होकर नाई को अपना घोड़ा दे दिया। रानी कौशल्या ने उत्साह के कारण उसे गहने दिये। लक्ष्मण न उसे पाँचो जोड़े दिए। वह बहुत प्रसन्न होकर बन की ओर लौटा।

कथा आगे चलती है। नाई के बन लौट जाने पर लक्ष्मण और राम की भेंट होती है। राम प्रातःकाल तालाब के किनारे खड़े हैं।

चारिउ खूँट का सगरवा त राम दतुइन करे।

राम चौकोर तालाब के एक घाट पर खड़े हैं और वहीं दतुवन कर रहे हैं। उसी समय लक्ष्मण वहाँ आते हैं। उनका माथा चन्दन, अक्षत, रोली आदि से जगमगा रहा है। जब लक्ष्मण राम के निकट पहुँचते हैं तो उन्हें देखकर राम पूछते हैं—।

भइया महर महर करै माथ रोचन कह पायउ।
भइया केकरे भए नंदलाल त जिया जुड़वायन।

"भाई लक्ष्मण, तुम्हारा माथा इस तरह चमक रहा है। बताओ,

तुमको यह रोचना कहाँ मिला ? इस रोचना से तो यह पता चलता है कि किसी के घर बच्चा हुआ है। भैया, किसका कलेजा ठंडा हुआ है, किसकी गोद भरी है, किसके घर बच्चा पैदा हुआ है ?

भौजी तो हमरे सितल रानी बसहिं बिन्द्रावन।
उनके भये है नदलाल, रोचन सिर धारेन।

लक्ष्मण ने छोटा सा परन्तु स्पष्ट उत्तर दिया, "मेरी भाभी रानी सीता को, जो कि इस समय वृन्दाबन (जगल) मे रहती है, पुत्र उत्पन्न हुए हैं। वही से मेरे लिये रोचना आया था, जिसे मैंने अपने माथे पर लगा रक्खा है।"

लक्ष्मण का यह उत्तर सुनकर राम अवाक् और स्तम्भित रह गये। हाथ की दतुइन हाथ मे और मुह की मुह मे ही रह गयी। राम की आँखो से मोती के दानो की तरह आँसू झरने लगा। किसी प्रकार राम ने अपने को सम्भाला, अपनी ग्लानि और अपमान तथा अपने प्रति सीता, लक्ष्मण आदि की उदासीनता की पीडा को चुपचाप सहा। उन्होंने बन जाते हुए नाई को बुला मगवाया। राम उससे मिलने और सीता का हाल चाल सुनने के लिए उद्विग्न हो रहे थे। नाई के आने पर राम ने उससे कहा, "तुम सीता रानी का पूरा हाल मुझे सुनाओ। मैं सीता को बन से वापिस बुलाना चाहता हूँ।"

कुस रे ओढन, कुस डासन, बन फल भोजन।
साहब, लकडी का कीहिन अजोर, सतति मुख देखिन।

"सीता जी के बारे मे क्या कहूँ ? वह तो कुश का विस्तर बिछाकर उसी पर सोती हैं। वह कुश का ओढना ही ओढती हैं। बन मे जो कुछ फल फूल उन्हे मिल जाता है वही उनका आहार है। उनकी दशा कितनी दयनीय है, मैं क्या बताऊँ ? मालिक आप उनकी दशा का अन्दाज इसी बात से लगा सकते हैं कि उन्हे अपनी सन्तान का मुख, खुद अपने हाथ से लकड़ी जलाकर, उसी के प्रकाश मे देखना पडा था।"

राम आगे न सुन सके। उनका कलेजा फटने लगा। राम को उस समय कितना पछतावा हुआ ? उन्हें उस समय कितनी पीड़ा हुई ? अन्त में

राम ने लक्ष्मण को बुलाया और कहा, "तुम मधुबन जाकर किसी प्रकार अपनी भाभी सीता को वापिस ले आओ।" बडे भाई रामचन्द्र की आज्ञा सिर पर धारण कर लक्ष्मण फिर बन पहुँचे और भाभी से कहा कि, "राम ने तुम्हे बुलाया है, अयोध्या चलो।"

सीता जी ने लक्ष्मण की बात ध्यानपूर्वक सुनी। उन्होने अपने देवर से कहा—

देवरा, जाहु लवटि तु अजोध्या त हम नहि जाबै।
लछिमन, अखिया में पटिया बधावा, अजोध्या दिखावा।

"मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण, तुम अयोध्या लौट जाओ। मैं अयोध्या किसी भी प्रकार नहीं जा सकती।" इतना कहने के बाद सीता जी को लक्ष्मण की मर्यादा का ध्यान आया। आखिर, लक्ष्मण देवर थे न! सीता जी ने कहा, "मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण यह तो सही है कि मैं राजा राम की आज्ञा मानकर अयोध्या वापिस नही जा सकती। राम ने मुझे अकारण निर्वासित किया है। इसलिए उनकी आज्ञा मानने का प्रश्न नही उठता। तुम्हारी बात अवश्य मैं रखना चाहती हूँ। तुम मेरी आखा पर पट्टी बाँध दो। मैं थोडी दूर तुम्हारे साथ अयोध्या की दिशा मे चलूगी और फिर वापिस आ जाऊगी। इस तरह तुम्हारी जिद पूरी हो जायगी और मेरी टेक भी।" ऐसा ही हुआ। सीता लक्ष्मण के साथ थोडी दूर तक अयोध्या की ओर गयी और फिर अपने आश्रम मे वापिस चली आयी।

सम्भवत अन्तिम बार लक्ष्मण ने फिर सीता पर अयोध्या वापिस चलने के लिये जोर डाला तो सीता जी ने कहा—

जाव लछुन घर अपने त हम नहि जाबै।
जौ रे जिये नदलाल तो उनही का बजिहै।

"नही लक्ष्मण, तुम अपने घर जाओ। मैं तुम्हारे साथ नही जाऊगी। यदि मेरे ये बेटे जी गये तो उनके ही बेटे कहलायेगे।"

"ये बेटे उनके ही कहलायेगे," कहकर सीता जी ने केवल अपने ही

हृदय की पीड़ा को व्यक्त नही किया है। उन्होने आक्रोश और व्यग्य में रामचन्द्र को भी याद किया है। राम ने अपने को लोक प्रिय राजा कहलाने के अह की प्यास बुझाने के लिए निर्दोष सीता को, अपनी गर्भवती सती निष्कलुष पत्नी को, बलिदान कर दिया। सीता इस बात को, इस अनाचार को, इस दुर्व्यवहार को क्षण मात्र के लिए भी भूल नही सकी। राम जानते थे कि पुर वासियो ने सीता पर मिथ्या आरोप लगाया था। फिर भी सीता को निर्वासित करके उन्होने उस मिथ्या आरोप को प्रश्रय दिया। अपनी लोकप्रियता की वेदी पर गर्भवती सीता की बलि चढा दी। फिर सीता उसी अयोध्या मे, उसी अन्यायी पति के पास कैसे जाती? वह तो उस दिशा की ओर देखना भी नही चाहती। इसीलिए जब वह अयोध्या की ओर लक्ष्मण के साथ कुछ कदम चली तो उन्होने अपनी आखो पर पट्टी लगा ली थी। उनका कहना था, जब राम ने उन्हे इस तरह अपमानित करके निकाल दिया तो फिर अब मोह दिखाने, ममता प्रदर्शित करने, स्नेह का ढिंढोरा पीटने से क्या लाभ? सीता जानती थीं कि राम का रुख पुत्रो के पैदा होने का समाचार पाने से ही बदला है। इससे वह और भी तडप उठी। उन्होने साफ देख लिया कि इसमे भी राम की स्वार्थ भावना काम कर रही है। राम सीता को निर्वासित करने के बाद अपनी वश परम्परा के सम्बन्ध में चिन्तित और दुखी रहे होगे। लव कुश के जन्म के बाद उनकी चिन्ता मिट गयी। राम ने सोचा होगा कि अब इन बच्चों का जन्म तो कुशल पूर्वक हो गया, गद्दी के उत्तराधिकारी पैदा हो गए। इसीलिए अब वह यह मोह ममता दिखा रहे है। इसी प्रकार की बाते सोच कर सीता जी ने कहा, "ये लड़के आखिर उन्हीं के तो कहलायेगे।"

"जौ रे जिए नन्दलाल तो उनही क बजिहैं", मे "क" की जगह "से" हो जाने से इस पूरे वाक्य का अर्थ बदल जाता है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने "बजिहैं" का अर्थ "कहलाएगे" किया है। जिस क्षेत्र मे वह रहते हैं वहाँ यही अर्थ चलता है। भोजपुरी में भी यही अर्थ लिया गया है। भोजपुरी मे यह पक्ति इस प्रकार है—

लखन, जो रे ई जीहैं नन्दलाल त उन्हीं के कहईहै, हो ।

यदि ये लड़के जीते रहेंगे तो उनके (राम के) ही कहलाएंगे ।

परन्तु मैं 'से' पर ही जोर देना चाहता हूँ । इसका कारण यह है कि अब तक सीता जी का जो रुख दिखाई देता है और इस परिस्थिति में जो रुख प्रत्येक स्वाभिमानी, सत्रस्त, पीडित और अरक्षिता महिला का होना चाहिए, वह "कै" की जगह "से" का प्रयोग कर देने से पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाता है ।

"जौरे जिए नन्दलाल तो उनही से बजिहैं", का अर्थ होगा "ये बच्चे यदि जीते रहे तो अवश्य 'उनसे' लडेंगे", अपनी मा के प्रति किए गये अन्याय का बदला लेंगे । जो सीता अयोध्या की ओर फूटी आखो से भी नही देखना चाहती, जो सीता लक्ष्मण के कारण दस पाच कदम अयोध्या की ओर जाती भी हैं तो आखो पर पट्टी बाधकर, वह सीता यह बात भी कह सकती हैं ।

इस लोक गीत मे अब तक हम सीता का जो रूप देखते आए हैं वह गॉव की साधारण, अकृत्रिम, स्वाभाविक बेटी या बहू का है । उसमें लोकोत्तर दैवी गुणो का आरोप बिल्कुल नही किया गया है, उसके बात चीत और व्यवहारो पर बलात् भगवती होने का मुलम्मा नही चढाया गया है । इसीलिए वह क्रोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा आदि से भी प्रेरित होती हैं । वह कह सकती हैं कि हमारे बेटे बडे होने पर जब यह सुनेंगे कि उनकी मा के साथ उनके बाप ने इस प्रकार का अन्याय किया तो वे अवश्य अपने बाप से युद्ध करेंगे और अपनी मा के साथ किए गए अन्याया का बदला लेंगे ।

वे बेटे इसी भावधारा मे पले इसका प्रमाण पूरा लव कुश काण्ड है । इस काण्ड की रचना सम्भवतः इसीलिए की गयी थी कि सीता के साथ जा व्यवहार किया गया और जिस प्रकार वह स्वर्ग चली गई , वह राम से फिर न मिली, न उनसे बाते की और जिस तरह उनके बेटो ने राजा रामचन्द्र की पूरी सेना तथा सारे भाइयो का मुकाबिला रणक्षेत्र मे किया, वे सारी बाते उन्हे कहनी थीं ।

लव कुश काण्ड में, लव कुश ने सबसे पहिले शत्रुघ्न को परास्त किया। जब लक्ष्मण सामने आये तो उन बालकों ने हस कर कहा—

"अनुज बिलोकहु जाय अब, प्रबल महारणधीर", और मोहन अस्त्र से लक्ष्मण को भी बेहोश कर दिया। लक्ष्मण की अपार सेना भाग चली। बचे खुचे लोगों ने राम को बताया—

जेहि विधि कटक सकल सहारा, निज लोचन हम नाथ निहारा।
वय किशोर दोउ बाल अनूपा, तव प्रतिबिम्ब मनहुँ सुर भूपा।

यह सुनकर भरत ने रोकर कहा, "मुझे तो लगता है कि विधाता ने सीता जी को निर्वासित करने का ही फल हमे इस रूप मे दिया है।" राम को ताव आ गया। उन्होने भरत को डाट दिया कि, "तुम लडाई के नाम से ही दिल छोटा करने लगे! जाओ, हाथी, घोडा, रथ आदि सजा कर युद्ध भूमि मे जाओ। यदि तुम्हारी हिम्मत नहीं पडती तो मैं यज्ञ छोडकर जाऊँगा और फिर उन शत्रुओं को देख लूँगा। हो न हो ये दुखदायी बालक रावण के ही बेटे हैं।"

इस प्रकार इतना सब कुछ हो जाने के बाद राम के मन का पाप निकल पडा—

रहै यज्ञ, रिपु देखहु जाई। बालक रावण के दुखदाई॥

और, जब राम अपने ही बेटों को रावण के बेटे कह सकते हैं, जब वह अब भी सीता को अपवित्र कह सकत है तो सीता भी यह कह सकती हैं कि, "मेरे बेटे बडे होकर ऐसे अन्यायी पिता से अपनी मा के अपमान का बदला लेंगे।"

भरत युद्ध करने पहुँचे। उनके साथ हनुमान, सुग्रीव, अगद और विभीषण भी थे। जब हनुमान ने प्यार जताना चाहा तो बालक बोले—

नहिं बल होहि जाहु घर भाई। हतौ न ठौर जान कदराई॥

जब अगद को सामने देखा तो कुश से न रहा गया,

बोले कुश सुन बालि कुमारा।
तुम बल बिदित जान संसारा।

पितहिं मराय मातु पर हेली।
सकल लाज आए तुम पेली।
सो फल लेहु समर मह आजू।
त्यागहु सकल कलक समाजू।

इसके बाद सबके साथ भरत भी युद्ध मे सो रहे। लव ने सबको युद्ध मे सुलाकर अपने भाई कुश को गले लगा लिया। भरत के भूमि मे सोने का समाचार राम को मिला तो वे यज्ञ छोडकर, सक्रोध मैदान मे आए। उन्होने दोनो बालको को देखा और प्यार से पास बुलाकर मा बाप का नाम ग्राम आदि पूछा। इस पर उन बीर बालको ने जवाब दिया—

गहहु अस्त्र, जनि कहहु कहानी।
पूछहु नाव गाव कह जानी।
समर बात बहु अति कदराई।
छाडि सोच अब करहु लराई।

राम ने फिर कहा,

बश नाम बिनु पूछेहु ताता।
हतौ न बाण मनोहर गाता।

तब उन बालको ने बताया,

माता सीय, जनक की जाता।
बाल्मीकि पाल्यौ मुनि ताता।
पिता बश नहि जानहि आजू।
लव कुश नाम सुनहु रघुराजू।

अब राम की मनोदशा कैसी थी? वह क्या कहते? क्या करते? उन बीर बालको का सामना कैसे करते? उन्होने यह कहकर टाल दिया, "हमारे बीर योद्धा आ रहे हैं। वे तुम लोगो से युद्ध करेंगे।" राम ने सभी मूर्छित बीरो को जगा दिया। और फिर विकट सग्राम हुआ। विभीषण के सामने आते ही क्रोध से लाल होकर लव ने कहा—

सुन सठ बधुहि समर जुझाई।
शत्रुहि मिलेउ निपट कदराई।
पिता समान बंधु बड तोरा।
त्रिया तासु तै घर बर जोरा।
पापी, मातु कही कइ बारा।
सो पत्नी, यह धर्म तुम्हारा।
बूड मरहु सागर महं जाई।
मरु गर काटि, अधम अन्यायी।
समर भूमि मम सम्मुख आवा।
लाज होत नहिं गाल बजावा।
आखिनि आगे ते हटि जाई।
नहिं तौ मृत्यु निकट चलि आई।

इसके बाद घमासान सग्राम हुआ और राम के सभी योद्धा मारे गए, या बेहोश हो गये। तब हनुमान को लव ने बाधकर घोडे के पास रख दिया और राम के पास पहुँचे। वहाँ रथ पर राम को बेहोश पडा देखकर, सकोच वश लव वापिस लौट आये। दोनों भाई सारे वस्त्राभूषणों के साथ हनुमान और घोडे को लेकर सीता जी के पास आये। सीता जी ने हनुमान जी को पहिचान लिया और उनको शीघ्र मुक्त करने की आज्ञा दी। परन्तु जब उन्हे मालूम हुआ कि इन लडको ने शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत तथा राम को युद्ध मे सुला दिया तो वह विलाप कर उठीं।

"रिपु दमन, लछिमन, सहित भरतहिं राम समर सोआयऊ।
सुत, कीन्ह कर्म कलक कुल मह, मोहि विधि विधवा करी।
तजि सोच, चन्दन अगर आनहु जाउं पिउ सग अब जरी।"

सीता का विलाप सनकर बाल्मीकि मुनि ने उन्हे आश्वस्त किया और दोनो बच्चा को लेकर वह राम के पास गए। घोडा और रथ को पहिचान कर उन्होंने राम को पुकारा और कहा, "जागो राम, तुम्हारे दोनो बेटे तुम्हारे सामने खडे हैं।"

राम जाग गये। भरत, लक्ष्मण आदि सभी को होश आ गया। राम ने लक्ष्मण को फिर समझाने के लिए सीता के पास भेजा। लक्ष्मण ने सीता जी को फिर समझाने की चेष्टा की, परन्तु उसी समय धरती फट गयी और उसमे से शेष की फणि पर रत्नजटित सिंहासन उभरा। शेष जी आदर के साथ—

जटित मणिन सिंहासनहिं,
सादर सीय चढाय,
भए अलोप पताल मह,
महिमा किमि कहि जाय।

धरती पुत्री सीता धरती की कोख मे वापिस चली गयी। लक्ष्मण मुँह ताकते रह गए।

ऊपर हमने जो कहा और लव कुश काण्ड से जो उदाहरण दिये वह इस "क बजिहैं" के स्थान पर "से बजिहैं" के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए। हमारे इस लोक गीत मे कोई नई बात नही कही गयी। यह भावना परम्परा से ही ली गयी है।

राम ने माघ की नौमी को यज्ञ आरम्भ किया। बिना सीता के यज्ञ कैसे हो? राम ने सीता का वापिस लाने के लिए गुरु बशिष्ठ से अनुनय विनय किया। कहा, "पॉव पडता हूँ। सीता को वापिस लाइए। वह आप ही के मनाने से आने को राजी होगी।"

गुरु बशिष्ठ लक्ष्मण को साथ लेकर बाल्मीकि के आश्रम मे सीता की कुटिया की ओर चले। वहॉ सीता पहिले से ही राह देख रही थी। उन्होने देखा कि लक्ष्मण के साथ गुरु बशिष्ठ चले आ रहे हैं। सीता जी ने पत्तों का दोना बनाया और उसमे गगाजल भरकर गुरु बशिष्ठ के पॉव धोना और चरणोदक माथे पर चढाना शुरू किया। गुरु बशिष्ठ ने सीता की भक्ति भावना से प्रभावित होकर और सुअवसर जानकर कहा,

येतनी अकिलि सीता तोहरे, तु बुधि के आगरि।
किन तुम हरा है गियान, राम बिसरायउ।

"सीता तुम्हारे पास इतनी अक्ल है। तुम तो बुद्धि का भाण्डार हो। लेकिन समझ मे नही आता कि किसने तुम्हारा ज्ञान हर लिया कि तुमने राम को भुला दिया ?"

सीता जी को उत्तर देते देर न लगी। अभी तक गुरु बशिष्ठ ने सीता जी का केवल अत्यन्त विनय पूर्ण रूप देखा था। परन्तु घायल सिहनी का रूप उन्हे देखना बाकी था। मर्माहत नारी जब फुफकारती है तो बडे बडो का कलेजा दहल जाता है। सीता के मन मे गहरी वेदना थी। वह तडप उठी। उन्हे क्षण भर मे अपनी अग्नि-परीक्षा की याद आयी, अपनी गर्भावस्था की याद आयी, राम का अन्याय याद आया, उनका स्वाभिमान जागा और अपने सारे क्रोध, पीडा और चोट को सयम के आवरण मे ढक कर उन्होंने कहा—

सबकै हाल गुरु जानौ, अजान बनि पूछौ।
गुरु, असके राम मोहिं डाहिन कि कैसे चित मिलिहै।
अगिया मे राम मोहिं डारेनि लाइ भुजि काढेनि।
गुरु, गरुवे गरभ ते निकारेनि त कैसे चित मिलिहै।
तुम्हरा कहा गुरु करबै, परग दुई चलबै।
गुरु अब न अजोधियै जाब, औ विधि न मिलावै।

"गुरुदेव, आप सबका हाल जानते हैं। आप मेरे हृदय की पीडा को समझते हैं। आपको मेरे क्रोध का अन्दाज़ है। आप जानते है कि राम ने मेरा अकारण अपमान किया है, फिर भी आप अनजान बनकर पूछ रहे है ! गुरुवर, राम ने मुझे इतना अधिक सताया है, तडपाया है, जलाया है कि अब उनसे मेरा चित्त कदापि नही मिल सकता। राम ने मुझे आग मे डाला। मुझे उसमे अच्छी तरह भूना और तब उसमे से निकाला। फिर भी उन्होने मेरे दुखो का विचार नही किया। दूसरी बार जब उन्होंने मुझे निकाला तो मैं गर्भवती थी। परन्तु उनको मेरे ऊपर जरा भी दया नही आयी। अब आप ही बताइए मेरा उनका चित्त कैसे मिलेगा ? हम दोनों के बीच जो गाँठ पड गयी है, वह कैसे खुलेगी ? फिर भी गुरुदेव,

मे आपके आदेश का पालन करू गी। मैं आप के साथ दो कदम अयोध्या की ओर चलूँगी जिससे आप का मान रह जाय। परन्तु गुरुवर, मेरा यह निश्चय है कि अब मैं अयोध्या न जाऊँगी। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे राम से कभी भी न मिलावे।"

सीता जी का स्पष्ट और दृढ उत्तर सुनकर गुरुदेव बशिष्ठ चुप हो गए। उनके मुँह से बोल नही निकला। वह चुपचाप अयोध्या वापिस चले गये।

अयोध्या पहुँचकर गुरु बशिष्ठ ने सारा समाचार राम को सुनाया। राम समझ गए सीता ऐसे आने वाली नही है। उन्होने स्वय जाकर सीता को बन से वापिस लाने का निश्चय किया। कहारो को आज्ञा मिली, "चन्दन की पालकी सजाओ। मैं सीता को उसी पालकी मे बैठाकर अयोध्या वापिस लाऊँगा।" कहारा ने पालकी सजायी और अयोध्या के राजा राम चन्द्र बनवासिनी सीता को साग्रह वापिस बुलाने के लिये चले। उन्होने एक बन पार किया। फिर दूसरा बन पार किया। फिर वृन्दाबन पहुँचे। वहाँ पर उन्होने मृगया के चक्कर मे पडे, आखेट करते नही, गुल्ली डण्डा खेलते दो बालको को देखा। उन दोनो बालको का सौन्दर्य देखकर रामचन्द्र मोहित हो गये। राम उन बालको के पास गए और उनसे पूछा,

केकर तू पुतवा नतियवा, केकर तू भतिजवा हो।
लरिको, कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुडवायु हो।

"मेरे प्यारे बच्चो, तुम किसके पुत्र हो, किसके नाती हो, तुम किसके भतीजे हो, तुमने किस माता की कोख मे जनम लेकर उसे शीतलता प्रदान की है?"

उन भोले भाले बनवासी बालको ने तपाक से उत्तर दिया,

हम राजा जनक के हैं नतिया, सीता के दुलरुवा हो।
बाप क नौवा न जानौ, लखन के भतिजवा हो।

"हम राजा जनक के नाती हैं, सीता माता के हम दुलारे बैटे हैं। हम बाप का नाम नही जानते, हाँ लक्ष्मण के भतीजे हम अवश्य हैं।"

राम के ऊपर जैसे सहसा वज्रपात हो गया हो। उनके होश गुम हो गए। इन बच्चो की बाते कुछ सुनी कुछ सुन भी न सके कि उनकी आखो से तरतर आँसू गिरने लगे। आँसू गिरते जाते थे और राम उन्हे अपने पटुका से पोछते जाते थे। परन्तु आँसू रुकने का नाम न लेते।

किसी तरह राम वहाँ से आगे बढे और धीरे धीरे बाल्मीकि ऋषि के आश्रम के पास पहुँच गए। वहाँ कदम का छायादार वृक्ष बडा सुन्दर लग रहा था। वहा पहुँच कर राम ने देखा,

तेहिं तर बैठा सीतल रानी, केसियन झुरवई।

उसी कदम के शीतल छाह मे बैठकर सीता जी अपने बाल सुखा रही थी कि उनको किसी की आहट मिली। उन्होने पीछे उलट कर देखा रामचन्द्र खडे दिखाई दिये। सीता ने चुपचाप अपना सिर नीचे कर लिया।

राम ने अपने को सम्भाल कर कहा—

रानी, छोडि देव जियका विरोग, अजोधिया बसावउ।
सीता, तोरे बिन जग अँधियार, त जीवन अकारथ।

"रानी तुम अपने मन की ग्लानि, सताप, पीडा आदि को भूल जाओ और चलकर उजडी उदास अयोध्या को फिर से बसा दो, उसे श्री सम्पन्न कर दो। सच सीता, तुम्हारे बिना तो मुझे यह ससार अँधेरा मालूम होता है, यह जीवन निरर्थक और व्यर्थ मालूम पडता है। तुम चाहो तो मेरे जीवन मे फिर से प्रकाश आ जाय, उसे सार्थकता प्राप्त हो जाय। चलो सीता, अयोध्या वापिस चलो।"

इसके बाद जो हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह मौन परन्तु अत्यन्त उद्घोषित, पाषाणवत किन्तु अत्यन्य कोमल, शात किन्तु आन्दोलित कर देने वाली शक्तियो से परिपूर्ण एक विचित्र, अप्रत्याशित व्यापार था।

सीता अँखिया में भरला विरोग एक टक देखिन।
सीता धरती मे गइलीं समाय कुछौ नही बोलिन।

सयम तथा मर्यादा की मूर्ति सीता की आखों मे उनके हृदय की

सारी वेदना, सारी पीडा, सारी व्यथा उमड आयी। परित्यक्तता, बहिष्कृता, उपेक्षिता, निन्दिता सीता की सारी स्मृतिया जाग उठा, गौरी पूजन के समय का प्रथम परिचय, धनुष भग का दृश्य, बन गमन का समय, पचवटी का सहवास, अशोक बाटिका का जीवन, अग्नि परीक्षा की घटना, राज्याभिषेक, गर्भाधान, द्वितीय बार वनगमन, आश्रम मे बनवासिनी देवियो की सहायता से पुत्र जन्म, लक्ष्मण तथा वशिष्ठ का अयोध्या वापिस जाने के लिए अनुरोध और अन्त मे, इस हालत मे, राम का स्वय आकर अयोध्या चलने के लिए कहना, सारी रोमाचकारी, गर्वीली, उन्मादिनी, फिर भी दुखी बनाने वाली, रुलाने वाली, आक्रोश उत्पन्न करने वाली स्मृतियाँ और अन्त में राम का आगमन, ओह, यह सब क्या हुआ? यह सब क्यो हो रहा है? निर्दोष, स्वाभिमान की पुतली, गर्वीली भारतीय नारी की सारी महिमा और गौरव का प्रतीक सीता, कुछ न बोल सकी, कुछ न बोला। बस उन्होने एक बार ध्यान से, आँखें गडाकर, एक टक, राम को देखा और धरती मे समा गयी।

'उत्तर रामचरित' नाटक की सीता ने तो धरती से प्रार्थना भी की थी "णेदु म अत्तणो अगेसु विलअ अम्बा।" परन्तु इस लोक गीत की सीता ने तो इतना भी न कहा। वह चुप चाप धरती मे समा गयी।

सीता चुप रही, कुछ नही बोली? क्यों? इसका उत्तर वही नारी हृदय दे सकता है जिसकी चुनौती, जिसकी करुणा, जिसकी वेदना इतने दिनो से इन पक्तियो मे व्यक्त होती आयी है। अतिशय क्रोध, अतिशय करुणा, अतिशय वेदना के समय वाणी मूक हो जाती हे, आँखें सूख जाती हैं, सारा शरीर स्तम्भित, अडोल हो जाता है। सीता की मानसिक अवस्था ऐसी ही थी। उनकी मूकता मे पाश्चात्ताप था, उपेक्षा थी, क्रोध था, प्रतिहिंसा थी, करुणा थी, पीडा थो, स्वाभिमान था, मर्यादा थी, सयम था, मनस्विता थी, स्नेह था, त्याग था, और, सर्वोपरि निर्दोष नारी के आत्म-गौरव की चुनौती थी।

सीता अखियाँ मे भरली विरोग, एक टक देखिन ।
सीता धरती मे गइली समाय, कुछौ नहि बोलिन ।

इन पक्तियो मे लोक गीतकार ने उस स्थिति विशेष मे सीता जी की मानसिक अवस्था का जो चित्र खीच दिया है वैसा चित्र अन्यत्र दुर्लभ है । बाल्मीकि की सीता ने सभा के बीच अपनी सफाई दी थी, अपने को निर्दोष कहा था । इसके बाद उन्होने धरती माता से कहा था "विवर दातुमर्हति ।" 'उत्तर रामचरित' की सीता ने अपनी कोई सफाई न दी । जब गगा और पृथ्वी अपनी ओर से सीता की सफाई देने लगी तो सीता को बडी उलझन हुई । उन्हे बडी ग्लानि हुई । उन्होने पृथ्वी माता से कहा, "णेदु म अत्तणो अगेसु विलअ अम्बा । ण सहिस्स ईरिस जीअलोअस्स परिभव अणुभविदुम् (मा मुझे अपने अगो मे छिपा ले । मृत्यु लोक मे मैं इस प्रकार का अपमान सहन करने मे असमर्थ हूँ) । इसके बाद लव कुश के जन्म के उपरान्त सीता धरती की गोद मे समा गयी ।

धरती की गोद मे सीता जा सिंहासन पर बैठ कर गयी । बाल्मीकि की सीता आखिकार अयोध्या की महारानी थी । धरती मे समाने के समय भी सिहासन पर ही जाना उनके लिये जरूरी था । 'उत्तर राम चरित' की सीता भी रसातल को गयी । परन्तु गगा का जल खौलने लगा और आकाशवाणी हुई, "हे विश्व वन्द्ये अरुन्धती, हम दोना गगा और पृथ्वी को सतुष्ट करो । तुम्हारी पुण्यव्रता बहू को हम तुम्हें सौपती हैं ।"

इसके बाद सीता जी रगमच पर आयी और अरुन्धती की आज्ञा से उन्हाने राम को, उनका बदन छूकर, जाग्रत कर दिया । अरुन्धती द्वारा फिर यह कहे जाने पर कि "सीता पवित्र हैं, गगा और पृथ्वी सीता की पवित्रता की साक्षी हैं, राम ने सीता को स्वीकार कर लिया । परन्तु उस समय भी सीता ने स्वगत ही कहा, 'क्या आर्य पुत्र मेरे दुख को दूर करना जानते हैं ?" इन शब्दो मे सीता ने अपनी ग्लानि और व्यथा के साथ ही छिपे आक्रोश और एक हद तक अविश्वास को भी प्रकट किया है ।

लवकुश काण्ड मे भी सीता ठाट बाट मे धरती की गोद में जाती हैं,

जटित मणिन सिंहासनहिं,
सादर सीय चढाय।
भए अलोप पताल महं,
महिमा किमि कहि जाय।

परन्तु लोक गीत की सीता किसी प्रकार को साक्षी नही देती, अपनी सफाई मे कुछ नही कहना चाहती। वह राम के सामने दीन हीन बनना, शरणागत होना, अपराध स्वीकार करना या किसी प्रकार का समझौता करना नही चाहती। वह चुप चाप राम को एक बार देखती है, फिर बिना कुछ कहे सुने धरती मे समा जाती है। वह धरती माता से विवर प्रदान करने की विनती भी नही करती। सीता को विश्वास है कि उनकी माँ उनकी व्यथा को पूरी तरह समझती है। वह माँ भी क्या जो अपनी बेटी की मर्म-व्यथा को न समझ सके? वह माँ भी क्या जिससे बेटी को विवर देने, गोद मे लेने के लिये, प्रार्थना करनी पडे। सीता धरती की बेटी थी। धरती स्वय इस समय करुणा विगलित होकर अपनी बेटी के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अगर फट जाती हैं तो यह स्वाभाविक ही है। यदि ऐसा न होता तो पूरी बात हास्यास्पद हो जाती।

श्री बाल्मीकि रामायण, उत्तर रामचरित नाटक, लवकुश काण्ड, तथा लोक गीत की सीता के चरित्र मे जो अन्तर है, वह हमारे सामने है। इनमे कौन सा चरित्र अस्वाभाविक है, कौन सा स्वाभाविक है, कौन सा चरित्र जीवन की सच्चाई के निकट है, कौन दूर है, किस चरित्र का रूप हमे अपने परिवारो की लडकियो मे देखने को मिलता है, और अन्त मे कौन सा चरित्र हमारे मर्म को सबसे अधिक छूता है, झझोडता है, यह स्पष्ट है।

दूसरी बात यह है कि चारो उदाहरणों मे से एक मे भी सीता राम राम के पास जाकर उनसे अपनी सफाई नही देती। राम ने स्वय सीता को

बनवास देते समय उनसे से कोई पूछ ताछ नही की थी। पत्नी के रूप मे, जोवन संगिनी के रूप मे, राम ने सीता का कोई मूल्य नही माना था। उन्होने जो कुछ किया राजा और शासक की हैसियत से किया। अपने मन मे राम चाहे जो कुछ सोचते रहे हो, सीता को चाहे जितना पवित्र मानते रहे हो, सीता के लिए चाहे जितना भी करुणा विगलित और प्रेमातुर हुए हो, परन्तु व्यवहार मे उन्होने एक कठोर शासक की ही भाँति काम किया। जनापवाद की उनको चिन्ता थी। नागरिको के मत की अवहेलना वह नही कर सके। इसके लिए राम आदर्श राजा, प्रजा के मत का आदर करने वाले शासक के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। परन्तु राजा राम ने रानी सीता के व्यक्तित्व का आदर नही किया। रानी की बात छोडिये। उन्होने सीता को वह अवसर भी नही दिया जो साधारण नागरिक अभियुक्त को दिया जाता है। सीता को अपनी बात कह पाने का अधिकार न देकर श्री राम ने लोकतत्र की मर्यादा की रक्षा की, यह कैसे मान लिया जाय ? इसलिये यदि श्री बाल्मीकि रामायण, उत्तर रामचरित नाटक और लवकुश काण्ड की सीता ने राम से इस सम्बन्ध मे कोई बात नही की, जो कुछ कहा सबके सामने, सबको अपनी ओर अभिमुख करके कहा तो कोई अस्वाभाविक बात न थी। सीता जी को निजी रूप से जो कहना था वह तो उत्तर रामचरित नाटक मे उन्होने स्वगत ही कह दिया।

जब बाल्मीकि, भवभूति और तुलसीदास (यद्यपि लवकुश काण्ड को अधिकतर विद्वान प्रक्षिप्त मानते हैं) की सीता ने राम के सामने अपनी सफाई न दी तो लोकगीतकार ने ऐसा करके कोई अपराध नही किया। बल्कि सीता को बिल्कुल मौन रखकर सीता के महान चरित्र का चार चाँद लगा दिए। मनस्विनी सीता का यह रूप हमारी परम्परा मे सुरक्षित है, यह लोक मानस की जागरुकता का ही प्रमाण है।

सीता के मुख से "उनही क बजिहैं" अथवा "उनहीं से बजिहैं" कहलवाकर भी लोक गीतकार ने कोई नई अथवा अस्वाभाविक बात नहीं की। यह भी परम्परा से ही पुष्ट बात थी। जितने रूप अब तक सीता जी

है जो इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ साधारणतया चित्रकला से प्रेम रखती थी। ननद भौजाई की ईर्ष्या द्वेष आदि से सभी परिचित हैं। यहाँ राम की बहिन के इस स्वभाव का परिचय हमे मिला। देवर भाभी का प्रेम भी हमारे पारिवारिक जीवन का महत्वपूर्ण अग रहा है। भ्रातृभक्त लक्ष्मण ने राम का उस समय प्रतिवाद किया जब राम ने सीता को निकालने का आदेश दिया। जब राम ने अपना आदेश फिर दोहराया तो लक्ष्मण अवज्ञा न कर सके। जगल मे निरीह, परवश, असहाय सीता को तपस्विनियो का सहज स्नेह और सहानुभूति प्राप्त हुई। सच्चे स्नेह और सहज करुणा और सक्रिय सहयोग का यह अनुपम उदाहरण है। अबला मा की दयनीय दशा जब कि उसके बच्चा को ऐसी सासत मे जन्म लेना पडे और मा को बन की लकडी जलाकर उनका मुँह देखना पडे, किसका हृदय न पिघला देगी? पुत्र जन्म की खुशी, परन्तु "पिये न बतायउ" का आदेश, प्रसन्नता और पाश्चात्ताप का यह सगम, राम की आखो से तरर तरर आँसुओ का चूना कितना मार्मिक है! "पिये न बतायउ" कह कर सीता ने जिस स्वाभिमान और आत्म सम्मान का परिचय दिया उससे प्रत्येक नारी का सिर ऊँचा उठ जाएगा। लक्ष्मण के साथ आख पर पट्टी बाधकर कुछ दूर अयोध्या की ओर जाना, फिर आश्रम की ओर वापिस हो जाना, यह कहना कि यदि ये नन्दलाल जीते रहे तो उन्ही के कहलाएगे, अथवा उनसे अपनी मा के अपमान का बदला लेगे, गुरु बशिष्ठ के समझाने पर सीता का प्रथम अग्नि परीक्षा की याद दिलाना, फिर गर्भावस्था के समय अकारण निष्कासित होने पर यह कहना कि "त कैसे चित मिलिहैं", राम द्वारा परिचय पूछने पर लव कुश का यह उत्तर कि "बाप क नौवा न जानों" और अन्त मे राम के यह कहने पर कि "तुम्हारे बिना जीवन अकारथ है, जग अधियारा है, इसलिए चलकर अयोध्या बसाओ" सीता का आखो में विरोग भरकर राम को एक टक देखना, फिर बिना कुछ बोले, बिना कुछ कहे सुने धरती मे समा जाना, ये सब बाते ऐसी हैं जिनपर प्रत्येक स्वाभिमानी नारी को गौरव और गर्व अनुभव होगा, सच्चा सतोष प्राप्त होगा।

हमने ऊपर धरती की बेटी ग्रामबधू सीता के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली अति प्रचलित लोक गीत की व्याख्या की। इस गीत मे सीता तो साधारण ग्रामीण घराने की बहू के रूप मे चित्रित की गई हैं परन्तु राम को साधारण मानव के रूप मे चित्रित करते हुए भी पति के रूप मे उनके कार्यकलाप और व्यवहारो पर उतना विशद प्रकाश नही पड़ा है। नीचे हम श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'बेला फूले आधी रात' से एक उड़िया लोक गीत का एक अत्यन्त रोचक अश प्रस्तुत कर रहे हैं। इस गीत मे राम और सीता दोनो सहज मानव प्राणी, अति सरल पति पत्नी के रूप मे हमारे सामने आते हैं।

सीताया जेयूँथीरे गुयागुँडी राम सेईथीरे पान—
सीताया जेयूँथीरे टोकई कुँठई राम सेई थीरे धान—

—'जहाँ सीता सुपारी है, वहाँ राम पान हैं, जहाँ सीता टोकरी हैं, वहाँ राम धान हैं।'

राम हेला जल सीता हेला लहुडी
राम हेला मेघ सीता हेला घडघडी
राम हेला दही सीता हेला लहुणी
राम हेला घर सीता हेला घरणी

—'राम जल हो गये और सीता जल-तरग, राम बादल बन गये और सीता बिजली की गरज बन गई,

राम दही बन गये और सीता मक्खन, राम घर बन गये और सीता घरवाली।'

उधर सीता जी का वक्तव्य सुनिए—

मुकता मुकता बोलति मुकता
केऊंठी मुकता के जाने
जगत समुका रघुमणि मुकता
ए परि मुकता के जाने

जीवरा बिकि यू कीराीली मुकता
ए पर्ि बिका किरा के जाने

—'मोती मोती तो सब कोई कहता है पर मोती है कहाँ, इसे कौन जानता है ? जगत सीप है और रघुमणि राम मोती हैं। ऐसे मोती की किसे खबर है ? मैंने अपना जीवन बेचकर यह मोती खरीदा है। ऐसी बिक्री और खरीद और कौन जानता है ?'

पत्नी को पति से जो प्रेम हो सकता है, उसकी यहा पराकाष्ठा है ! सीता जी के मुख से राम के प्रति प्रेम का चित्रण करने मे ग्रामीण उत्कल का लोक-कवि बहुत सफल हुआ है। राम की निर्धनता समीप से देखिये—

छिडा लूगा पिंधी सीताया ठाकुराणी
दौदरा गिन्ना रे भात खाई छंति रघुमणी, महाप्रभु से !
सीताया झुरुछति नुया लूगा पाइ
लइखन झुरुछति पखाल भात पाई, महाप्रभु से !
सीताया झुरुछति नाक गुणा पाई
राम बुलूछति नडिया आणिवा पाई, महाप्रभु से !
कादी कादी सीता खीर दुहुछति
मा घर कथा भले पकाऊ छंति, महाप्रभु से !

—'सीता ठाकुराणी फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए हैं, राम टूटे बर्तन मे भात खा रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता नये वस्त्रों के लिए तरस रही हैं, लक्ष्मण पखाल भात के लिए तरस रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता जी नाक गुणा[1] के लिए तरस रही हैं, राम नारियल लाने के लिए भटक रहे हैं, हे महाप्रभु ! सीता जी आँख में आँसू भरकर दूध दुह रही हैं, वे माता के घर को यादकर रही हैं, हे महाप्रभु !'

राम खजूर का रस पीने जा रहे हैं—

---

१. नाक का आभूषण जिसे उड़िया स्त्रियाँ बड़े चाव से पहिनती है।

छिंडा लूँगा पिंधी राम जाऊथीले
खजूरी गच्छर रस काढीवाकु मो बाईधन
दूरु देखी सीता अईला धाइ
धरि पकाईला राम र हस्तकु मो बाईधन
कि पाई धाईयो खजूरी गच्छ कु
लइखन ईहा देखी कि कहिबे तुम्भकु

—'फटे-पुराने वस्त्र पहने राम जा रहे थे खजूर वृक्ष का रस निकालने, ओ मेरे बाईधन। दूर से देखकर सीता जी दौड़ती हुई आई, राम का हाथ पकड़ लिया। खजूर के वृक्ष की ओर क्यो जा रहे हो? लक्ष्मण देखेगा तो क्या कहेगा?'

उडीसा मे खजूर के वृक्ष बहुत होते हैं। खजूर का रस मदिरा के रूप मे पिया जाता है। प्राय पुरुष ही इसका सेवन करते हैं, स्त्रियाँ नही।

देखिए लक्ष्मण जी चटनी के कितने शौकीन हैं—

अंब कसी तोली लईखन आणीले
सीताया ठाकुराणी चटनी बाटीले
रघुमणि राम खाईछति हलिया हे
टिकिए चटनी मोते देयो आणी हो सीताया ठाकुराणा
चटणी गल सरी लईखन कादूछंति जे।

—'लक्ष्मण कच्चे आम लाये और सीता ने चटनी पीसी। हे किसान, सारी की सारी चटनी राम खा गये, थोडी सी चटनी मुझे भी दे दो। चटनी खतम हो गई, लक्ष्मण जी रो रहे हैं।'

कुछ गीतों मे राम के घर में गाएँ दिखाई गई हैं। यदि सचमुच उन दिनो घर-घर गाएँ होती थी तो राम के घर भी अवश्य रही होगीं। यदि केवल इतना ही कह दिया जाता कि राम के घर में गाएँ थी तो कदाचित अधिक रस न आता। यहाँ लक्ष्मण की गाय अधिक दूध देती है। राम की गाय का दूध सूख जाता है। लक्ष्मण सीता जी के लिए कपिला गाय लाते हैं। सीता जी राम के लिए तो चदन की लकडी पर दूध गरम करती हैं

परन्तु लक्ष्मण को नारियल देकर ही उनका मुँह मीठा करने का यत्न करती हैं। इस प्रकार के उतार-चढाव की कल्पना हमे राम के घर मे ले जाती है और हम राम की छोटी से छोटी बात से परिचित हो जाते है—

राम लईखन दुई गोटी भाई
दूई भाई कीणीले जे कपिला गाई।
लईखनक गाई बेशी खीर देला
रामक गाई-र खीर सूखी गला।
कादूछति सीता ठाकुराणी हे—हलिया . .
कि बुद्धि करिबे से . ।
आणी ले लईखन अयुध्यापुरी कु
गोटिये कपिला गाई, मो राम रे।
ताहा देखी- सीता राम कु कहिले,
आणीवाकु से परि गाई, मो राम रे।
से परि गाई कुयाडे न पाइले
खोजी खोजी राम होईलन बाई, मो राम रे।
एहा जाणी सीता कादीवाकु लागीले,
झुरु बस्सी थाई भात पकाई, मो राम रे।
एहा जाणी लईखन सीताकु कहिले
काही कि कादीछो छार कथा पाह, मो राम रे।
रामक पाई ए देह धरिली
तुम्भरी पाई आणीछी ए गाई, मो राम रे।

—'राम और लक्ष्मण दो भाई थे। दोनों भाइयो ने दो कपिला गाएँ खरीदीं। लक्ष्मण की गाय अधिक दूध देती रही। राम की गाय का दूध सूख गया। हे किसान, सीता ठकुराणी रो रही हैं, बेचारी क्या करे?'

'लक्ष्मण अयोध्या से लाए एक कपिला गाय, मेरे राम। उसे देखकर सीता ने राम से कहा—मेरे लिए भी ऐसी ही एक गाय ला दो, मेरे राम।

वैसी गाय कही भी न मिली। राम खोज खाज कर थक गए, मेरे राम। यह जानकर सीता जी रोने लगी, भात फेंक कर उदास हो गई, मेरे राम।

'यह जानकर लक्ष्मण ने सीता से कहा—जरा सी बात के लिये क्यो रोती हो? मने यह शरीर राम की सेवा के लिए धारण किया है, तुम्हारे लिये ही मैं यह गाय लाया हूँ।'

एक और गीत मे लक्ष्मण का चित्र अंकित किया गया है—

मालि्या चन्दन आणी सीता तीया कले
वेग कपिला गई-र खीर तताईले, महाप्रभु से।
भरि करि खीर सुनार गिन्ना रे
रघुमणि रामक हस्त-रे देले, महाप्रभु से।
भूक रे कटाऊथीले लईखन कुडिया
सीताया देखी आसी ताकु देले नडिया, महाप्रभु से।
अभागा लईखन आकुले कादीले
एहा छाडी आऊ किछी करि न पारीले, महाप्रभु से।

—'मलय चन्दन की लकडी लाकर सीता जी ने आग जलाई जल्दी-जल्दी कपिला गाय का दूध गरम किया। सोने की कटोरी मे दूध भरकर उसने रघुमणि राम के हाथ मे दिया। भूखा लक्ष्मण कुटिया मे झाड़ू दे रहा था। सीता ने उसे देखा तो उसे नारियल दे दिया। अभागा लक्ष्मण व्याकुल होकर रोने लगा। वह और कर ही क्या सकता था?'

राम-बनवास के उडिया लोकगीत भारतीय लोक-साहित्य मे विशेष स्थान रखते हैं। उडिया भाषा की माधुरी और उत्कल प्रान्त के स्वप्नों ने मिलकर ऐसे सुन्दर काव्य की सृष्टि की है जिस पर कोई भी भाषा गर्व कर सकती है।'

इस मधुर गीत की समता सूरदास के बालकृष्ण से सम्बन्धित गीतो से ही की जा सकती है। 'ठुमुकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनिया' के बावजूद हिन्दी के शिष्ट साहित्य मे अथवा रामायण मे ही राम लक्ष्मण के जीवन के ऐसे बाल सुलभ चित्र हमे कहा मिलते हैं? यह तो लोकगीतकार के

सरल मन की ही विशेषता है कि उसमे उतर कर राम लक्ष्मण सचमुच हमारे घर के भोले भाले बच्चे बन जाते हैं और सीता महारानी भी हमारे घर की पतोहू और भाभी जैसा प्रकृत, स्वाभाविक, सहज और मधुर व्यवहार करने लगती हैं। राम लक्ष्मण सीता से सम्बन्धित इस तरह के मनोमोहक गीत हमे सभी बोलियो मे मिल जाते है। ये लोक गीत राम लक्ष्मण सीता को हमारे परिवार का अग बना देते हैं और हम उनके आसुओ के साथ रोने और उनकी ठठोलियो के साथ हँसने लगते हैं। इसके लिये हम अपने इन लोक गीतकारों के सत्यमेव कृतज्ञ हैं।

विवशता की चीत्कार

सत्यार्थी जी के 'बेला फूले आधीरात' मे पठानो का एक गीत है जो करुण रस से परिपूर्ण है। इस गीत मे एक अछूती ममता और एक सरल प्रेम उस व्यक्ति के लिये प्रकट किया गया है जिसे बादशाह ने सूली पर चढाने का हुक्म दिया है। गीत यह है—

बादशाह ब ललै खानई द से खलरु वाई
चे प दारे स्वरावीना
खानई मिरजा अकबरी
प कद बाला प हुस्न पूरा खानई
जान त मग़रुरा द गुलाम गुलाम दे जमा खानई
बादशा ब ललै
यवा द खुतन द नाफे बुई दे खानई
या अम्बरिन जुल्फे जानान स्पडदली दिना ख़ानई
बादशाह ब ललै ..
स्तरगे ब वले उख के नकडी खानई
चे प मौसम द खुशाली रागल गमुना खानई
बादशाह ब ललै
आसमान दे कोर त पके न्वरे खानई
ज़ न्वर परस्त गुल पशान मख दरपसे व्डमा खानई

सामाजिक सच्चाई

एक गढवाली लोकगीत है। इस गीत मे, बिल्कुल नये ढग से, हमारे समाज की स्थिति का चित्रण किया गया है। गीत इस प्रकार है—

अइजा अग्नी, अइजा अग्नी, मेरा मातृलोक मेरा मातृलोक।
त्वै बिना अग्नी ब्रह्मा भूखो रैगे, ब्रह्मा भूखो रैगे।
कनकै की औलो, कसुकै कि औलो, तेरा मातृ लोक,
तेरा मातृ लोक, ये बुरो अत्याचार, ये बडो अत्याचार।
क्या होलो अग्नी बुरो अत्याचार, क्या होलो अग्नी बड़ो अत्याचार।
मेरा मातृ लोक, बुरो अत्याचार, मेरा मातृलोक बडो अत्याचार।
ब्रह्मा ह्वै की, ब्रह्मा ह्वै की झूठ बोलला, ये अत्याचार ते क्या अत्याचार।
माया धीया, माया धीया ऊजो पैछो, बेटा बाबू लेखो जोखो।
बुआरी ह्वै की सासु अढाली, नैनो होई की बाबू पढा लो।
ये अत्याचार ते क्या बडो अत्याचार, कनुकै की औलो।
कनुकै की औलो, तेरा मातृ लोक ये बुरो अत्याचार,
ये बडो अत्याचार।
अइजा अग्नी, अइजा अग्नी मेरा मातृलोक, मेरा मातृ लोक।

इस गीत मे अग्निदेव से प्रार्थना की गयी है कि वे इस लोक मे आवे क्योंकि ब्रह्मदेव यहाँ भूखे हैं। अग्निदेव के बिना वे कैसे और क्या खाते? अग्निदेव उत्तर देते हैं कि "किस प्रकार मैं तुम्हारे पास तुम्हारे मातृ-लोक मे आऊँ? तुम्हारे मातृलोक मे तो तो बहुत बुरे बुरे और बहुत बडे बडे अत्याचार होते हैं। ऐसे पापों और अत्याचारो से भरे लोक में मैं कैसे आ सकता हूँ?"

प्रार्थी विनम्र होकर पूछता है, "देव, आखिर बताइये तो हमारे लोक मे कौन से ऐसे बुरे बुरे और बडे बडे अत्याचार होते हैं, कौन से ऐसे पाप होते हैं जिनके कारण आप हमारे मातृलोक मे आने से हिचकते हैं?"

अग्निदेव—"तुम्हारे मातृलोक में मा बेटी मे 'ऊजापैछा' होता है, बाप बेटे में लेन देन होता है, लिखा पढी होती है। बहू अपनी सास को

सीख देती है। बच्चा अपने बाप को पढाता है, ज्ञान सिखाता है। इससे बढकर और कौन अत्याचार, कौन पाप हो सकता है? बताओ, ऐसी हालत मे मे तुम्हारे मातृ लोक मे कैसे आऊँ। वहॉ तो इतने बडे बडे अत्याचार होते है?"

"हे अग्निदेव, मेरे मातृ लोक मे आओ, आओ।"

यह एक मगल गीत है जिसमे अग्नि का आवाहन किया गया है। इस गीत मे अग्नि देव से प्रार्थना की गयी है कि वह इस भूमि पर उतरे। जिस क्षेत्र का यह गीत है वह पहाडी क्षेत्र है। वहॉ अग्नि का महत्व अधिक है। वैसे हमारे देश की सस्कृति मे साधारणतया अग्नि का महत्व सदैव माना गया है। वैदिक ऋचाओ से आज तक अग्निदेव की उपासना किसी न किसी रूप मे होती ही रही है। इस गीत मे भी इसी परम्परा के अनुसार अग्निदेव का आवाहन किया गया है। उनसे प्रार्थना की गयी है कि वह इस मातृ लोक मे आवे। यह मातृलोक क्या है? "माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या" तो अथर्व वेद की ऋचा है। इस पृथ्वी को माता के समान ही हम सदा से मानते रहे हैं। धरती हमारी मा है। हम उसके बेटे बेटियॉ हैं। जहॉ हम पैदा हुए, पाले पोसे गये, जिसकी धूल मिट्टी मे खेलकर हम बडे हुए, जिसके कण कण मे हमारा प्राण बसता है, जिसके अणु अणु से हमे प्रेम है, जिसके लिये हमने सदा अपनी जान की बाजी लगायी है, वही हमारी मातृभूमि है, वही हमारा मातृलोक है।

गढवाल प्रदेश का लोकगीतकार सदियो से, सहस्रों वर्षों से, अनन्तकाल से, अग्नि की पूजा करता आया है, उसका आवाहन करता आया है। उसे अपने मातृलोक से प्रेम है। वह उसी के लिए अग्निदेव को निमत्रित कर रहा है।

मगर अग्निदेव के न आने का कारण, इस निमन्त्रण को न स्वीकार करने का कारण भी ध्यान देने योग्य है। जिस लोक मे मा बेटी अथवा बाप बेटे का सम्बन्ध स्नेह का आधार छोड चुका हो, जिस समाज का इतना पतन हो चुका हो कि इस पवित्र रिश्ते मे भी लेन देन, लेखा जोखा, नाप तोल चलने

लगा हो, जहा धन और अर्थ ने स्नेह, प्रेम, करुणा, ममता का स्थान ले लिया हो, जहा जीवन का दृष्टिकोण इतना घृणित, इतना अधिक भौतिकवादी, इतना अधिक व्यापारिक हो चुका हो, वहाँ अग्निदेव का, पवित्रता का, पवित्रता के प्रतीक, प्रकाश के पुज अग्निदेव का अविर्भाव अथवा आगमन कैसे सम्भव हो सकता है ?

इस गीत मे जो बात कही गयी है वह हमारे सामने इस समाज का नगा चित्र ही उपस्थित नही करती, बल्कि इस बात की प्रेरणा भी देती है कि हम इस समाज को मूलत बदले और उसे उसका प्रकृत, स्वस्थ और स्वाभाविक रूप पुन प्रदान करे।

इस सिलसिले मे एक लोकगीत की ओर और ध्यान जाता है,

डिहवा, डिहवा, पुकारे डिहवरवा,
डीह सुनेला, हा, निरभेद।
तोहरा गरभ चढि अइली रे डिहवा,
पहिल बोलिया न राखे मोर।

इस गीत मे ग्राम देवता पुकार कर कह रहा है—"अरे ग्राम, ओ ग्राम, उठो जागो," पर ग्राम तो अचेत पडा सो रहा है। वह ग्राम देवता की पुकार सुनता ही नहीं। हाय, उसकी कुम्भ कर्णी नीद टूटती ही नही। ग्राम देवता कहता है, "अरे मेरे ग्राम, में तो तुम्हारे ऊपर गर्व करता था। में तो इस गर्व और अभिमान के भरोसे से ही तुम्हारे पास आया था। परन्तु तुम हो कि मेरी पुकार सुनते ही नही, किसी तरह जागते ही नही। तुम मेरी पहिली बात भी नही रख रहे हो। यह तुम्हारी कैसी नीद है, यह कैसी अचेतनता है ?"

जब ग्राम अपने देवता की बात नही सुनता तो उसका कल्याण कैसे होगा ? 'जन गन मन अधिनायक' की पुकार और चुनौती को अनसुनी करके हमारा देश, हमारा समाज कैसे जीवित रह सकता है ? उसी तरह, ग्राम देवता की चुनौती और पुकार को अनसुनी कर हमारे ग्राम कैसे जी सकते हैं ?

क्या ये गीत हमे अपना दिल टटोलने के लिए, आत्मालोचना करने के लिये प्रेरित नहीं करते ? ये हमारी आत्मा को खरोचते नही ? हमें बल पूर्वक झकझोड़कर जगाते नहीं ? हमे सचेत और सजग नहीं बनाते ?

कविवर श्री सुमित्रानन्द पत ने 'ग्राम्य देवता' को सम्बोधित करते हुए व्यग मे कहा था—

राम, राम,
हे ग्राम्य देवता, यथानाम,
शिक्षक हो तुम, मै शिष्य, तुम्हे सविनय प्रणाम।
विजया, महुआ, ताडी, गाजा पी सुबह शाम।
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हे जग से न काम।
पण्डित, पण्डे, ओझा, मुखिया औ' साधु सन्त।
दिखलाते रहते तुम्हे स्वर्ग, अपवर्ग पन्थ।
जो था, जो है, जो होगा, सब लिख गए ग्रन्थ।
विज्ञान ज्ञान से बडे तुम्हारे मत्र तत्र।

पत जी ने ग्राम जीवन का जो चित्र यहाँ पेश किया है वह बिल्कुल सच्चा है। इसी चित्र को देखकर तो (उपर्युक्त गढवाली लोकगीत में) इस मातृलोक मे आने से अग्निदेव ने साफ इनकार कर दिया था। अनीति, अत्याचार को जिस जीवन मे प्रश्रय मिलता हो उसका आचल अग्नि देव को प्रश्रय कैसे दे सकता था ? ग्राम देवता (ग्राम्यदेव नही) ने तो पुकार की परन्तु "डीह" यदि सोता ही रहे, जागने का नाम न ले तो क्या होगा ? पत जी ने इस व्यगात्मक ढग से हमारे देश के 'ग्राम्य देवता' को ठीक ही याद किया है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही हो सकता कि कविवर पत के हृदय मे ग्राम जीवन के प्रति आदर नहीं है। उन्ही का कथन है,

मनुष्यत्व के मूल तत्व ग्रामो ही मे अन्तर्हित,
उपादान भावी सस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।

कविवर पत जी ने "भारत माता" कविता मे यह बात और भी स्पष्ट रूप मे कह दी है—

भारत माता
ग्राम वासिनी,
खेतो मे फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आचल,
गगा यमुना मे आसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा,
उदासिनी !
भारत माता
ग्राम वासिनी !
चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिराकित
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित
ज्ञान गूढ
गीता प्रकाशिनी !
सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम, भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी !

जिस प्रकार कविवर पत जी ग्राम जीवन की वर्तमान विकृतियो से असतुष्ट है, क्रुद्ध हैं और जिस प्रकार वे ज्ञान गूढ गीता प्रकाशिनी सस्कृति और सभ्यता का आधुनिक रूप देखकर चिन्तित हैं, उसी प्रकार हम भी चिन्तित हैं। यदि हमे इस सम्बन्ध मे कुछ करना है तो हमे इस सस्कृति को समझना होगा। बिना लोकगीतो की सामाजिक व्याख्या किये हम उस सस्कृति तथा सभ्यता के मूल तक नही पहुँच सकते जो सहस्रो वर्षों के आतप वर्षा शीत को सहकर भी मरी नही है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी भावी सस्कृति के सारे उपादान यहाँ की धूल मिट्टी मे "अविकृत" पडे हुए

हैं। इसलिए हमे धूल मिट्टी मे सनी श्यामलाचला सस्कृति की खोज मे निकलना ही होगा।

हमारे लोक गीत लोक जीवन के सारे तत्वो को उभारने वाले, उन पर प्रकाश डालने वाले सीधी, सादी, सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं। लोक गीत पुरातत्व सम्बन्धी अन्य विषयो की भाँति ऐसी वस्तु नही है जिनका अध्ययन लोक जीवन से अलग रहकर, बन्द कमरे मे बैठकर किया जा सके। इनको समझने, इनका मूल्य पहिचानने, इनकी सही व्याख्या कर पाने के लिए हमे वहाँ जाना पडेगा, उस लोक मे जाना पडेगा जहा 'अग्निदेवता' जाने से इन्कार करते है। हमे वहाँ पूरी श्रद्धा, पूरी आस्था और पूरे विश्वास के साथ जाना पडेगा, क्योकि हम वही उन गीतो मे रमकर, उनके मूल तक पहुँच कर ही वह हीरा पा सकेंगे जो युगो युगो से हमारे समाज को ज्योति देता आया है और आगे भी देता रहेगा।

लोकगीत संग्रह

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने ओज पूर्ण स्वरो मे कहा है, "ग्राम गीतो ने जनता मे एक अनिर्वचनीय सुख की सृष्टि की है। कितने ही सहृदय मित्रो से मैने सुना है कि उनकी कामिनियो ने अपने कोकिलकण्ठ-विनिन्दक स्वर से गीत सुना कर उनके मानस जगत पर आनन्द सुधा की वृष्टि की है। कितनी ही सुन्दरियो ने गीत गाकर अपने रूठे पतियो को मनाया है। कितनी ही देवियो ने बेटी की बिदा के गीत गागा कर, सजल नेत्रो से, अपनी कन्याओं के सिर पर हाथ फेर कर, करुणा रस से अपने आस पास के वातावरण को भिगो दिया है। कितनी ही ललनाओ ने गीत सुना सुना कर अपने रसिक पतियो पर जादू डाला है। कितनी ही प्रमदाओ ने अपने परदेसी पतियो को पत्र मे गीत लिखकर भेजा है और उन्हे घर वापिस आने को उत्सुक किया है। कितनी ही शिक्षिता बहिना ने इन गीतो की महिमा जानकर स्त्री जाति की बुद्धि पर गर्व से सिर ऊँचा किया है।

"जब गृह देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हे सुनकर चराचर के प्राण तरगित हो उठते हैं। आकाश चकित सा जान पडता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई सी दिखाई पडती है। मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से, अपने उन मित्रो से, जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अन्त पुरो को लौटो। कस्तूरी मृग की तरह सुगन्ध स्रोत की तलाश मे कहाँ फिर रहे हो? स्वर्ग का सच्चा सुख तुम्हारे अन्त पुर मे है। वहाँ की हृत्तन्त्री के तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो। फिर देखो, कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।"

मगर इन अगणित ग्राम गीतो अथवा लोकगीतो के रचयिताओं का क्या नाम है? क्या पता है? कब ये गीत रचे गए? किसने इनकी रचना

के लिए प्रेरणा दी ? किसके प्रश्रय मे ये गीत अब तक जीवित रहे ? जिस तरह हमारे अनेक मठ-मन्दिर भग्न स्तूप बन गए, जिस प्रकार अनेक चित्र मिट गए, अनेक कलाएँ गायब हो गयी, उसी प्रकार हमारे अगणित गीत सदियो तक अपने जीवन के लिए सघर्ष करते करते अन्त मे काल कवलित हो गए, मिट्टी मे मिल गए, धूल के साथ उड गए !

अगले पृष्ठो मे हम कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण और सरल लोकगीतो को प्रकाशित कर रहे हैं। ये लोकगीत मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, मालवी, गुजराती, पजाबी, मणिपुरी और गढवाली भाषाओ के हैं। इतनी भाषाओ-बोलियो के गीतो की एक ही आत्मा, एक ही स्वर और एक ही सन्देश है जो इस बात का प्रमाण है कि लोकमानस और लोकवाणी ने भौगोलिक सीमाओ और अन्य नाना प्रकार की भिन्नताओ के आवरण के नीचे छिपी जनता की मूल सास्कृतिक एकता को युगो युगो से किस प्रकार स्वस्थ और सुदृढ बनाए रखा है। ये गीत पडित राम नरेश त्रिपाठी कृत "ग्राम गीत," श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कृत "बेला फूले आधी रात" तथा "धरती गाती है," श्री श्याम परमार कृत "मालवी लोकगीत," श्री सूर्य करण पारीक कृत "राजस्थानी लोकगीत," श्री हर प्रसाद शर्मा कृत "बुन्देल-खण्डी लोकगीत' तथा श्री सत्यव्रत अवस्थी के अप्रकाशित सग्रह से चुने गए हैं। कुछ गीत ऐसे भी है जिन्हे मैंने अपनी माँ, भाभी और बहिन से सुनकर नोट कर लिए थे।

जैसा कि हमारे पाठक अनुभव करेंगे ये गीत प्राचीन होते हुये भी चिरनवीन हैं क्योकि इनकी आत्मा अमर है और इनकी वाणी मे भारतीय सस्कृति के अमर स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। इनको समझने और इनका पूरी तरह आनन्द लेने के लिये, इनसे प्रेरणा ग्रहण करने के लिये, थोडी सी सहानुभूति की आवश्यकता है। ये गीत हमारे देश की जनता की धमनियो और धडकनो मे बसे हुये हैं। इनको सुनना अपनी आत्मा की आवाज को सुनना है।

१

भई, म्हारे आनन्द मङ्गलाचार !

सूर्या गउ को गोबर मँगाव,
सीके दयी आगन लिपाव,
भई, म्हारे आनन्द मङ्गलाचार ।

गज मोतियन को चौक पुराव,
कुम्भ कलश धराव,
भई, म्हारे आनन्द मङ्गलाचार ।

तेडो तेडो रे गोकुल को जोसो,
नानडिया रो नाम लेवाव ,
भई, म्हारे आनन्द मङ्गलाचार ।

नानडिया रो नाम कुवर,
कन्नैयो, कृष्ण कन्नैयो,
धरती को धोवन वालो,
परजा को पालन वालो,
श्री कृष्ण आयो म्हारा दुवार,
भई, म्हारे आनन्द मङ्गलाचार !

—मालवी लोकगीत

२

मोरी खाला पडी है गागरिया !

करु कौन जतन अरी एरी सखी,
मोरे नयना से बरसे बादरिया !
उठी काली घटा बादल गरजै,
चली ठडी पवन मेरा जिया लरजै !
थी पिया मिलन की आस सखी,
परदेश गये मोरे सावरिया !
सब सखिया हिंडोले झूल रहीं,
खडी भीजू पिया तोरे आगन में !
भर दे रे रगीले मन मोहन,
मोरी खाली पडी है गागरिया !

—ब्रज लोकगीत

३

सावन महिनो आयो जी !

लींबे लिंबोली याकी सावन महिनो आयो जी ।
उठो हो म्हारा बाला वीरा लीलडी पलाणो जी ॥
तमारी तो प्यारी बेन्या सासरिया मे झूले जी ।
झूलो तो झूलवा दीजो अब के सावण आयो जी ॥
कारे मालीरा छोरा, म्हारी बेन्या ने देखी थी ।
देखी थी भाई देखी थी पाणी भरता देखी थी ॥
हाथ मे हरियाली चूडो, माथे मोहन बेडो जी ।
लींबे लिंबोली याकी सावन महिनो आयो जी ॥

—मालवी लोकगीत

४

अब घर आ ज्वाओ प्रितम पावणा जी !

सावण आयो गोरी का सायबाजी।
ऐंजी कोई मोटीडी छटारो बरसे मेह,
अब घर आज्वाओ प्रितम पावणा जी।
चौमासा मे आवणरो मारुजी के गया जी,
ऐजी कोई बोली मे बिलमाय।
काली काली रात पिया म्हने खारी लागे जी,
ऐजी कोई खाय जाणो कालो नाग।
मोर पपइया पी पी बोल्या जी,
ऐजी कोई तन मे लग रही आग।
मूसलधार पानी पडे जी,
विरह से व्याकुल कामणी जी।
ऐजी कोई बिजली कडके कटार,
मारुणी थारी राता डर मरेजी।
नित उत ढोला काग उडावती,
ऐजी कोई केती लूॅ साजन के बुलाय।
सोना मे मढा दूॅ कागा थारी चोचडी जी,
हऱ्या हऱ्या खेत ने बन पड्या जी।
ऐजी कोई हऱ्या हुआ ससार,
हऱ्यो हुओ नी गोरी रो जिवडो जी।
संग सहेली मिल पूछे जी—
ऐजी कोई किण विध थे हो उदास।
काय के काली दूबली पर रही जी,
थारा तो प्यिा बेनी घर बसे जी।

ऐजी कोई म्हारा सिधाया परदेस,
सङ्ग हँसी म्हारी ले गया जी।
कजली तीज पै आवणारो कई गया जी,
ऐजी को आया नई बडोरी तीज।
किण विध जीऊँ म्हारो हियडो जले जी,
ओ ठी एक सदेसडो जी।
ऐजी म्हारा मारुजी से कही आय,
मारुणी तो थारी बिस खाये मरेजी।
ऐजी कोई हार गई जोई जोई बाट,
कदलग बस राखे जीवडो जी।
चार चौमासा राजा जी म्हारे हो गया जी,
ऐजी कोई आयो पाचमो चौमास।
अब तो आस म्हने छोड दी जी,
इस विधि मारुणी बिलखती जी।
ऐजी कोई घर को सटक्यो हे द्वार,
डाबुडो तो अङ्ग गोरी रो फडके जी।
राजा जी खडा म्हारा आगणा जी,
ऐजी बधाऊ मोती भर थाल।
राते माडूगी रुसनो जी,
आज तो सखी भवँर परणो जी।
ऐजी कोई करसो सोले सिगार,
आज सोनारो सूरज सूरज उगियो जी।

—मालवी लोकगीत

५

म्हारो बाग लेहराये जी !

इलक तिलक का तोरिया
बई, बेकल की तरवार जी ।
का को बीरो बाग लगावे
का की बेन्या सीचे जी ।
सूरज नारायण बीरा बाग लगावे
सजा बेन्या सीचे जी ।
बई तो चाली सासरे
म्हारो बाग सूखे जी ।
रुपया लइलो रोकडा
म्हारी बई ने पाछी लावो जी ।
बई तो आया गोयरे
म्हारो बाग लेहराये जी ॥

—मालवी लोकगीत

६

दोई नंनद भोजायां पानीड़ा चाली !

दोई ननद भोजाया पानीडा चाली
पनघट पे बेठो सिपैडो।
सिपैडो तो यूँ कर बोल्यो
चलो गोरी साथ हमारा।
इतरी तो सुन हम यूँकर बोल्या
धरती को घाघरो सिवइदे सिपई रे।
बादल को लुगडो बणाई दे सिपई रे
तारा का फूल टकई दे सिपई रे।
सापेरी मगजी लगई दे सिपई रे
गोयरा री चीण लगई दे सिपई रे।
इतरो तो भेस बणाई दे सिपई रे
जद चला म्हारा साथ..
इतरो तो सुण सिपैडी बोल्यो
इतरो तो भेस हमारा से नी बणे।
गोरी जावो अपणा मेल...
इतरो तो सुण हम घरे दोई आई
दोई मिलकर रही बात.

—मालवी लोकगीत

७

साजन रंग्यो तो चंग्यो हो साजन बाजोटिया !

साजन, रग्यो तो चग्यो हो साजन बाजोटिया,
मेल्यो म्हारा राय आगणा बीच।
साजन, देखो म्हारा काकड केरी सोब हेरे,
काकड हलीडा अत घणा।
साजन आया मलकता।
साजन, देखो म्हारा बागा केरी सोब हेरे,
बागा मे बाग बगवान घणारा।
साजन, देखो म्हारी गोया केरी सोब हेरे,
गोया मे लछमी उछले।
साजन, देखो म्हारी सेरी केरी सोब हेरे,
थारी माय सहेलडी अत घणी।
साजन, देखो म्हारा चवरारी सोब हेरे,
चँवरी मे देवर जेठ अत घणा।
साजन, देखो म्हारा राय आगणा केरी सोब हेरे,
राय आगणा म्हारा बालूडा अत घणा।

—मालवी लोकगीत

८

सुद नीच त्वैकू मेरी मां !

यो सोडा मोडा मा घाणी न घघा,
लोग रै गैन घर मा।
विदेस मा भबताली ग्यूँ मैं,
सुद नीच त्वैकू मेरी मा।

—गढवाली लोकगीत

९

जुनरिया हो गई मनभर की !

पोता लाग रहा महाराज,
जुनरिया हो गई मन भरकी।
मुनसी आए, पटवारी आए,
आए तैसीलदार,
होन लगी कुरकी,
जुनरिया हो गई मन भर की।
लागा बिक गयो, लागरा बिक गयो,
बिक गई अंगिया तन की,
जुनरिया हो गई मन भर की।
राजा के बाधन को सेला बिक गयो,
फजिअत हो गई घर घर की,
जुनरिया हो गई मन भर की।

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

१०

रखूं घूंघट की लाज !

सरग उडती चिरहुली
लागौ सामन मास।
हमरे बाबल सौ नौ कहौ
अपनी बेटी ऐ लेइ बुलवाइ
लागौ सामन मास।
ले डुलिया बीरन चले
लागौ सामन मास।
जाइ पहुँचे जीजा दरबार
भेजो जीजा जी बहैन को जी।
भैया कूं रॉधूगी सैमई जी
ऊपर बूरौ खाड,
सैया कू कोधई जी
ऊपर रोटी साग।
लै जाओ सारे अपनी बहैन जा,
लै बहैना बीरन चले
लागौ सामन मास।
सरग उडती चिरहुली
जइयो ससुर दरबार
डोला तौ घेर्‌यो पठान ने
लागौ सामन मास।
सरग उडती चिरहुली
जइयौ ससुर दरबार
हमरै सुसर जी से न्यौ कहौ
डोला लिया है घेर

लागौ सामन मास।
लै हाथी सुसरा चले
हथिनी ओर न छोर
लै रे मुगल अपनी भेट लै
लागौ है सामन मास,
बहुअल तौ छोडौ चन्द्रावली जी।
हाथी तो मेरे बहुत है
हथिनी ओर न छोर
ना छोडूँ चन्द्रावली
जाइगी जी के साथ।
जाओ सुसर घर आपने
रक्खू पगडी की लाज।
सरग उडती चिरहुली
जइयो जेठ दरबार
हमरे सेठ जी से न्यौ कहौ
डोला लियौ है घेर
लागो है सामन मास।
लै घोडा जेठा चले
घोडी ओर न छोर
लै रे मुगल अपनी भेट ले
लागौ है सामन मास,
बहुअल तौ छोडौ चन्द्रावली जी।
घोडा तौ मेरे बहुत है
घोडी ओर न छोर
ना तौ रे छोडू चन्द्रावली
जाइगी जी के साथ।
जाओ जेठ जी घर आपने

रखूं घूंघट की लाज।
सरग उडती चिरहुली
जाइयो पिया दरबार
हमरे साहिबा से न्यौ कहौ
डोला लियो है घेर।
लै मोहरे राजा चले
थैली ओर न छोर
लै रे मुगल अपनी भेट लै
लागौ सामन मास,
गोरी तौ छोड रे चन्द्रावली।
रुपिया तो मेरें बहुत है
थैली ओर न छोर
ना तो रे छोड़ूँ चन्द्रावली
जाइगी जी के साथ।
जाओ राजा जी घर आपने
राखू फेरन की लाज
पानी न पीउगी पठान कौ
सेजौ धरूँगी न पाव।
इतनी सुनि राजा चलि दिए
लागौ सामन मास।
जा रे मुगल के छोहरा
लागौ सामन मास।
प्यासी मरे चन्द्रावली
जैसी राजदुलारी,
प्यासी मरे चन्द्रावली
जिसके माई ना बाप।
लै लोटा मुगल चलौ

तबुआ दे लई आग
हाड जरै जैसे लाकडा
केस जरे जैसे घास।
हाइ हाइ मुगला करै
ठाढे खाइ पछार
घेरी ही बरती नही
लागौ सामन मास,
देखी ही चाखी नही
ऐसी राजदुलारी।
इतनी सुनि ससुरा रो दिए
मेरी राजदुलारी,
बहू भली चन्द्रावली
राखी पगडी की लाज।
इतनी सुनि जेठ जी रो दिए
मेरी राजदुलारी,
बहू भली चन्द्रावली
राखी घूँघट की लाज।
इतनी सुनि राजा रो दिये
राखी फेरन की लाज
रानी भली चन्द्रावली
खानो न खायौ पठान कौ
सेजो पै रक्खो न पाव
लागौ सामन मास।

—ब्रज लोकगीत

११

जुआनी सर सर सर्रावे

जुआनी सर सर सर्रावे।
जैसे अँगरेजन कौ राज
अँगरेजन कौ राज
जैसे उड़इ हवाइ जहाज
जुआनी सर सर सर्रावे।
जैसे अँगरेजन कौ राज
काजर दै मै का करूँ
मेरे वैसेई नैन कटार
जुआनी सर सर सर्रावे।
जैसे अँगरेजन कौ राज
जाते मिल जाय निगाह
वही मेरा ह्वै जाय ताबेदार
जुआनी सर सर सर्रावे।
जैसे अँगरेजन कौ राज
उमर खिचै पै कोई न पूछै
जुआनी कौ ससार
जुआनी सर सर सर्रावे।
जैसे अँगरेजन कौ राज

—ब्रज लोकगीत

१२

कायां रे गायो ने कयां बरसीयो रे !

कया रे गाज्यो ने कया बरसीयो रे
कये साम भरीया तलाब, रे मेवाडा।
ओतर गाज्यो ने दखण बरसीयो रे,
राणपुर भरीया तलाब, रे मेवाडा।
पादरडा खेतर खेडीया रे,
वावी घे लुडी जार, रे मेवाडा।
त्रणे गोठीया तेवतेवडा रे,
पोक ते पाडवा ने जाय, रे मेवाडा।
पोक पाडी ने खावा बेसीया रे,
साभरी घरडा नी नार, रे मेवाडा।
त्रणे गोठीआ तेव तेवडा रे,
वडताल भाडा भरवा जाय, रे मेवाडा।
भाई रे भाडाती वीरा वीनवू रे,
मुज ने घडुलो चडाव्य, रे मेवाडा।
फोडन्य घडो ने कर काछला रे,
मारी बेल्ये बेठी आव, रे मेवाडा।
घडो फोड तारी मावडी रे,
वेल्य मां वेसे तारी भेन, रे मेवाडा।
भाडा भरी ने घेर आवी यारे,
दादा, बहु ने तेडवा जाव, रे मेवाडा।
घोला ने धमला जोडिया रे,
बहु ने तेडी घेरे आव्या रे मेवाडा।
डावा ते हाथ मा दीवडो रे,
जमणा हाथ मा थाल, रे मेवाडा।

रमझम करता मेडीए चडयारे,
दीठा दीघेला, बार, रे मेवाडा।
का तो घोट्यो ने धारण मेलिया रे,
का तो डस्यो कालो नाग, रे मेवाडा।
न थी घोट्यो ने धारण मेलीया रे,
नथी डस्यो कालो नाग, रे मेवाडा।
वनरा ते वन ने मारगे रे,
गोरी, तारा बोलडिया सभारच्य, रे मेवाडा।
तमें ते बन न मोरला रे,
अमे छलकती ढेल्य, रे मेवाडा।
तारी तलवारे भण फुमका रे,
तारी मूछे भण लींबु, रे मेवाडा।

—गुजराती लोकगीत

१३

बाज़ार वकेंदी झारी

बाजार वकेंदी झारी
हुण आ वज कृष्ण मुरारी
बंसी पुकारे
जीवे कृष्ण
कृष्ण गोपाल
गोपीयां दी जिन्द गई
आके सम्भाल

—पजाबी लोकगीत

१४

रोड़े गोहे चुंगें दिये मुटियारे नी !

रोड गोहे चु गे दिये मुटियारे नी,
कण्डा चुम्भा तेरे पैर क पतलिये नारे नी ।
मेरे कण्डे दी तैनू की पई सिपाहिया वे,
तूं राहे राहे तुरिया जा भोलिया राहिया वे ।
कौन कढ्ढे तेरा कण्डड मुटियारे नी,
कौन सहे तेरी पीड भोलिये नारे नी ।
भाबो कढ्ढे मेरा कण्डडा सिपाहिया वे,
वीर सहें मेरी पीड भुल्लिया राहिया वे ।
खूहे ते पानी भरे दिये मुटियारे नी,
घुट्टक पानी पिला भुल्लिये नारे नी ।
आपण कढ्ढया न दिया सिपाहिया वे,
लज्ज पई भर पी भुल्लिया राहिया वे ।
लज्ज तेरी हूँ घू घरु मुटियारे नी,
हथ्थ लाइया झड जान पतलिवे नारे नी ।
साफे दी वारी कर लै लज्ज सिपाहिया वे,
छित्तर बना लै डोल पतलिया राहिया वे ।
घडा ता तेरा भज्ज जाय तेरा मुटियारे नी,
इन्नू ता रह जाय हथ्थ भोलिये नारे नी ।
नीला घोडा तेरा मर जाय सिपाहिया वे,
चाबुक रह जाय हथ्थ भुल्लिया राहिया वे ।
घर जाहा नूं तैनू मारे मुटियारे नी,
तू पै जाय साडडे भोलिये नारे नी ।
रत्तड़े पीढे बैठिये तुम माये नी,
सिर तो घडा लुहा रानिये मायेनी ।

घडा ता तेरा लुहा दिया सुन धीये नी,
किथ्थो आई ए तिरकाला पा रानिये धीयेनी।
लम्मा ते झम्मा गम्भरु सुन मायेनी,
बैठा सी झगडा ला रानिये मायेनी।
देनीए पलंग डहा रानिये मायेनी,
मेरा आया जवाभा, सुन धीये नी।
तेरा सिर सरदार, रानीये धीयेनी,
भर लै कटोरा दुद्ध दा, सुज धीयेनी।
लै चबारे जा, रानिये धीये नी,
चढ चबारे सुत्तिया जी सिपाहिया जी।
बूहे दा कराडड खोल्ह क असी तैरे मरहम हा,
बूहे दा कराडड न खोला मुटियारे नी।
तू ते खूहे दे बोल सम्भाल भोलिये नारे जी,
निक्की हुन्दो व्याहिया जी सिपाहिया जी।
रही न सुरत सम्हाल क असीं तेरे मरहम हा
शाबाशे तेरी बुद्ध दे मुटियारे नी।
धन्न जनेदडी मा, भोलिये नारे नी,
तेरिया सुख्खना मैं दिया सिपाहिया जी।
मेरिया बारी तेरी मा क असा तेरे मरहम हा,
रौडे गोहे चुगें दिये मुटियारें नी।

—पंजाबी लोकगीत

७५

गाम मां सासरु गाम मां पियरिऊं रे लोल !

गाम मा सासरु गाम मा पियरिऊ रे लोल
दीकरी कर जो सुख दुख नी बात जो
कवला सासरिया मा जीववू रे लोल
सुख ना वारा ते माडी वही गया रे लोल
दुख ना उग्या छे झीडा झाड जो
कवला सासरिया मो जीववू रे लोल
पछ्वाडे अभी नणदी साभले रे लोल
बहु करेछे आपणा घरनी घरनी बात जो
बहुए बगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
नणा दीए जई सासुने सम्भलाव्यू रे लोल
बहु कोछे आपणा घरगी बात जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
सासुए जई ससरा ने सम्भलाव्यू रे लोल
बहु करेछे आपणा घर नी बात जी
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
जेठे जई पररांया ने सम्भला व्यू रे लोल
बहू करेछे आपणा घर ना बात जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
पररराये जई तेजी छोडो छोडयो रे लोल
जई उभाड्यो गाधीडा ने हाट जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
अध शेर आहल्या तोलाव्या रे लोल
पा शेर तोलाव्यो सोमल खार जो
बहुए बगोव्या मोटा खोरडा रे लोल

सोनला वाटकडे अमल घोलिया रे लोल
पीयो गोरी नकर हूँ पी जाऊ जो
गटक दईने गोरा दे पी गया रे लोल
घर चोकानी ठासी एणे सोड जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
आठ काठना लकडा मगाव्या लोल
खोखरी हाडली मा लीधो आग जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
पहेले विसामो घरने अम्बरे रे लोल
बीजो विसामो झापा बहार जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
भीजो विसामो गाम ने गौदरे रे लोल
चौथो बिसामो समशान जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
सोनला सरखी बहू नी चेहबले रे लोल
रुपला सरखी बहू नी राख जो
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल
बाली झाली ने जीवडो घरे आव्यो रे लोल
हवे माडी मन्दिरिए मोकलाण जो
भवनो ओशियालो हवे हूँ रह्यो रे लोल
बहुए वगोव्या मोटा खोरडा रे लोल ।

—गुजराती लोकगीत

१६

मोलूं मां अम्बो मोडियो रे !

माडी बार बार बरमे आवियो
माडी नो दीठी पातली परमारथ रे जाडेजी मा
मोलू मा दियो शग वले रे
दीकरा हेठो वेसीने हथियार छोडथ रे कलइया कुवर
पानी भरी हमणा आवशे रे
माडी कुवा ने वाव्यू जोई लच्यो रे
माडी नो दीठी पातली परमारथ रे जाडेजी मा
मोलूँ मा दियो शग वलेरे
दीकरा हेठो वेसीने हथियार छोडथ रे कलइया कु वर
दलणा दली हमणा आवेश रे
माडी घटियो ने रथडा जोई वलच्यो रे
माडी नो दीठी पातली परमारथ रे जाडेजी मा
मोलू मा दियो शग वले रे
दीकरा हेठी वेसीने हथियार छोडथ रे कलइया कु वर
धान खाडी ने हमणा आवशे रे
माडी खारणीया—खारणीया जोई वलच्यो रे
माडी नो दीठी पातली परमारथ रे जाडेजी मा
मोलूं मा दियो शग वले रे
दीकरा हेठी वेसीने हथियार छोडथ रे कलइया कुंवर
धोणूं धोई ने हमणा आवशे रे
माडी नदियों ने नेरा जोई बलच्यो रे
माडी नो दीठी पातली परमारथ रे जाडेजी मा
मोलू मा दियो शग वले रे
एना बचका मा कोरा बांधनी रे

एनी बाघनी देखी ने बावो धाउ रे गोजारण मा
मोलूं मा आम्बो मोडियो रे ।
एना बचका मा कोरी टीलडी रे
एनी टीलडी ताणी ने तरसूल ताणू रे गोजारण मा
मोलूं आ आम्बो मोडियो रे ।

—गुजराती लोकगीत

१७

सुखी मी आई कीला भाईराया ।

दूरच्या देशीचा शीतल वारा आला,
सुखी मी आई कीला भाईराया ।
दूरच्या देशीचा सुगन्धी ये तो वात,
असेल सुखात भाईराया ।
अरे वारच्या वारच्या धावशी लाब लाब,
बीहणीचा निरोपसाग भाईरायाला ।

—मराठी लोकगीत

१८

कहांना से मुगला चले !

कहाना से मुगला चले
री मानो कहाना लेत मिलान
पच्छम से मुगला चले
सास मेरी अग्गम लेत मिलान
ऊचे चढके मानो हेरियो
कोई लग गये मुगल बजार
हुकम जौ पाऊ रानी सास को
मै तो आऊ मुगल बजार
मुगला को का देखना
री मानो मुगला मुगद गवार
सास की हटकी मै न मानो
मै तो देखि आऊ मुगल बजार
जो तुम देखन जात हो
री मानो कर लो सोरहो सिगार
तेल की पटिया पार लई
मानो सिदूरन भर लई माग
माथे बीजा अत बनो
री मानो बिदियन की छब न्यार
माथे बिंदिया अतबनी
री मानो कजरा की छब नियार
चली चलीं मानो हुना गई
रे कोई गई कुम्हार के पास
अरे अरे भइया कुम्हार के
रे एक मटकी हमे गढ देउ
एक मटकिया का गढू

री मानो मटकी गढो दो चार
एक मटकिया गढो, रे भइया
जा मे दहिया बने और दूध
अरे-अरे भइया कुम्हार के
तुम कर दौ मटकिया के मोल
पाँच टका की जाकौ बानी है
री मानो लाख टका को मोल
पाँच टका धरती धरे
कुम्हार के मटकी लई उठाय
दहिया-दूध जामे भर लयो
री मानो देखि आओ मुगल बजार
चलीं-चली मानो हुना गई
रे कोई गई मुगल के पास
पहली टेर मानो मार्‌यो
रे कोई दहिया लेत कै दूध
दही दूध के गरजी नही
री मानो घुँघुटा कर दौ मोल
दूजी टेर मानो मार्‌यो
रे कोई मुगल लई पछिआय
लौट आओ मानो बदल आओ
रे मेरी रनियाँ देखै जाओ
रनियाँ को का देखना
रे मुगला ऐसी रैती मोरि गुबरारि
लौट आओ मानो बदल आओ
मेरे कुँवरन देखै जाओ
कुँवरन को का देखना
मेरे रैते ऐसे गुलाम

लौट आओ मानो बदल आओ
मेरे हतिया देखै जाओ
हतिअन को का देखना
रे मुगला मेरी भूरी भैंस को मोल
घुँघटा खोलत दस मरे
रे मुगला बिंदिया देखि पचास
मुगला सौक जब मरे
रे जब तनिक उघारि गई पीठ
सोउत चन्द्रावल ओध के
रें तेरी ब्याहो मुगल लै जाय
मुगला मारें गरद करे
रे बिनने लोथे लगा दई पार
रक्तन की नदियाँ बहीं
रें बिन ने लोथें लगा दई पार ।

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

१६

खुंगा बी पांगो लू-लामे

खुंगा बी पागो लू लामे
लू लामे लू-लामे
टराग लू लाम का थाया
खुंगा बी पागो लू-लामे ।

—मणिपुरी लोकगीत

२०

चरखे ने घूं घूं लाई ।

हे मेरी मा नी ! चरखे ने घूँ-घूँ लाई
सियोणे दा मेरा चरखडा चादी दी गुज्झ पुआई,
हे मेरी मा नी ! चरखे ने घूँ-घूँ लाई ।
पट्ट रेशम मेरी माल है सोहणे रग रगाई,
हे मेरी मा नी ! चरखे ने घूँ-घूँ लाई ।
तंद कढ्ढे मेरा जीवडा झडी नैना ने लाई,
हे मेरी मा नी ! चरखे ने घूँ-घूँ लाई ।

—पंजाबी लोकगीत

२१

ऐनियां सूलां मैनूं फुल्ल हो जावन !

हत्थी सूला मेरे पैरी सूला,
मेरे गल सूला दे तग्गे ।
सूल सरहा दी सूल परादी
मेरे सूला सज्जे खब्बे ।
सूला दी मै सेज बछाई,
मेरे सूल सीने बिच्च खुम्भे ।
ऐनिया सूला मैनू फुल्ल हो जावन,
जे मिया राझन लभ्भे ।

—पंजाबी लोकगीत

२२

संदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जीरे !

कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
माणस होय तो मुखो मुख बोले,
लखो अभारी पखलडी रे,
कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
सामा काठाना अमे पखीडा,
ऊडी ऊडी आ काठे आव्या जी रे,
कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
कु ज लडी ने वा' लो मीठो मेरा मण,
मोर ने वा' लुॅ चोमासो जी रे,
कु जलडी रे संदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !

राम लखमण ने सीता जी वा' ला,
गोपियों ने वा' लो कानडो जी रे,
कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
प्रीति काठा ना अमेरे पखीडा,
प्रीतम सागर बिना सूना जी रे,
कुंजलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
हाथ परमाणे चुडलो रे लावेजो,
गुजरी मा रत्न जुडावजो जी रे,
कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
डोक परमाणे झरमर लावजो,
तुलसीए मोतीडा बधावजो जी रे,
कु जलडी रे सदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !
पग परमाणे कडला लावजो,
काबीयुं मा घुघर बंधावजो जी रे,
कु जलडी रे संदेशो अमारो जई बालम ने के' जो जी रे !

—गुजराती लोकगीत

२३

काहे मन मारे खड़ी गोरी अंगना !

काहे मन मारे खडी गोरी अगना ।
धरती के लहगा, बदरी के चोली,
जोन्ही के बाटम, कसबै दूनो जोबना ।
काहे मन मारे खडी गोरी अंगना ॥
रूपे के बाजूबन, सोने के कंगना,
रेशम के चोली, ढकबै दुनो जोबना ।
काहे मन मारे खडी गोरी अगना ॥
टूटी जइहैं बाजूबन, फूटी जइहैं कंगना,
फटि जइहैं चोली, लटकि जइहै जोबना ।
काहे मन मारे खडी गोरी जोबना ॥
बनि जाई बाजूबन, जुटि जाई कगना,
सिया जाई चोली, उठाई देबै जोबना ।
काहे मन मारे खडी गोरी अगना ॥

— भोजपुरी लोकगीत

२४

कम कर जानूं परदेस वाला जो

बालो लागे छै म्हारो देसडो ए लो
कम कर जानू परदेस वाला जो
ऊचा ऊचा राणे जी राणे जी रा गोखडा ए लो
नीचे म्हारे पीछोले री पाल वाला जो
बादल छाया देस में, हे लोय
नदिया नीर हिलोहिल रे
बादल चमकै बीजली
चमक चमक झड लाय।
सरवर पाणीड़े ने मैं गई ए लो
भीजै म्हारी सालूड़े री कोर वाला जो
वालो लागै छै म्हारो देसडो ए लो
केमकर जावूँ परदेस वाला जो।

—राजस्थानी लोकगीत

२५

नजर भर हेरत काय नइयां ?

नजर भर हेरत काय नइया ?
हम तो राजा पिया बन की हिरनिया,
तुम ठाकुर के लरका,
तुपक तीर मारत काय नइया ?
हम तौ राजा पिया जल की मछरिया,
तुम धीमर के लरका,
झमक जाल डारत काय नइया ?
नजर भर हेरत काय नइया ?

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

२६

छोट मोट पेड़वा ढकुलिया

छोट मोट पेडवा ढकुलिया
त पतवा रे लहालही हो।
रामा तेही तर ठाढि रे हिरनिया,
हरिन बाट जोहइ हो।
बन में से निकलेला हरिना,
त हरिनी से पूछे ला हो।
हरिनी काहे तोर बदन मलीन,
काहे मुह पीअर हो।
गइलों मै राजा के दुअरिया,
त बतिया सुन अइलो हो।
प्यारे आजु छोटे राजा का बहेलिया,
हरिन मरवइहइ हो।
केइ जे बगिया लगवले,
केइ रे आए दुँढले हो।
हरिनी केकर धनिया गरभ से,
हरिन मरवावले हो।
दशरथ बगिया लगवलें,
लखन आये दूँढले हो।
प्यारे रघुबर धनिया गरभ से,
हरिन मरवावले हो।
कर जोडे हरिनी अरज करे,
सुन कौशल्या रानी हो।
रानी सीता के होइहैं नन्दलाल,
हम ही कुछ दीहब हो।

सोनवा मढ़इबो दुहु सिंगवा,
भोजनवा तिल चाउर हो।
हरिनी भोगहु अयोध्या के राज,
अभै बन बिचरहु हो!

—भोजपुरी लोकगीत

२७

मेरा मलेथ

कैसो च भण्डारी तेरा मलेथ?
देखी भाली ऐन सैवो मेरा मलेथ।
ढलकदी गूल मेरा मलेथ,
गाऊ मूडको घर को मेरा मलेथ।
पालगा की बाडी मेरा मलेथ,
लासण्या की क्यारी मेरा मलेथ।
गाइओ की गोठ चार मेरा मलेथ,
भैंसी को खुरीक मेरा मलेथ।
बाँदू का लडक मेरा मलेथ,
बैखू ढसक मेरा मलेथ।

—गढ़वाली लोकगीत

२८

हाली हुलु बरसू इनर देवता !

हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पडइछइ अकाले, हो राम।
चौर सूखल, चाचर सूखल,
सूखि गेल भइआ के जिराते, हो राम।
राडी बमनिआ हरवा जोतइछइ,
फरवा उछटि अडिया लगइछइ, हो राम।
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पडइछइ अकाले, हो राम।
धोबिआ आगन मे गादर गुदर पनिया,
ओही मे नहाये सब बमना, हो राम।
धोतिया फीचल जनेऊआ सोटल,
रची रची तिलक चढावे, हो राम।
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पडइछइ अकाले, हो राम।
जनमा के धीआ पुता कल्ह मल्ह करइछइ,
मालिक सब बेडियो न खोलइछइ, हो राम।
गाव के पटवरिया झूठे मूठे लिखइछइ,
सरले खेसारी बन तौलइ छइ, हो राम।
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पडइछइ अकाले, हो राम।

—मैथिली लोकगीत

७६

सजना कर आई चाकरी !

बैठ्या बाबो जी तखत बिछाय।
कागदिया तो आया जी बाबे जी रे हाडे रावरा।
कागद बाबा म्हाने बाच सुणाय।
काई रे लिख्यो छै बाबा जी कोरे कागदा।
कागद बाई जी बाच्यो ए न जाय।
छाती तो फाटे ये बाई सजना हिवडो ऊझलै।
एवड छेवड लिखी छै सात सिलाम।
बीच मे तो लिखियो ए बाई सजना वेग पधारण।
थे म्हारा बाबो जी बेदिल मत होय।
बारै तो बरसा लग करसा चाकरी।
करिया सजना मरदाना भेस।
करला ललकारया ए बाई सजना ढलती रात रा।
बूझ्यो सजना गाया रो ए गुवाल।
सीव बतावो रे भाई हाडे राव री।
या ही छै ओठी राजा जी री सीवा।
तालर थोडा ए बाई सजना सखर मोकला।
बूझ्यो सजना मलीडे रो पूत।
बाग बताओ रे माली का, राजा जी रो कूण सो।
यो ही छै ओठीडा हाडे जी रो बाग।
आमू तो पाक्या ओ ओठी जी नीबू रस भरया।
सजना बूझी पाणी री पणिहार।
होद बताओ ए पणिहारया हाडे राव रो।
यो ही छै सजना समद तलाव।
डेरा तो डाल्या ए बाई सजना समंद तलाव पर।

बूझ्यो सजना चेजारे रो पूत।
महल बतावो रे भाईडा हाडे राव रो।
यो ही छै ओठी राजा जी रो महल।
केल भबरखै रे आठीड़ा राजा जी रे बारणै।
भाभी म्हाने अचरज होय।
नैण नारी रा ये बोली बोलै मरद री।
एक बार देवर बागा मे ले चाल।
वेरो तो पाडा ओ देवरिया नारी मरद को।
नारी होय तो पड्या रिड्या फल खाय।
मरद हुवै तो तोडै फूल गुलाब को।
राजा जैमल पड्या रिड्या फल खाय।
गायड मल री सजना ओ या तोडै फूल गुलाब रो।
भाभी म्हाने अचरज होय।
नैण नारी रा ये आ बोलै बोली मरद री।
एक बर देवर ले चालो समद तलाव।
वेरो तो पाडा ओ देवरिया नारी मरद को।
नारी होय तो ईरा तीरा न्हाय।
मरदा मुछालो यो न्हावै समंद भकोल कै।
राव जैमल ईरा तीरा न्हाय।
गायड मल री सजना तो या न्हावै समंद भकोल कै।
भाभी म्हारे मन मे आवै रीस।
नैण नारी रा ये आ बोली बोलै मरद री।
एक बर देवर राय रसोई से चाल।
वैरो तो पाडा ओ देवरिया नारी मरद को।
नारी होय तो धीरे धीरे खाय।
मरद मुछालो तो यो भट दे जीभ चलू करै।
भाभी म्हारे मन मे आवै रीस।

नैण नारी रा ये आ बोली बोलै मरद की।
एक बर देवर सेजा मे ले चाल।
वेरो तो पाडा ओ देवरिया नारी मरद को।
नारी होय तो फूल ज्यू कुमलाय।
मरद मु छाले री सेजा ओ देवरिया सलवट, ना पडै।
होगी सजना घुडले असवार।
दिन तो उगायो ए बाई सजना बाबो जी रे देस मे।
उलगी सजना समद तलाव।
चुडलो दिखाया जी बाई सजना बावे हाथ रो।
उठ ओ बाबा जी ढकियो फलसो खुलाय।
बारै बरसा री ओ बाई सजना कर आई चाकरी।

—राजस्थानी लोकगीत

३०

राखी दिवासी आयो

राखी दिवासी आयो
लेवा आव म्हारा बीरा जी
हूँ कैसे आऊ
सिपरा नदी पूर
सिपरा के कापडो
चढाव म्हारा बीरा जी
हू चकरी-भवरा भेजू
तम खेलता आव म्हारा बीराजी!

—मालवी लोकगीत

३१

जगदेव भयो एक दानी

जगदेव भयो एक दानी।
जैसिंघ को बो लखटकियो भी कहियो फोजा को अगवानी।
जगदेव भयो० ॥
सौ राजा सोला सै रावत, बैठ्या सब नामी नामी ॥
जगदेव भयो० ॥
भरी सभा मे भाटण आई, जाचण जैसिंघ अभमानी।
जगदेव भयो० ॥
भरी सभा जगदेव ज जाच्यो, और जैसिंघ अभमानी ॥
जगदेव भयो० ॥
जैसिंघ को भाटण मान घटायो, जगजी को किवत बखाणी।
जगदेव भयो० ॥
उठ जगदेव गयो महला मे, जाय बूझी पटराणी ॥
जगदव भयो० ॥
सिर को दान भाटणी मागे, थे के कौ छो राणी।
जगदेव भयो० ॥
एक सीस राजा थे देस्यो। दूजो थारी पटराणी ॥
जगदेव भयो० ॥
सीस काट कर दियो थाल मे, जद जगजी की महाराणी।
जगदेव भयो० ॥
राजी होय वा चली भाटणी, लै के भीख मनमानी ॥
जगदेव भयो० ॥

—राजस्थानी लोकगीत

३२

सिंघ होसी सिंघणी को रेजायो ।

सिंघ होसी सिघडी को रे जायो ।
यो तो पूत जोर को जायो ।
जद नान्ये आ खबर सुणी है ।
बैरया दगे सूं जोरै नै मारयो ॥ सिंघ होसी० ॥
तन मन आग लगी रे नान्ये कै ।
क्रोध कलेजे रे छायो ॥ सिंघ होसी० ॥
रोस खाय नान्यो पड्यो धरण मे ।
माता हाडी रे आप उठायो ॥ सिंघ होसी० ॥
लाद्यो लाद्यो माता मोरी ढाल गेडे की ।
लाद्यो लाद्यो तेग दुधारो ॥ सिंघ होसी० ॥
लाद्यो लाद्यो माता म्हारा पॉचू कापड़ा ।
म्हारी लीली पर जींण मढाद्यो ॥ सिंघ होसी० ॥
बाबो सा' को माता बदसो ए ल्यू गो ।
मारु बैरया को कुटुमर् हजायो ॥ सिंघ होसी० ॥

— राजस्थानी लोकगीत

३३

माई के रोये से नदिया बहत है।

द्वारे मे इटिया न दइयो मेरे बाबुल।
बिटिया न दइयो परदेश ॥
द्वारे की इटिया खिसब जैहै बाबुल।
बिटिया बिसूरे परदेश ॥
किनने तो दीन्हों है सौ मन सुना।
किननें तो लहर पटोर ॥
माई ने दीन्हो है सौ मन सुना।
बाबुल लहर पटोर ॥
बिरना ने दीन्हो है चढन घुडल्ला।
भउजी गले का हार ॥
किनके रोये से से नदिया बहत है।
किनके रोये बेला ताल ॥
किनके रोये से छतिया फटत है।
किनके रे जियरा कठोर ॥
माई के रोये से नदिया बहत है।
बाबुल के रोये बेला ताल ॥
बिरना के रोये से छतिया फटत है।
भऊजी के जियरा कठोर ॥
माई के सोनवा जनम भर खैहौ।
फट जैहै लहर पटोर ॥
बिरना के घोडल्ला भनेजो को दैहो।
टूट जैहै गले को हार ॥
को जो कहे बेटी निस दिन अइयो।
को जो कहे दोऊ जून ॥

को जो कहे बहिनी अवसर अइयो।
को जो कहे कोई न काम ॥
माई कहे बेटी निस दिन अइयो।
बाबुल कहे दोऊ जून ॥
बिरना कहे बहिनी अवसर अइयो।
भौजी कहे कोई न काम ॥
किनकी बिटिया बिसर गई है,
किनकी गई सुध भूल !
किनकी बिटिया सावन मे आवे,
किनके जिया सुख चैन !
वे मइया बिटिया बिसरत है,
बाबुल का गई सुध भूल !
भइया की गलिया बिसर गई है,
भौजी का जिया सुख चैन !

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

३४

उठ कैं झार डारौ अलबेली नार अंगना !

उठ कै झार डालो अलबेली नार अगना !
काहे की बढनी काहे क्यार कगना।
काहे फूल बिथर रहे अगना ॥
मन कैय बढनी सुरत केर कगना।
प्रेम कैय फूल बिथर रहे अगना ॥
बाट के बटोही चलै पछी चलै झूमना।
गऊवन के फन्द छुटे कृष्ण चले यमुना ॥

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

३५

कहां गवांई सारी रात !

आज रैनिया बीती जाय,
इत के तारा उत खो होय गये, चन्दा गई पिछवार।
हमरे सिपहिया अबहुं न आये कहा गंवाई सारी रात ॥
भोर भये पहुं फाटन लागे सैया खखारत आयगे।
खोलहुं न तुम चन्दन किवरिया मेह रस भीजो रस ज्वान ॥
एक तो मेरी गोदी बलकवा दूजो उठो न जाय।
जाव न स्वामी वही सवति कै जहा गंवाई सारी रात ॥
चुप राहे धनिया चुप राहे धनिया, सुनी नगरिया के लोग।
अइहै मुन्सी दरोगा पकर लये जइहैं हसी सवतिया कैय होय ॥

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

३६

लाला हरदौल बुन्देला।

लाला हर दौल बुन्देला दोऊ बोरी करी महतारी, मोरे लाल।
जब लाला भये पाँच बरस के खेलन लगे फुलवारी, मोरे लाल।
जब लाला भये सात बरस के पढन लगे चितलाय, मोरे लाल।
जब लाला भये बारह बरस के बाँधन लगे हथियार, मोरे लाल।
जब लाला भये बीस बरस के मैया के परते पाँय, मोरे लाल।
इक दमडी को बिस लाओ री रनिया देवर देओ खवाय, मोरे लाल।
बडिन की बेटी बडे घर ब्याही का जानौ बनिया दुकान, मोरे लाल।
ऊँची अटरियाँ चन्दन किर्वारियाँ बोई बनिया की दुकान, मोरे लाल।
इक दमडी को बिस दे दो भैया, देवरे दरद न होय, मोरे लाल।
बिस लै कै रानी बंधौ चुनरियन, चढ गई राम रसोई, मोरे लाल।
हँस हँस पूँछै बारे से देवरा, काहे भौजी बदन मलीन, मोरे लाल।
रोटी करस मे धुआ लगो है, बोई से नैनन नीर, मोरे लाल।
सुनले मूरख, समझ ले मूरख, टूटी दाहिनी बाँह, मोरे लाल।
टूटन दे मोरी प्यारी सी धनिया, हीसा मे होय परे बैरी, मोरे लाल।
हीसा मे भैया बैरी लगत है, रन मे दाहिनी बाँह, मोरे लाल।
भौजी खो हते लाला लरका के थानिक, भैये केह जाने पाप, मोरे लाल।
लाला हरदौल बुन्देला दोऊ बोरी करी महतारी, मोरे लाल।

—बुन्देलखण्डी लोकगीत

३७

सिया दुलही क दुलहा !

कौन रंग मुँगवा, कौन रग मोतिया, कौन रगना ?
सिया दुलही क दुला कवन रग ना ?
लाल रग मुँगवा, सफेद रग मोतिया, सावर रग ना,
सिया दुल ही क दुलहा सावर रग ना ।
कहाँ सोहै मुँगवा, कहाँ सोहै मोतिया, कहाँ सोहै ना ?
सिया दुलही क दुलही कहाँ सोहै ना ?
माँग सोहै मोतिया, मौर सोहै मुँगवा, पलग सोहै ना,
सिया दुलही का दुलहा पलग सोहै ना,
छिटिजैहै मोनिया, बिखरि जैहैं मुँगवा, रिसाई जइहै ना,
सिया दुलही क दुलहा रिसाई जैहै ना ।
बिन लेबै मोतिया, बटोर लेबै मुँगवा, मनाई लेबै ना ।
सिया दुलही क दुलहा मनाई लेबै ना ।

—अवधी लोकगीत

२८

जो पूता रहले ऊबार !

जौ पूता रहले ऊबार अउर गभुवार।
सोने के छुरवा गढावै बाबा तुम्हार।
सोने के छुरवा गढावै तो दादा तुम्हार।
जौ पूता रहते ऊबार अउर गभुवार।
सोने के छुरवा गढावै तो चाचा तुम्हार।
फूफा तुम्हार, जीजा तुम्हार नाना तुम्हार।
जौ पूता रहले ऊबार अउर गभुवार।
सोने के छुरवा गढावै तौ बाबा तुम्हार।
गभिनी हिरनिया न मारै बाप तुम्हार।
लाल पियर न पहिरै माया तुम्हार।
हाँथ पसार न जूझै माया तुम्हार।
जो पूता रहले ऊबार अउर गभुवार।

—अवधी लोकगीत

३६

जौ मै जनतेऊ होरिलवा छेदना तुम्हार !

जो मै जनतेऊ होरिलवा छेदन तुम्हार।
सोने कै सुइया गढावै बाबा तुम्हार।
सोने कै सुइया गढावै दादा तुम्हार।
चाचा तुम्हार, जीजा तुम्हार, फूफा तुम्हार।
जो मैं जनतेऊ होरिलवा छेदन तुम्हार।
सोने कै बारी गढावै नाना तुम्हार।

—अवधी लोकगीत

४०

कोखि दुख रोवहुँ हो !

चलहु न सखिया सहेलरि जमुनहिं जाइय हो।
जमुना का निरमल नीर कलस भरि लाइय हो।
कोउ सखी भरै कोउ मुख ध्वावहिं हो।
कोउ सखी ठाढी नहाय कि तिरिया चकरोवहि हो।
की तुम्हे सास ससुर दुख की मइकै दूरि बसै।
बहिनी की तुम्हरे पिय परदेस कवन दुख रोवहु हो।
ना मोरे साम ससुर दुख न मइके दूरि बसै।
बहिनी ना मोर पिय परदेस, कोखि दुख रोवहुँ हो।

—अवधी लोकगीत

४१

तुण तुण तुण !

निक्का बाण म जी बुण
कन्नाधर के सुण, वे माहिया !
मुँह त्रैलच धो गए ओ
मैले साडे कपडे, चन्ना
आशक का ही उत्ते हो गये ओ !

—पंजाबी लोकगीत

४२

मोरे अंगना चन्दन रुखवा तौ लहर लहर करै हो ।

मोरे अगना चन्दन रुखवा तौ लहर लहर करै हो ।
मोरी सखी बोलत ओह पर काग तौ बोल सोहावन हो ।
की काग तुम नइहर से आए कि हरि जी पाठायेनि हो ।
काग कउन संदेस तुम लाए कि बोल सोहावन हो ।
नहिं हम नइहर से आए न हरि जी पठायेनि हो ।
आज के नवए महीना होरिल तुम्हरे होइहँइ हो ।
चुप रहौ काग तुम चुप रहौ, बैरीन सुनि पावै हो ।
यक तौ बिटियही मोरी कोखि दुसर हरि दारुन हो ।
आठै नो मास बिताय होरिल तब जनमे हो ।
बाजी है अनन्द बधाई, गवन लगे सोहर हो ।
तुम हौ परोसिन मेरी मात कि तुम हो बहिनिया हो ।
कागा का ढूँढि मगाव मै सोनवा मढइहा हौ ।
सोने ते मढइबे जोह कै चोच तौ रुपा पख हो ।
सोने के कटोरिया मा दूध और मात खवइबै हो ।

—अवधी लोकगीत

४३

तुलसी दियना मै बारेंवं रमइया बर पायेंव ।

चन्दन केरी चउकिया मोतिन लागी झालर,
तेहि चढि राम नहाय सितल रानी बिहँसै ।
मचियै बैठी सितल रानी सखिया सब पूछै,
कौना किहेव ब्रतनेम रमइया वर पाइउ ।
कातिक मास नहायेव सुरुज पइया लागेव,
तुलसी दियना मै बारेंव रमइया वर पायेव ।
माघ ही मास नहायेव आगिन नही तापेव,
विधि कै रहेव इतवार रमइया वर पायेव ।

—अवधी लोकगीत

४४

काहे क चनना उतारेउ ?

काहे का चनना उतारेउ कपुरवा भरायउ,
रानी केही देखि चढलिउ अटरिया केही देखि मुरझिउ ।
होरिला कै चनना उतारेव कपुरवा भरायों,
साहब राउर देखि चढलेउ अटरिया सवति देखि मुरझे उ ।
तू तौ रेंडे कै केवडिया फट से टुटबिउ रानी,
हम तौ बास कै कइनिया नवाये नही टुटबै ।

—भोजपुरी लोकगीत

४५

गोहन कैसे लागौ ?

पतरी धना लौ लसिया कुसुम अस सुन्दर,
ठाढी भई बाबा के दरवजवा नयन ऑसू भुइया गिरे।
घोडवा चढे एक राजपूत ललरी बहुत करै,
कौन बीरोग तोहरे जियरा नयन ऑसू भुइया गिरे।
किय तोहे सास ससुर दुख किय नैहर दूरि बसै,
किय तोरि हरि परदेस कवन दुख रोयेउ।
नहीं मोर सासु ससुर दुख नाही नैहर दूरि बसै,
हमरा बलम परदेस नयन ढुरि भुइया गिरे।
कै लेहु सोरहो सिगार बतिसौ अभरनवॉ,
रानी लगी लेहु हमरो गोहनवॉ दरस कइ आवो।
ससुरा तो है रजवाडा जेठ सूबेदरवा,
वोई हरि असली सिपहिया गोहन कैसे लागौ ?
यतनी बचन सुनि राजा, घोडा उतरि परे,
मैया अस बउरहिया तिरिअवा अपन नहिं चीन्हे।

— अवधी लोकगीत

४६

राम चले है मधुबन का कठिन दुख देई गए

राम चले है मधुबन का कठिन दुख देई गए,
देई गए चनन केवडिया जजिरिया चढाई गए।
कब लौ गगा झुरइहै सेवार नाही लगिहै,
कब लौ रामा लवटिहै कटब दुख आपन।
जेठ ही गगा झुरइहै सेवार नहि लगिहै,
कातिक लवटै राजा रामचन्द्र कहब दुख आपन।
तुहू राम बैठो सिंहासन हम रानी मचिया,
कहहु न जिया कै विरोग कवन दुख तोहके।
सासु दुख सेधुरा न दीन्हो ननद दुख काजर,
देवर दुख सेजिया ना सोयेव तौ हमका इहै दुख।
दै लेहु मँगिया मे सेदुर अँखिया मे काजर,
रानी सोइ लेहु हमरी सेजरिया त दुख तोर मिटि जाय।

—अवधी लोकगीत

४७

पनवा की नइयां राम पातर

पनवा की नइया राम पातर सुपरिया अस हुर हुर,
फुलवा बरन हलुकइया केसर अस महके।
समझौ मोरे राम उहै दिन जेहि दिन जनम भए,
बिन रे सुपेन बिन आखत भुइया परि लेटेव।
समझौ मोरे राम उहै दिन जेहि दिन तिलक चढी,
सोने के खरौआ मोर बाबा मोतिन केरो अच्छत।
समझौ मोरे राम उहै दिन जेहि दिन बिआह भए,
निहुरी निहुरी मारेव अगुठवा सेंदुर पहिरायो।
समझौ मोरे राम उहै दिन जेहि दिन गौन लायव,
खोलीखोली बिरवा कुचाएव मुसुकियन बिहसेव।
समझौ मोरे राम उहे दिन जेहि दिन बनहि गयेव,
बिन रे लोटा बिन डोरी पिअसवन मरि गयेव।
समझौ मोरे राम उहै दिन जेहि दिन बिपत परी,
कुस रे ओढन कुस डासन बन फल भोजन किहेव।

—अवधी लोकगीत

४८

अचरा भभकि उठा !

झीने झीने गोहुवा बासे कै डेलरिया
ननदी भौजैया गोहुवा पीसै मोरे राम ॥
रोजै तो आओ देवरा दुइरे सिपहिया
आज कइसे आयउ अकेलवा मोरे राम ॥
कैसन भीजी देवरा तोरी रे पनहिया
कैसन तेगवा तोरा भीजा मोरे राम ॥
सितियन भीजा भौजी मोरी रे पनहिया
हरिनी सिकरवा तेगवा भीजा मोरे राम ॥
देहु न बताई देवरा रे गोइया
तोहे छोडि कहू न जाबै मोरे राम ॥
कहवै मार्यो कहवै बहायउ
कहा कै चिल्हरिया मडराय मोरे राम ॥
उचंवै मारेउ खलवै बहायउ
सरगे चिल्हरिया मडरानी मोरे राम ॥
बन मे चनन कै लकडी बटोर्‌यो
चितवै किहौ तैयार मोरे राम ॥
जाहु जाहु देवरा अगिया लै आओ
स्वामी क आगि हम दैबै मोरे राम ॥
जौ तुम होउ स्वामी सच क बिअहुता
अचरा अगिनिया लइ उठौ मोरे राम ॥
अचरा भभकि उठा सतिना भसम भई
देवरा मीजै दूनौ हाथ मोरे राम ॥
जौ हम जनतेउ भौजी दगवा कमाबिउ
काहे क मरतेउ सग भैया मोरे राम ॥

—अवधी लोकगीत

४९

बूंदन भीजै मोरी सारी

बूंदन भाजै मोगी सारी,
मै कैसे आऊं बालमा ॥१॥
एक तौ मेह झमा झम बरसै,
दूजे पवन झकोर ॥२॥
आऊं तो भीजै मोरी सुरङ्ग चुनरिया,
नाहित छुटत सनेह ॥३॥
नाही डर बहुअरि भीजै क चुनरिया,
डर बहुअरि छूटै क सनेह ॥४॥
सनेह से चुनरी होइहै बहुअरि,
चुनरी से नाहिन सनेह ॥५॥

—अवधी लोकगीत

५०

हमरा लिखल ऐ अम्मा अति बड़ि दूरि

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहिया से भात रे भात ।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बडे भिनु रे सार ॥१॥
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हसी खुशी रे द ।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ रीसियाइ ॥२॥
हम अउ बिरना ऐ अम्मा जनमे एक रे सग ।
सग सग खेलेऊं रे अम्मा खायऊ एक रे सग ॥३॥
भइया के लिखल ऐ अम्मा बाबा कइरे राज ।
हमरा लिखल ऐ अम्मा अति बडी दूरि ॥४॥
अगना घूमि आ रे घूमि बाबा जे रोवै ।
कतहूँ न देखऊ ऐ बेटी नुपुरवा झनकार ॥५॥

—भोजपुरी लोकगीत

५१

सासु मोरि कहेलि बंझिनियाँ

सासु मोरी कहेलि बझिनियाँ ननद ब्रज बासिनि हो।
रामा जिनका मै बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो॥
घर से निकरि बझिनियाँ जगल बिच ठाढो हो।
रामा बन से निकरी बघिनिया तो दुख सुख पूँछइ हो॥
तिरिया कौनी बिपति की मारी जगल बिच ठाढी हो।
सासु मोरी कहेली बझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो॥
बाघिन जिनकी मै बारी बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
बाघिन हमका जो तुम खाइ लेतिउ बिपतिया से छूटित हो॥
जँहवा से तुम आइउ लउटि उहा जाओ तुमहि नाही खइबइ हो।
बाझिनि तुमका जो हम खाइ लेबइ हमहुँ बाझिनि होबइ हो॥
उहाँ से चलेलि बझिनियाँ बिबउरी पासे ठाढी हो।
रामा बिबउरि से निकरी नगिनिया तो दुख सुख पूँछइ हो॥
तिरिया कौने विपति की मारी बिबउरि पास ठाढी हो।
सासु मोरी कहेली बझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो॥
नागिन जिनकी मै बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
नागिनि हमका जो तुम डसि लेतिउ बिपति से हम छूटित हो॥
जहवा से तुम आइउ लउटि तहाँ जावो तुमहि नाही डसिबइ हो।
बाझिनि तुमका जो हम डसि लेबइ हमहू बाझिन होबइ हो॥
उहवाँ से चली बझिनियाँ मइया द्वारे ठाढी हो।
भितरा से निकरी मयरिया तो दुख सुख पूँछइ हो॥
बिटिया कउनि बिपति तुमरे ऊपर उहाँ से चली आइउ हो।
सासु मोरी कहेलि बझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो॥
मइया जिनकी मै बारि बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
मइया हमका जो तुम राखि लेतिउ बिपति से हम छूटित हो॥

जहवाॅ से तुम आइउ लउटि उहाॅ जाओ तुमहिं नाही रखिबइ हो ।
बिटिया तुमका जो हम राखि लेबइ बहू बाँझिनि होइहँइ हो ॥
उहवाॅ से चलेली बँझिनियाॅ जगल बिच आई हो ।
धरती तुमही सरन अब देहु बझिनी नाम छूटत हो ॥
जहवाॅ से तुम आइउ लवटि उहा जाओ तुमहिं हम न राखब हो ।
बाॅझिनि तोहके जो हम राखि लेई हमहूँ होब ऊसर हो ॥

—अवधी लोकगीत

५२

..त नौबति बाजइ हो !

चैतहि कै तिथि नवमी त नौबति बाजइ हो ।
बाजै दशरथ राज दुवार कौशिल्या रानी मदिर हो ।
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि जुलि आवहु हो ॥
जहाॅ राजा के जनमे है राम करिय नेवछावरि हो ।
केउ नावै बाजूबन्द केउ कजरावट हो ॥
केउ नावै दखिनवा कै चीर करहि नेवछावरि हो ।
भितरा से निकसी कौशिल्या अगनवहिं ठाढी भई हो ॥
रानी धई धई हिरदै लगावै करैं नेवछावरि हो ।
राम के मथवा चननवा बहुत निक लागै हो ॥
राम नयन रतनारे कजर भल सोहै हो ।
दान्हो रचि रचि फूआ सुभद्रा तउ पतरी अगुरियन हो ॥
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो ।
जैसे फूलन के बिच बिच कलियाॅ बहत निक लागै हो ॥
राम के गोडवा घुँघुरुवा बहुत निक लागै हो ।
नान्हे गोडवन चलत बकैया देखत राजा दशरथ हो ॥

—अवधी लोकगीत

५३

जो मै जनतेऊ ये लवंगरि एतनी महंकबिउ ।

जौ मै जनतेऊ ये लवगरि एतनी महकबिउ ।
लवगरि रगतेउ छयलवा क पाग सहरवा मे गमकत ॥
अरे अरे कारी बदरिश्रा तुहइ मोरि बादरि ।
बादरि जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ॥
बाउ बहइ पुरवइया त पछुश्राँ झकोरइ ।
बहिनी दिहेउ केवडिया अठोगाइ सोवउ सुख नादरि ॥
कि तुहूँ कुकुरा बिलरिया सहर सब सोवइ ।
कि तुहूँ ससुर पहरिश्रा किवरिश्रा भडकावहु ॥
ना हम कुकुर बिलरिया न ससुर पहरिश्रा ।
धन हम अही तोहरा नयकवा बदरिया बुलायसि ॥
आधी राति बीति गई बतियाँ निराई राति चितियाँ ।
बारह बरस का सनेहिया जोरत मुर्गा बोलइ ॥
तोरेबउ मै मुर्गा क ठोर गटइया मरोरबेउ ।
मुर्गा काहे किहेउ भिनुसार त पियहि बतायउ ॥
काहे क ये रानी तोरबिउ ठोर गटइया मरोरबिउ ।
रानी होइ गइ धरमवा क जून भोर होत बोलइ ॥

—अवधी लोकगीत

५४

राजा, पाये रतन अनमोल !

देहरी के ओट धन ठुनकइ उनुन ठुनुन करइ रे।
राजा हमरे तिलरिया कै साध तिलरिया हम लेबइ ॥
एक तो कारी कोइलिया औ दुसरे छुछुन्दरि।
रानी तोहरेउ तिलरिया क साध तिलरिया काउ करबिउ ॥
एतनी बचन रानी सुनलिन मन मे बिरोग भवा, जियरा दुखित भवा।
रानी कोइछा मे लिही तिल चउरा त देव मनावइ, सुरजा मनावइ ॥
आठ महीना नौ लगतइ, होरिल जनम लिही, बबुआ जनम लिही रे।
बहिनी बाजइ लागी अनद बधइया उठन लागे सोहर ॥
अंगनइ बजत बधइया भितर मोरे सोहर हो।
बहिनो सतरग बाजइ सहनइया ससुर द्वारे नौबति रे ॥
हकडहु नगर के सोनरा हाली बेगी आवइ, और जल्दी आवइ रे।
सोनरा गढि लाओ सोने क तिलरिआ मै रानी का मनावऊ ॥
हकडहु नगर के बरई हाली बेगी आवइ जल्दी से आवइ।
बरई मोहर क बिरवा लगावउ लछमी मनावऊ ॥
दहिने हाथे लिहिन तिलरिया बाये हाथे बिरवाउ रे।
राजा झमकि के चढि गै अटरिआ तो रनिया मनावइ ॥
सूतल रनियाँ मनावइ जाँघ बैठावइ।
रानी छोंड देव मन कै बिरोग पहिरो रानी तिलरी ॥
राजा हम तौ कारी कोइलिया तिलरी नाही सोहइ।
राजा हमरे पलग मति बैठौ सावर होइ जाबेउ रे ॥
राजा होरिला दिहिन भगवान त तुम्हरे धरम से हो।
राजा पाये रतन अनमोल तिलरिया काउ करबइ हो ॥

—अवधी लोकगीत

५५

देत सुनर एक सेंदुर भइउं पराई !

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नाही जागै,
देत सुनर एक सेदुर भइउं पराई।
भैया भैया गोहरावौं भैया नाही बोलै,
देत सुघर एक सेदुर भइउ पराई।
बन मा फूली बेइलिया अतिहि रुप आगरि,
मलियै हाथ पसारा तौ होओ हमारि।
जनि छुवो ये माली जनि छुवो अबही कुवारि,
आधी राति फुलबै बेइलिया तौ होब तुम्हारि।
जनि छुवो ये दुलहा जनि छुवो अबही कुवारि,
जब भोर बाबा सकलपै तौ होब तुम्हारि।

—अवधी लोकगी

५६

भौजी, जैसे कौसल्या रानी माता !

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौं॥
जब से हम परे रे राम घर राजा दशरथ घर।
जरि बरि भइउ मै कोइलिया त जरि के भसम भइउं॥
सभवा बैठे है रामचन्द्र पुछाइन राजा दशरथ।
पुता कौन सितल दुख दिहेउ सखिन सग रोवै॥
हसि कै धनुख उठाइन बिहसि कै पैठिन।
सीता अब मुख सोवउ महलिया गुपुत होइ जावै॥

अरे रे लछिमन देवरा बिपतिया के नायक।
देवरा भइया के लावउ मनाय नाहीं त विष खावै ॥
अरे रे भौजी सीतल रानी बडी ठकुराइन।
देहुना तिरिया कमनिया मै भइया खोजै जैहो ॥
दूढयो मै नग्र अयोध्या और पुर पाटन।
देवरा दूंढेउ नाही गुपुत तलौवा जहा राम गुपुत भये ॥
केहि के मै सेजिया बिछावो फूल छितरावो।
देवरा केहि केहि के मैं लागो टहलिया त दुख बिसरावो ॥
हमरेन सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु।
भौजी हमरे न लागो टहलिया त दुख बिसरावहु।
जौने मुख अमवा खायौ अमिलिया कैसे चीखउ।
जौने मुख लछिमनि कहि गोहरायउ पुरुख कैसे भाखउ ॥
अरे रे पापिनि भौजी पाप जनि बोलौ।
भौजी जैसे कौसिल्या रार्नी माता वैसेन हम जानौ ॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौ।
बुडकी मोरि अमिथा होइ जो धन कहि गोहरावहुँ ॥

— अवधी लोकगीत

५७

बढ़ै बबैया तोर बेल मान मोर राखेउ

अरे अरे काला भवरवा आगन मोरे आवो ।
भवरा आजु मोरे काज बियाह नेवत दै आवो ॥
नेवत्यौ मै अरगन परगन और ननिआउर ।
एक नहि नेवत्यो बिरन भैया जिनसे मै ऐंठिउं ॥
सासु भेटै आपन भइया ननद आपस बीरन ।
कोइलरि छतिया उठी घहराय मै केहि उठि भेटौ ॥
अरे अरे काला भवरवा आगन मोरे आवो ।
भवरा फिरि से नेवता दै आवो बीरन मोर आवै ॥
अरे अरे जागिनि भाटिनि जनि कोई गावो ।
आजु मोरा जियरा बिरोग बिरन नहि आये ॥
अरे अरे चेरिया लौडिया दुबारा झाकि आवो ।
केहकर घोडा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भये ॥
अरे अरे रानी कौशिल्या बीरन तुमरे आये ।
उनही के घोडा ठहनाय दुवारे अति भीर भये ॥
आगे आगे चौरा चगेरवा पियरी गहागह ।
लिल्ले घोडे भैया असवार तो डडिया भाउज मोरी ॥
अरे अरे जागिनि भाटिन सभै कोई गावो ।
मोरे जियरा भये है हुलास बिरन मोर आये ॥
अरे अरे सासु गोसाईं करहिया चढावो ।
आजु मोरा जियरा हिलोरै बीरन मोर आये ॥
अस जिन जानौ बहिनी कि भैया दुखित अहै ।
ननदी बेचबौ मै फाडे क कटरिया चौक लइ अइबे ॥
अस जिन जानौ ननदी कि भौजी दुखित अहैं ।
बहिनी बेचबौ मैं नाके क बेसरिया पिआरिया लइके अइबे ॥

कहवा उतारौ चौरा चगेरवा पियरी गहागह ॥
कहवा भेटौं बारन भैया तौ कहवा भाउज मोर ॥
ओबरी उतारौ चौरा चंगेरवा पियरी गहागह ।
डेवढी भेटौ बीरन भैया अगना भाउज मोर ॥
लहगा लै आये बीरन भैया पिअरी कुसुम के ।
अगिया लै आई मोरि भौजी चौक पर कै चूदरि ॥
हसि हसि पहिरिन ओढिन सुरुज मनाइन ।
बढै बबैया तोर बेल मान मोर राखेउ ॥

—अवधी लोकगीत

५८

बेला फूले आधीरात !

बेला फूल आधी रात, गजरा मै की के गरे डारो ।
ये गजरा मै ससुर गरे डारो, ससुर गरे डारो—
सासो जू को राज, गजरा मै की के गरे डारो ।
ये गजरा मै जेठा गरे डारो, जेठा गरे डारो—
जिठानी को राज, गजरा मै की के गरे डारो
ये गजरा मै देवर गरे डारो, देवर गरे डारो—
देवरनिया को राज, गजरा मै की के गरे डाडो ।
ये जगरा मै सैया गरे डारो, सैया गरे डारो—
सौतिनिया को राज, गजरा मै की के गरे डारो ॥

— बुन्देलखण्डी लोकगीत

५६

थारी बरोबरी म्हे करांस !

बनवारी हो लाल को न्या थारे सारै ।
गिरधारी हो लाल को न्या थारे सारै ॥
औ महल मालिया थारे । थारीबरो बरी मै करास,
कोई टूटी टपरी म्हारे ।
गिरधारी हो लाल ॥
औ काम धेनवा थारे । थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई भैस पडाडी म्हारे ।
बनवारी हो लाल ॥
औ हाथी घोडा थारे । थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई ऊँट-टोडडा म्हारे ।
गिरधारी हो लाल ॥
औ भाला बरछा थारे । थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई जेली गडासी म्हारे ।
बनवारी हो लाल ॥
औ रतनागर सागर थारे । थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई ढाब भर्या है म्हारे ।
गिरधारी हो लाल ॥
औ तोसक-तकिया थारे । थारी बराबरी म्हे करास,
कोई फाटी गुदडी म्हारे ।
बनवारी हो लाल ॥
औ राधा-राणी थारे । थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई एक जाटणी म्हारे ।
गिरधारी हो लाल ॥

—राजस्थानी लोकगीत

६०

वाद्य करो, वाद्य करो

वाद्य करो, वाद्य करो
एमनी वाद्य करो।
जेमर्नी सुनते मनोहर
इनाम पावे बहुतर
वाद्य करो, वाद्य करो।
जेमनी सुनते मनोहर
जलफानी दिबो बहुतर
मइयार माये दिबे जलफानी
कासा बाजा हर
वाद्य करो, वाद्य करो।
जेमर्नी सुनते मनोहर
बखशीश दीबे बहुतर
मइयार बाबा दीबे बखशीश
परिते तशार
वाद्य करो, वाद्य करो।
जेमनी सुनते मनोहर
वाद्य करो, वाद्य करो!

—बंगला लोकगीत

६१

साडे बेहड़े सूरज चढ़िया, सूरज चढ़िया

साडे बेहडे सूरज चढिया, सूरज चढया
सूरज देखण आओ गाँधी, आओ गाँधी।
तू वे तो इक्क सूरज ए, इक्क सूरज एं
सूरज देखण आओ गाँधी, आओ गाँधी।
किक्कुण आवा भोलिये, मैं नूं
कम्म हजार, कम्म हजार।
मेरे चरखे चो निक्कालिया अजान
लम्मस लम्मा तार, लम्म सलम्मा तार।
अग्रेज कहे मै जारिहा, जा रिहा
गाँधी आखे बेलीया तू छेतीजा, छेतीजा।
अग्रेज कहे मेरे कराडा खुब्भा, कराडा खुब्भा
गाँधी आख बेलीया दस्स कित्थे खुब्मा, कित्थे खुब्मा।
गाधी कराडा खिच्च लिया, खिच्च लिया
अग्रेज पया अज्ज लम्मडे राह, लम्मडे राह।
लोकी भैड़े लड रहे गाँधी दा की दोष, की दोष
हटके बैठो भैडियो वे कर देखो कुछ होश, कुछ होश।
सूरज रिश्मा छड्डिया अज चमके धरती, चमके धरती
गाँधी मत्था टेकिया अजखुश ए धरती, खुश ए धरती।

—पंजाबी लोकगीत

परिशिष्ट १

लोकवार्ता का अध्ययन

वाई० एम० शोकोलव

लोकगीतो के अध्ययन के सम्बन्ध मे यहा ससार प्रसिद्ध विद्वान अकेदेमीशियन वाई० एम० शोकोलव के कुछ विचारो को दिया जा रहा है। यद्यपि शोकोलव ने रूसी लोकगीतो को ध्यान मे रख कर ही अपने सिद्धान्त स्थिर किये हैं, परन्तु वे सिद्धान्त ऐसे हैं जिनके सहारे ससार के किसी भी देश के लोकगीतो का अध्ययन किया जा सकता है। रूस की तरह भारत भी सामन्तवादी व्यवस्था से आगे बढ कर समाजवादी व्यवस्था अपना रहा है। इसलिये उसे भी अपनी प्राचीन सास्कृतिक निधियो का पुनर्मूल्याकन उसी प्रकार करना होगा जिस प्रकार सोवियत रूस मे हुआ। जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तो का सहारा लेकर शोकोलव ने सोवियत रूस के लोकगीतों का अध्ययन किया वे सिद्धान्त अब लोकवार्ता और लोक सस्कृति के विद्वानों द्वारा स्वीकृत किये जा चुके हैं।

अपनी पुस्तक 'रशियन फोकलोर' के प्रथम अध्याय—'लोकवार्ता का स्वभाव और उसकी समस्याऍ' में शोकोलव ने इस विशेष अध्ययन के सिद्धान्त पक्ष का विवेचन किया है जिसका साराश यहॉ दिया जा रहा है।

लोकगीत जनसाधारण की अलिखित काव्य रचना है। यदि इसके साथ साहित्य शब्द जोडना है—साहित्य के लिखित रूप से यहॉ तात्पर्य नहीं है, बल्कि यहॉ हम साहित्य को उसके व्यापक अर्थ मे ले रहे हैं—तो हमें लोकगीतों को उसकी विशेष शाखा के रूप मे समझना पडेगा। इस प्रकार लोकगीतो को भी साहत्यिक अनुसधान और अध्ययन का विषय मानना

पडेगा। अनेक बार पाश्चात्य विद्वानो ने अपना मत प्रकट किया है कि लोकगीता और साहित्यिक अध्ययन मे घनिष्ट सम्बन्ध है। पिछले वर्षो मे सोवियत विद्वानो ने इस विचार को सुनिश्चित रूप दे दिया है। पहिले योरप मे 'लोक साहित्य' अथवा 'लोकगीत' शब्द का बहुत प्रचलन था। परन्तु इन शब्दो को जिस अर्थ मे उन्नीसवी सदी मे और उसके बाद भी प्रयुक्त किया गया, वह अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है। बाद मे इसे अलिखित 'मौखिक' साहित्य कहा गया और, अत मे 'लोक साहित्य अथवा 'लोकगीत' शब्द का प्रयोग होने लगा। परन्तु बाद मे इन शब्दो का अर्थ बदल गया। मगर हम 'लोक वार्ता' शब्द को ही अधिक समीचीन समझते है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे इसी शब्द का प्रयोग मान्य है और इसका प्रयोग करने से वैज्ञानिक ढग से काम करने मे सुविधा भी होती है। लोकवार्ता के अन्तर्गत मौखिक काव्य और दूसरी कलाओ का सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। इस तरह लोकवार्ता दृश्य कलाओ (मूक नृत्य, नाट्य कला आदि) के निकट आ जाती है। मौखिक साहित्य—गीत, कहानी, कहावत आदि की जडे श्रमशील जन साधारण के जीवन मे होती हैं, इसलिये 'लोकवार्ता' के विद्वान को किसी हद तक मानव जाति के विकास का ज्ञाता भी होना पडता है, वरना वह लोक वार्ताओ की सही व्याख्या करने मे असफल रहेगा। इसी तरह लोकवार्ता के विद्वान को भाषाविद् भी होना पडेगा। वह जिस अलिखित काव्य साहित्य का सग्रह करता है उसके सम्यक् अध्ययन के लिये उसे भाषा, बोली आदि का भी विद्वान होना पडेगा। इस प्रकार इस क्षेत्र के विद्वान को रग मच, सगीत शास्त्र, मानव जाति शास्त्र आदि का ज्ञाता होना पडेगा।

लोक साहित्य और कलात्मक साहित्य मे अन्तर क्या है? पहिले यह समझा जाता था कि लोक साहित्य का रचयिता कोई एक व्यक्ति नहीं होता जबकि लिखित साहित्य का कोई न कोई रचयिता अवश्य होता है। दूसरे, लोक साहित्य को कला विहीन और कलात्मक साहित्य को कला-मण्डित माना जाता था। परन्तु ये दोनो बाते तथ्य-हीन साबित हो चुकी हैं। इन प्रश्नो के सम्बन्ध मे गम्भीर अध्ययन हो चुका है। यह कथन

बिल्कुल गलत है कि लोक साहित्य का रचयिता कोई एक व्यक्ति नही होता। इसके उल्टे यह साबित हो चुका है कि इसके रचयिता थे और वे कला, शिक्षा-अनुशीलन, कुशाग्रता तथा स्मरण शक्ति मे बहुत आगे बढे हुये थे। यह भी साबित हो चुका है कि मोखिक गीत गाने वाले अक्सर उनके रचयिता भी रहे है। ऐसे लोगो मे कुशाग्र बुद्धि वाले लोग रहे है, साधारण बुद्धि वाले, कल्पनाशील लोग भी रहे हैं और केवल नकल करने वाले भी। इस कला की सेवा करने वाले अनुभवी भी रहे हैं और नौसिखिए भो, विनोदी हँसोड भी रहे ह और कठोर नैतिकतावादी भी। इस प्रकार कलात्मक साहित्य के रचयिताओ की ही भाँति अलिखित साहित्य के रचयिताओ मे भो वैसे ही भिन्न भिन्न प्रकार की योग्यता तथा स्वभाव वाले व्यक्ति रहे है। इसलिये 'लोकवार्ता' को ऐसी रचना समझना जिसका कोई रचयिता न हो, सर्वथा गलत है।

लोकगीतो मे लेखक अथवा रचयिता का नाम नही होता। इसी के आधार पर लोग अक्सर कह देते है कि इनका कोई रचयिता ही नही था। परन्तु यह तो बिल्कुल ऊपरी बात है। रचयिताओं के नाम उनकी रचनाओ के साथ जुडे नही रह सके। क्यो? इसलिये कि उनकी रचनाएँ अलिखित थी। वे तो लोगा के मस्तिष्क मे बनी रही और लेखको का नाम धीरे-धीरे छूट गया। अनेक ऐसे गीत भी प्राप्त हो चुक है जिनमे रचयिताओ के नाम भी उनक साथ जुडे रहे हैं।

यदि परिश्रम करके विभिन्न गीतो के विकास का इतिहास खोजा जाय तो अनेक गीता के रचयिताओ का पता चल सकता है। परन्तु यह प्रयास बेकार ही है क्याकि अधिकतर रचयिताओ के नामा का पता लगना प्राय असम्भव है। रचना के समय इन लोगा ने अपना नाम जोड़ना बहुत महत्वपूण नही समझा। वे गीत लिखे भी नही गये। मौखिक परपरा मे ही वे गीत जीवित रहे हे। परन्तु लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य मे अन्तर की मुख्य पहिचान यह विशेषता ही नही है। लिखित साहित्य मे प्रतिभा सम्पन्न रचयिता अपना नाम जोड दिया करते थे और वे नाम अन्त

तक बने भी रहे। सामन्तवादी युग की अपेक्षा पूँजीवादी युग मे यह परपरा अधिक बलवती हुई।

इसके साथ ही इस भ्रम को भी हटा देना पडेगा कि लोक-साहित्य अथवा लोक वार्ता मे कला नही होती। थोडा निकट से, गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर पता चल जायेगा कि वहाँ प्राय हर कदम पर, कलात्मक कौशल और साहित्यिक कला के तत्त्व मिल जायेंगे। कहानी कहने वाले, वर्णन करने वाले और गीतकार अपनी कला में कितना परिश्रम करते हैं यह बात लोकवार्ता के विद्वानो से छिपी नही है।

अक्सर लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य मे भेद इस सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है कि लोकवार्ताओं के पाठ मे प्राय अन्तर होता है। लिखित साहित्य मे पाठभेद नही होता। यह सही है कि मौखिक साहित्य मे एक ही पाठ नही होता और लिखित साहित्य मे पाठ एक ही होता है। लेकिन लिखित साहित्य मे अक्सर पाठान्तर होता है, इस तथ्य को सभी लोग जानते हैं। मुद्रण कला के विकास के पहिले पाण्डुलिपियाँ और हस्तलिपियाँ तैयार की जाती थी। अक्सर मूल में सुधार भी कर दिया जाता था। कभी मूल को बडा या छोटा भी कर दिया जाता था। यही नही, मुद्रण कला के विकास के बाद जब पुस्तके छपने लगी तब भी पाठान्तर होते रहे। स्वभावत पाठभेद का यह तत्व मौखिक साहित्य मे लिखित साहित्य से अधिक रहा। कथावाचक या गायक अपनी स्मृति पर जोर देकर ही पुराने पाठ को दोहराया करता था। प्राय ऐसा भी हुआ है कि एक व्यक्ति एक कहानी अथवा गीत को जितनी बार दोहराता है उसमें कुछ न कुछ भेद हो जाता है। परन्तु लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य का यह अन्तर भी कोई मूलभूत अन्तर नही है।

अब परपरा का प्रश्न आता है। अक्सर विद्वान इस तत्व को लिखित और मौखिक साहित्य के अन्तर का आधार मानते हैं। मगर हम यहाँ भी यही कहेंगे कि यह अन्तर भी गुणपरक नही, परिमाणपरक है। यह तो सही है कि काव्य परपरा को छोड़ कर साहित्य के विकास की बात

सोची ही नही जा सकती। लोकवार्ता मे परपरा का तत्व अधिक बलशाली है। ऐसा इसलिये कि यद्यपि मौखिक रचना का कोई सुनिश्चित बाह्य रूप नही रहा है, फिर भी सदियो के दौरान मे उसे अनेक स्तरो से होकर गुजरना पड़ा है।

लोक वार्ता अतीत की प्रतिध्वनि है, परन्तु साथ ही वह वर्तमान की शक्तिशाली आवाज भी है। परन्तु यदि हम लोकवार्ता को केवल 'जीवित अतीत' के रूप मे स्वीकार करलें तो हम वर्तमान काल मे लोकवार्ता के महत्वपूर्ण कार्य और उसकी सामाजिक देन को अस्वीकार कर देंगे। लोकवार्ता वर्ग सघर्ष का एक अस्त्र रही है और आज भी है। इस रूप मे वह कलात्मक साहित्य के अनुरूप ही रही है, दोनो मे सामाजिक तत्व बराबर देखे जा सकते हैं। दोनों वर्ग सघर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। दोनों उसके अस्त्र रहे है। यदि हम ऐसा न मानेंगे तो हमे लोकगीतो को केवल किसानो का गीत मान लेना पडेगा। सोवियत रूस के विद्वानो ने लोकवार्ता का अध्ययन इस दृष्टि से किया और उन्होने किसानो के गीतो के साथ अन्य वर्गों के गीतों का भी मूल्याकन किया। इस प्रकार जहाँ कही भी मौखिक गीतों या वार्ताओं को वे पा सके सबका अध्ययन उन्होने किया।

लोकवार्ताओ के विभिन्न कालो को निश्चित करना भी सरल कार्य नही है। मौखिक साहित्य का काल निर्णय करने मे अनेक बाधाओ का सामना करना पडता है। फिर भी गीतो और वार्ताओ के स्वभाव, उनके शब्दो और उनमे छिपे ऐतिहासिक तत्वो की छानबीन करने के बाद काल निर्णय का कार्य किसी हद तक पूरा किया जा सकता है। साहित्य के इतिहासकारो को मौखिक साहित्य का प्रयोग अपने इतिहासो के निर्माण में करना चाहिये। ऐसा करने पर ही वे यह कह सकते हैं कि उन्हाने सम्पूर्ण साहित्य का इतिहास लिखा। परन्तु यह भी सोच लेना चाहिये कि मौखिक साहित्य का अपना स्वतत्र अध्ययन होता है। साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास लिख देने से ही लोकवार्ता का इतिहास पूरा न हो जायेगा। लोकवार्ता के

विद्वानो और साहित्य के इतिहासकारो को आपसी सहयोग के आधार दोनों का समान रूप से अध्ययन करना चाहिये और यह पता लगाना चाहिये कि मौखिक साहित्य का कलात्मक साहित्य पर और कलात्मक साहित्य का मौखिक साहित्य पर कितना प्रभाव पडा। रूस मे अठारहवी, उन्नीसवी और बीसवी सदी मे ऐसे बडे साहित्यकारो का नाम लेना कठिन है जिन्होंने कम अथवा अधिक मात्रा मे, विभिन्न मतव्यो से, विभिन्न सिद्धान्तो के कारण, कलात्मक रूप विधान, शक्तिशाली भाषा और आकर्षक रागो तथा धुनो के लिए लोकगीतो और लोकवार्ता से प्रेरणा और सहायता नही ली। अठारहवी शताब्दी के साहित्य पर लोकवार्ता का क्या प्रभाव पडा यह सभी लोग जानते है। पुश्किन, गोगोल, लेरमान्तोव, मेलिनकोव, पेचेर्सकी, कोरोलेन्को, कोल्सोव, नेक्रासोव, तुर्गनेव, तालस्ताय, शेद्रीन, दोस्त्योविस्की, लेस्कोव, गोर्की आदि ने लोकवार्ता मे विशेष रुचि दिखलायी थी। बीसवी सदी मे भी प्रतीकवादी, भविष्यवादी, कल्पनावादी बाल-मोन्त, ब्रियुसोव, ब्लाक, बेली, गोरोदेस्की, मायाकोवेस्की, येसेनीन सभी लोकवार्ता की शरण लेते है। अनेक क्रान्तिकारी विचारो और मनोभावो की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बाग्रित्स्की, प्रोकोफियेव, सुरकोव, असेव आदि ने लोकावार्ता से लगातार सहायता ली है। अनेक लेखको ने मौखिक काव्य का प्रभाव अपनी रचनाओ मे स्वय अनुभव किया है और उन्होने लगातार, प्रयत्न करके उसके कलात्मक रूपा, भाषा और विषय तत्व को ग्रहण भी किया है।

पुश्किन ने ऐसी कहानियो और कहावतो की भाषा की प्रशसा करते हुए कहा है, "कहानी तो कहानी ही है। मगर हमारी भाषा स्वय अपने मे एक ससार है। रूस के विस्तार और व्यापकता का जो पता इन कहानियो मे चलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मगर कोई इसे प्राप्त कैसे करे ? कहानी के अतिरिक्त भी रूसी भाषा को बोलना तो सीखना ही पडेगा। मगर नहीं, यह काम कठिन है, यह अभी सम्भव नही। लेकिन हमारी प्रत्येक कहानी में कितनी व्यापकता, कितनी सार्थकता, कितना महत्व है!

कितनी स्वर्ण राशि वहाँ है! मगर वह आपके हाथ नही लगती, नहीं लगती! ओह, कितना आनन्द मिलता है इन कहानियो को सुन कर। उनमे से हर कहानी एक कविता है।"

गोगोल ने भी लोकवार्ता के सम्बन्ध मे इससे कम महत्वपूर्ण बात नही कही। "ओह, मेरे आनन्द, मेरे जीवन, ओ गीता! मे तुम्हे कितना प्यार करता हूँ!"—ये शब्द गोगोल के मुँह से अपने आप निकल पडे थे। ताल्स्ताय तो लोकगीतो और लोकवार्ता को, अनेक मान्यता प्राप्त ऊँची कलात्मक कृतियो से भी अधिक पसन्द करते थे। गोर्की ने १६३४ ई० मे सोवियत लेखको की अखिल देशीय काग्रेस मे दो बाते विशेष रूप से कही थी—(१) मानव समाज के श्रम सम्बन्धी कार्यों से मौखिक काव्य का सदैव घनिष्ट सम्बन्ध रहा है (२) लोकवार्ता, इसी सम्बन्ध के कारण साधारणी करण की शक्ति का गहरा और स्पष्ट चित्र खीचने मे सफल रही है। गोर्की ने कहा था, "मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि लोकवार्ता और साधारण कमकर लोगो के मौखिक काव्य के द्वारा ही हमारे राष्ट्र वीरो के सबसे अधिक सजीव, खोजपूर्ण और कलात्मक चित्र खीचे गये हैं। हरक्यूलीज, प्रोमीथियस, मिकुला सेल्यानिनोयिच, स्यातोगोर आदि सभी तर्क और प्रेरणा, विचार और भावना के समन्वय से ही मूर्तरूप प्राप्त कर सके है। यह समन्वय तभी सम्भव हो सकता है जब कि रचनाकार स्वय रचना की सच्चाइयो मे, जीवन के संघर्ष मे सम्मिलित हो।" अन्त मे मैक्सिम गोर्की ने फिर इस ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "शब्दो की कला लोकवार्ता से आरम्भ होती है। इन लोकवार्ताओ लोकगीतो को एकत्र करो। उनका अध्ययन करो। उन पर काम करो। इससे तुमको और हम सब सोवियत रूस के गद्य तथा पद्य के लेखको को विपुल सामग्री प्राप्त होगी। हम अपने अतीत को जितना अधिक जानेंगे, जितनी अच्छी तरह जानेंगे, उतनी ही अच्छी तरह, उतनी ही सरलता पूर्वक, उतनी ही गहराई से और उतने ही आनन्द के साथ हम उस वर्तमान के महत्व को समझ सकेंगे जिसका निर्माण हम इस समय कर रहे हैं।"

इसी प्रकार प्रकार लेनिन ने भी कहा था कि "इन गीतो मे हम जन साधारण की आशा-आकाक्षा की झॉकी देख सकते हैं। मगर ऐसा तभी होगा जब इनका अध्ययन सामाजिक—राजनीतिक दृष्टिकोण से किया जाय।"

ये शब्द लेनिन के अपने नहीं है। एक व्यक्ति से बातचीत करते हुए लेनिन ने ये वाक्य कहे थे। उस व्यक्ति ने अपने सस्मरण मे इसका चर्चा किया है। इसलिए चाहे ठीक यही शब्द लेनिन न भी कहे हों तो भी इसमे कोई सन्देह नहीं कि उनका भाव यही था। लेनिन की सलाह को मान कर लोकवार्ता के विद्वानो को चाहिये कि वे लोकवार्ता की प्रक्रिया का साधरणीकरण करे, 'सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि कोण' से उसका पर्यवेक्षण करे। लोकवार्ताओ के विकासक्रम का उद्घाटन कर उस इतिहास को खोज निकाले जिसमे अतीत के श्रम जीवियो की 'आशा-आकाक्षाऍ' प्रतिध्वनित होती है। उन्हे समझना चाहिये कि हमारे अपने युग की जनता के मनोविज्ञान और विचारधारा के अध्ययन के लिए लोकवार्ता से महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार लोकवार्ता अथवा मौखिक काव्य कलात्मक आनन्द का स्रोत अथवा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री ही नहीं है, बल्कि वह हमारे आज के सामाजिक और राजनीतिक कार्यों और जीवन के लिए भी अत्यावश्यक है।

परिशिष्ट २

लोक संस्कृति समाज

यहाँ हम लोक संस्कृति समाज की योजना का प्रारूप प्रस्तुत कर रहे हैं। यह साधारण सी योजना उत्तर प्रदेश को ध्यान मे रख कर बनायी गयी है। उत्तर प्रदेश मे एक ओर जहाँ ऊँचे पहाड़ और तराइयाँ है वहीं लम्बे चौडे मैदान भी है। एक ओर आगे बढा हुआ उन्नत क्षेत्र है तो दूसरी ओर वे पूरबी जिले हैं जो अपनी पिछडी कृषि व्यवस्था के कारण गरीब है। इस लम्बे चौडे क्षेत्र मे रहने वाले लोगा की बोलिया, वास्त्राभूषणो, रीति-रिवाजो और रहन सहन मे बडा अन्तर है। बोलियों का अन्तर तो बहुत अधिक है और विभिन्न क्षेत्रो के लोग एक दूसरे को खडी बोली के माध्यम से ही समझ पाते है। पश्चिमी जिलो के लोगो को भोजपुरी आसानी से समझ मे नहीं आती। पहाडी लोगो को गढवाल, कुमाऊ आदि के निवासियो को, मैदानी लोगो की बाते कठिनाई से समझ मे आती है।

लोक साहित्य तो स्थानीय अथवा क्षेत्रीय बोलियो मे ही है। वह अधिकतर मौखिक है। उसे लिपि बद्ध करने पर अनेक कठिनाइयाँ सामने आती है। अक्सर शब्दो का अर्थ समझ मे नही आता। बहुत से शब्द ऐसे मिलते हैं जिनका एक क्षेत्रीय बोली म एक अर्थ होता है, दूसरी क्षेत्रीय बोली मे उसी शब्द का दूसरा अर्थ होता है और खडी बोली में उसका अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। इसलिये विभिन्न बोलियो अथवा क्षेत्रीय भाषाओ का साधारण भावार्थ समझ लेने पर भी उनमे प्रयुक्त शब्दो का मर्म और सौंदर्य समझ मे नही आता। अक्सर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसलिये लोक साहित्य का सच्चा मर्म समझने के लिए उनका लिखित रूप सामने आना चाहिये और हो सके तो उसी लिखित रूप को प्रामाणिक पाठ मान लिया जाय। इस सम्बन्ध मे बोलियो के शब्द-कोशो की ओर भी ध्यान जाता है और उसकी अनिवार्यता भी स्पष्ट हो जाती है।

लोक नृत्यो, वाद्यो तथा लोक सगीत के अन्य अवयवो के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू होती है। लोक चित्रो के सग्रह और प्रकाशन की भी समस्या सामने है। लोकोक्तियो और लोक कथाओ के सग्रह का काम भी अभी बहुत कम हुआ है। इस दिशा मे सफलता तभी मिल सकती है जब इसके लिए वैज्ञानिक ढग से सामूहिक अथवा समिलत प्रयत्न किया जाय।

लोक सस्कृति समाज की स्थापना के पीछे यही कल्पना है। यदि केन्द्रीय सरकार सगीत नाटक एकेडमी की तरह इस कार्य के लिए भी एक एकेडमी बना दे तो यह कार्य अखिल भारतीय स्तर पर सुचारु रूप से हो सकता है। मगर केन्द्रीय सरकार यह कार्य जब करेगी तब तक के लिये चुपचाप बैठा नही रहा जा सकता। इसलिये प्रादेशिक स्तर पर भी यह कार्य आरम्भ हो जाना चाहिये। यहाँ उत्तर प्रदेश को ध्यान मे रख कर योजना का प्रारूप समुपस्थित करने का यही अभिप्राय है। लोक सस्कृति तथा लोक साहित्य के क्षेत्र मे काम करने वाले विद्वान तथा कार्य कर्त्ता इस योजना पर विचार करे और आवश्यकतानुसार इसमे परिवर्तन परिवर्द्धन करके इस महत्वपूर्ण कार्य मे हाथ लगावे।

योजना का प्रारूप

लोक गीतो, लोक कथाओ, लोकोक्तियो, लोक सगीत, लोक नृत्यो, लोक वाद्यो लोक चित्रो आदि के अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश को निम्नाकित क्षेत्रों मे बाँटा जा सकता है (१) भोजपुरी (२) अवधी (३) बुन्देलखण्डी (४) ब्रज (५) खडी बोली का क्षेत्र (६) गढवाली (७) कुमाउँनी आदि। इन क्षेत्रो मे प्रचलित लोकगीतो, लोक कथाओ, लोकोक्तियो, लोकचित्रों आदि का सग्रह करना है तथा इन क्षेत्रो के नृत्यो, वाद्यों, उत्सवों, अभिनयों आदि का विस्तृत अध्ययन करना है। यह सारा कार्य सुचारु रूप से, सुव्यवस्थित और सगठित होकर चले, इसके लिए एक प्रादेशिक कार्यालय खोलना होगा। साथ ही प्रत्येक बोली के क्षेत्र के केन्द्रीय स्थान मे क्षेत्रीय कार्यालय खोलने होगे।

(१) लोकगीतो का संग्रह

इस कार्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होगा विभिन्न क्षेत्रो मे प्रचलित लोक गीतो, लोक कथाओ, लोकोक्तियो तथा लोक चित्रो का सग्रह करना। प्रादेशिक कार्यालय यह कार्य अपने क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा करायेगा।

क्षेत्रीय कार्यालय अपने क्षेत्र के जिला अधिकारियो, जिला नियोजन अधिकारियो, शिक्षालयो के अध्यापको, जिला बोर्डो, साहित्यिक सस्थाओ तथा इस विषय मे रुचि रखने वाले व्यक्तियो की सहायता और सहयोग से सग्रह का कार्य आगे बढाएँगे। सग्रह-कर्ताओं को वैतनिक आधार पर रखना होगा। साथ ही अवैतनिक रूप से कार्य करने वालो को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष पुरस्कारो का प्रबन्ध करना होगा।

(२) पुस्तको का प्रकाशन

पुस्तको के लेखन, सम्पादन तथा प्रकाशन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि कम से कम समय मे, कम से कम मूल्य पर, जनता को सारी पुस्तके उपलब्ध हो सके। विभिन्न बोलियो-भाषाओ के गीतो, कथाओ, लोकोक्तियो, नृत्या वाद्यो के अतिरिक्त अल्पनाओ तथा चित्रो आदि पर भी पुस्तके तैयार की जानी चाहिएँ।

गीतो के सग्रह के साथ विभिन्न क्षेत्रो के लोक नृत्यो, लोक अभिनया, लोक चित्रो, लोकोत्सवा, मेलो आदि के सम्बन्ध मे खोज पूर्ण सचित्र, वैज्ञानिक लेखो का सग्रह भी अलग अलग पुस्तको मे प्रकाशित किया जाना चाहिये।

(३) बोलियो के शब्द-कोश

लोक गीतो, लोक कथाओ और लोकोक्तिया के सग्रह के साथ ही बोलियो भाषाओं के सक्षिप्त शब्द-कोश भी तैयार किए जाने चाहिए। बिना सुसपादित शब्द-कोशो की मदद के लोकगीता तथा लोक साहित्य के असली मर्म को नही समझा जा सकता। अनेक विद्वानो ने लोकगीता के अपने सग्रहो के साथ उदाहरण स्वरूप कुछ शब्द भी जोड दिए हे और खडी बोली हिन्दी

मे उनका अर्थ भी दे दिया है। परन्तु यह बिल्कुल अपर्याप्त है। अब लोक बोलियो के शब्द-कोषो के बिना काम नही चल सकता।

(४) त्रैमासिक पत्रिका

इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करने की व्यवस्था करनी होगी। इस पत्रिका के द्वारा इस पूरे आन्दोलन का सचालन होगा। लोकोगीतो, लोकोक्तियो, लोक कथाओ आदि के प्रकाशन के साथ, इस पत्रिका मे शोध-कर्ताओ और विद्वानो के लेख होंगे और सग्रह तथा अन्य कार्यों से सम्बन्धित सारी सूचनाएँ रहेगी। विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयो के कार्य विवरण, खोज और सग्रह सम्बन्धी अनुभवो आदि के कारण यह पत्रिका अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

(५) वाचनालय तथा सग्रहालय

क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक कार्यालय मे लोक सस्कृति से सम्बन्वित सभी पुस्तको, पाण्डुलिपियो, चित्रो आदि को सग्रहीत किया जायगा। आरम्भ मे तो इस प्रकार का कार्य प्रादेशिक कार्यालय के ही अन्तर्गत हो सकेगा। आन्दोलन के अधिक व्यापक हो जाने के बाद, क्षेत्रीय कार्यालयो के साथ भी इस प्रकार के वाचनालय और सग्रहालय खोले जा सकते हैं।

इस सग्रहालय मे ससार के विभिन्न देशो मे प्रकाशित लोकवार्ता से सम्बन्धित पुस्तकें, पत्रिकाएँ, चित्र आदि होगे। साथ ही भारत की विभिन्न भाषाओ मे प्रकाशित सारा साहित्य भी यहाँ सगृहीत रहेगा।

यहाँ लोक सस्कृति की विभिन्न शाखाओ से सम्बन्धित खोज और शोध मे रुचि रखने वाले विद्यार्थियो तथा लोगो को अध्ययन का अवसर मिलेगा। साथ ही स्वय कार्यकर्ताओ की लोक सस्कृति सम्बन्धित जानकारी बढेगी और वे अपने कार्य को अधिक योग्यता तथा कुशलता पूर्वक कर पायेंगे।

(६) गीतो की टेप रेकार्डिंग

लोक गीतो के सग्रह के साथ साथ धुनो की रेकार्डिंग भी अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण है। यह दुख की बात है कि हमारे लोकगीतों की धुनें

शीघ्रता पूर्वक नष्ट होती जा रही हैं। रेडियो से तथा अन्य उत्सवो पर जो लोक गीतो से सम्बन्धित धुनें प्रसारित की जाती हैं वे प्राय गलत और अशुद्ध होती है। यदि गीतो की टेप रेकार्डिंग कर ली जाय तो हम अपने प्रदेश मे प्रचलित सारी धुनो का सग्रह कर लेंगे और उनका प्रचार भी कर सकेंगे। धुनो की टेप रेकार्डिंग के बाद ही उनमें परिष्कार अथवा परिवर्तन की बात सोची जा सकती है।

(७) लोकोत्सव और रगमंच

लोकोत्सवो का आयोजन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्वो पर या धार्मिक और सास्कृतिक मेलो के अवसर पर किया जायगा। इन उत्सवो के माध्यम से जनसाधारण तथा लोक सस्कृति से रुचि रखने वाले व्यक्तियो को एक स्थान पर एकत्र होने और आपस मे मिलने जुलने का अवसर मिलेगा। इसी के फलस्वरूप लोक रगमच का आविर्भाव, सस्कार और विकास भी होगा। इस कार्य के महत्व को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

उत्तराखण्ड मे, विशेषतया उत्तर प्रदेश मे, रगमच का कितना अभाव है इससे हम सभी लोग परिचित हैं। हमार प्रदेश मे राष्ट्रीय रगमंच की स्थापना नितान्त आवश्यक है। परन्तु इस विराट आयोजना को तब तक सफल नही बनाया जा सकता जब तक कम से कम बडे नगरो मे हिन्दी रगमच की स्थापना नही हो जाती और सभी सस्थाएँ केन्द्रीय सस्था से सम्बद्ध नही हो जाती।

हमारे प्रदेश के विभिन्न नगरा मे गैर पेशेवर कलाकारो और अभिनेताओ की अनेक सस्थाएँ हैं। ये सस्थाएँ अक्सर अपने नाटक प्रस्तुत किया करती हैं। इन सभी सस्थाओ को एकसूत्र मे बाँध कर प्रादेशिक स्तर पर हिन्दी रगमच की स्थापना होनी चाहिए। समस्या का यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है लोक रगमच का।

लोक रगमच की स्थापना का अर्थ है पुराने तथा प्रचलित रगमच का जीर्णोद्धार करना। नौटकियो, कठपुतली का नाच, चमारो, धोबियो, अहीरों आदि के कथानृत्यों, रामलीला, कृष्ण लीला, विभिन्न ऋतुओं,

विभिन्न अवसरो तथा पर्वो पर होने वाले नृत्यो और गीतो को जीवित रखने, उनका सस्कार करने और उनको समाज की नयी मागो के अनुरूप ढाल कर उन्हे राष्ट्रीय नव जागरण के आन्दोलन के महत्वपूर्ण अग के रूप मे प्रयुक्त करने की बहुत बडी आवश्यकता है। एक बार जब इस तरह लोक रगमच की स्थापना पूरे प्रदेश मे हो जाएगी तो वही सस्था राष्ट्रीय रगमच का आधार भी बन जाएगी और उत्तर प्रदेश मे भी रगमच का आन्दोलन बलवान हो जाएगा। जन जागृति के अतिरिक्त इसका सीधा प्रभाव हिन्दी के नाटककारा पर भी पडेगा और वे रगमच मे अभिनय करने योग्य नाटक लिखने लग जाऍगे। इससे हमारे साहित्य का एक कमजोर अग समृद्ध हो जाएगा।

(८) सम्मेलन

अक्सर इस विषय मे रुचि रखने वाले विद्वानो, शोधकर्ताओ, कलाकारो, अभिनेताओं और साहित्यकारा के सम्मेलन भी बुलाए जा सकते हैं। इन सम्मेलनो मे एक दूसरे के अनुभवो और जानकारी से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इन सम्मेलनो मे हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओ विशेषतया गुजराती, महाराष्ट्रीय, बगाली, उडिया, असमिया, नेपाली, पजाबी, कुमाउँनी, गढवाली, मालवी और राजस्थानी आदि मे कार्य करने वाले विद्वानो तथा कार्य-कर्ताओ को भी निमन्त्रित किया जा सकता है।

(९) लोक संस्कृति समाज

विभिन्न क्षेत्रो मे यह कार्य सुचारु रूप से चले इसके लिए लोक सस्कृति समाज की स्थापना की जायगी। यह सस्था अपने प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा सारे कामो की देख भाल और व्यवस्था करेगी। इसके अन्तर्गत, अन्य आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त लोकगीतो, लोक अभिनया तथा लोक नृत्यो आदि के प्रदर्शन की भी व्यवस्था की जायगी। ये लोकोत्सव आकर्षण और प्रेरणा के केन्द्र बन जाऍगे और इनसे खोज और सग्रह का कार्य तो आगे बढेगा ही, यह आन्दोलन भी इन उत्सवो से मजबूत होगा और इसकी लोकप्रियता बहुत अधिक बढ जाएगी।

परिशिष्ट ३

सहायक साहित्य

लोक साहित्य सम्बन्धी अध्ययन का सूत्रपात विलियम जान टामस् के 'फोकलोरिस्टिक' नामक लेख से सन् १८४६ ई० मे प्रारम्भ हुआ। पश्चिमी देशो मे उन्नीसवी सदी से ही इस क्षेत्र मे विस्तृत कार्य प्रारम्भ हो गया था। हमारे देश के विद्वानो ने इस ओर बाद को ध्यान दिया। कर्नल टाड ने 'एनल्फ आव राजस्थान' के लिए सामग्री एकत्र करते समय इधर ध्यान दिया था। परन्तु सबसे पहले बङ्गाल मे लोक साहित्य के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक कार्य शुरू हुआ। अब लोक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से होने लगा है। समाज शास्त्र, नृतत्व, जातितत्व तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान के साथ ही इतिहास और भूगोल का अध्ययन भी लोक साहित्य के अध्ययन के लिए जरूरी हो गया है।

यहाँ लोक साहित्य के अध्ययन मे सहायक सिद्ध होने वाली कुछ देशी-विदेशी साहित्य की पुस्तका की एक सूची दी जा रही है।

हिन्दी

१ उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य

२ उदयनारायण तिवारी—वीरकाव्य

३. कन्हैया लाल सहल—राजस्थानी कहावते

४ कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी ग्रामगीत

५. कृष्णानन्द गुप्त—ईसुरी की फागें, भाग १

६ खग बहादुर मानन—सूधा बूँदा, बाकीपुर १८८४

७ खेताराम माली—मारवाडी गीत सग्रह

८ जगदीश सिंह गहलोत—मारवाडी ग्रामगीत

९. ताराचद ओझा—मारवाड़ी स्त्री गीत सग्रह

१० दुर्गा प्रसाद सिह—भोजपुरी गीतों मे करुण रस
११ देवेन्द्र सत्यार्थी—बेलाफूले आधी रात
१२ देवेन्द्र सत्यार्थी—धरती गाती है
१३ देवेन्द्र सत्यार्थी—बाजत आवे ढोल
१४ देवेन्द्र सत्यार्थी—क्या गोरी क्या सावरी
१५. देवेन्द्र सत्यार्थी—धीरे बहो गगा
१६ नद लाल चत्ता—काश्मीर की लोक कथाए, १६५०
१७ नरोत्तम स्वामी—राजस्थान का दूहा, १६३५
१८. निहाल चद वर्मा—मारवाडी गीत
१६ परशुराम चतुर्वेदी—कबीर साहित्य की परख, १६५५
२० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी और हीरा लाल सत—हमारे लोकगीत, फरुखाबाद, १६५४
२१. मदन लाल वैश्य—मारवाडी गीत माला
२२. मन्मथ राय—हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव, इलाहाबाद, १६५३
२३ म० जोशी—मेवाड की कहावतें, उदयपुर
२४ मोहन लाल मेनारिया—राजस्थानी भीलों की कहानियाँ
२५ रतन लाल मेहता—मालवी कहावते, राजस्थान शोध सस्थान उदयपुर
२६. रामसिह पारीक और नरोत्तम स्वामी—ढोला मारूरा दूहा, का० ना० प्र०सभा, १६३४
२७. रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिक साहित्य
२८. राम इकबाल सिंह 'राकेश'—मैथिली लकोगीत
२६ रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत
३० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य
३१ रामनरेश त्रिपाठी—अवधी लोकगीत
३२ रामनरेश त्रिपाठी—मारवाड के मनोहर गीत,
३३. रामनरेश त्रिपाठी—हि० म० प्रयाग, १६३०

२४ राम नारायण उपाध्याय—निमाड़ी लोकगीत, हि० सा० स० जबलपुर, १९४९
३५. राहुल साकृत्यायन—हिन्दी काव्य धारा तथा आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, पटना, १९५२
३६ लखन प्रताप 'उरगेश'—बघेली लोकगीत, कटिया, विन्ध्य प्रदेश, १९५४
३७. वासुदेव शरण अग्रवाल—माता भूमि
३८ वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथ्वी पुत्र
३९ विद्यावती सिनहा 'कोकिल'—सुहाग के गीत
४० शिवसहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ
४१ शिवसहाय चतुर्वेदी—गौने की विदा
४२ शिवसहाय चतुर्वेदी—पाषाण नगरी
४३ श्याम परमार—मालवी लोकगीत
४४ श्याम परमार—भारतीय लोकगीत
४५ श्याम परमार—मालवा की लोक कथाएँ, १९५४
४६ श्याम परमार—मालवी और उसका साहित्य, १९५४
४७. श्यामा चरण दुबे—छत्तीसगढी लोकगीतो का परिचय, १९४०
४८ श्री चन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश के लोकगीत, १९५४
४९ श्री चन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश की लोक कथाएँ, १९५३
५० सकटा प्रसाद और आर्चर, डब्ल्यू० जे०—भोजपुरी ग्रामगीत
५१ सत राम—पजाबी गीत
५२. सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन
५३ सत्येन्द्र—ब्रज लोक कहानिया
५४ सत्येन्द्र—ब्रज लोक सस्कृति
५५ सुकुमार पगारे—सत सींगा जी, खण्डवा, १९४६
५६ सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत
५७ सूर्यकरण पारीक और गणपति स्वामी—राजस्थानी लोकगीत
५८ सूर्यकरण पारीक और गणपति स्वामी—राजस्थान के ग्रामगीत

५९. सूर्यकरण पारीक और गणपति—राजस्थान के लोकगीत
६० हर प्रसाद शर्मा—बुन्देलखण्डी लोकगीत
६१. हरिहर निवास द्विवेदी—मध्यदेशीय भाषा
६२. हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदि काल
६३. हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका
६४ हजारी प्रसाद द्विवेदी—कबीर

बंगला

६५ अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—शिक्षा
६६ अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—मीनचेतन
६७. अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—बागलार व्रत
६८. अनिल काति लाल—बागलार प्राचीन काव्य ,१९५०
६९. अक्षय कुमार दत्त—भारतीय साधक सम्प्रदाय, २ भाग
७० अक्षय कुमार दत्त—महानिर्वाण तन्त्र
७१. अशरफ़ होसेनेर ग्रथावली
७२. आफताब उद्दीन—मलय मनमोहन
७३. आसुतोष भट्टाचार्य—बागलार प्राचीन काव्येर इतिहास
७४ इनामुल हक़—बगे सूफी प्रभाव
७५ कालीचरण चक्रवर्ती—साधक राजमोहन
७६ काशीनाथ तर्कवागीश—व्रतमाला
७७. गिरिश चन्द्र सेन—तापस माला
७८. गुरु प्रसाद दत्त— पट्टुआ सगीत
७९. चारुचन्द्र वद्योपाध्याय—बग वीणा
८०. चौधरी—लौकिक धर्म और देवा देवी
८१. जसीम उद्दीन—नकसी काथर माठ
८२ जसीम उद्दीन—इगला नाचेर भक्ति
८३. दक्षिणारजन मित्र —ठाकुर दादार झुलि
८४. दक्षिणारजन मित्र—ठाकुर मार झूलि

८५. दिनेशचन्द्र सेन—मयमन सिंह गीतिका (पूर्व बगगीतिका)
८६ दिनेश चन्द्र सेन—मयमनसिंह गीतिका, प्रथम खण्ड, सख्या २
८७ दिनेश चन्द्र सेन—पूर्वबग गीतिका द्वितीय खण्ड, सख्या ८
८८ दिनेश चन्द्र सेन पूर्वबग गीतिका, तृतीय खण्ड, सख्या २
८९ दिनेश चन्द्र सेन पूर्वबग गीतिका, चतुर्थ खण्ड, सख्या २
९० दिनेश चन्द्र सेन—गोपी चन्द्रेरगान—प्रथम तथा द्वितीय खण्ड
९१ दिलीप कुमार राय—सगीतिका
९२ दुर्गागति मुखोपाध्याय—डाक पुरुषेर कथा, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड
९३ नरेन्द्र नाथ मजूमदार—व्रत कथा
९४. नीलकात सरस्वती—व्रत कथासार
९५ पवित्र सरकार—बाउलगान
९६. वीरेश्वर काव्य तीर्थ—व्रत माला विधान
९७ भोला नाथ दत्त—डाकेर कथा
९८ मसूर उद्दीन—हारामणि, प्रथम खण्ड १९३०
९९ मसूर उद्दीन—हारामणि, द्वितीय खण्ड, १९४२
१०० महेन्द्रनाथ कर—खनार वचन
१०१. मणीन्द्र नाथ बसु—सहजिया साहित्य
१०२ माणिक लाल वन्द्योपध्याय—व्रत उद्यापन
१०३ मोहित लाल मजूमदार—हेमन्तगोधुलि
१०४ रवीन्द्र नाथ ठाकुर—लोकसाहित्य, १९०७—८
१०५. रवीन्द्रनाथ ठाकुर—छन्द
१०६ राखालदास वन्द्योपाध्याय—बागलार इतिहास, प्रथम तथा द्वितीय भाग
१०७. राधा गोविन्दनाथ—चैतन्य चरितामृत
१०८ राधागोविन्द नाथ—तरिकत दर्पण
१०९. राम प्राण गुप्त—व्रतमाला
११०. लक्ष्मी नारायण साहू—दण्ड नाथ
१११ शरच्चद्र नाथ—बाउलगान

११२. सुकुमार सेन—बंगला साहित्येर इतिहास
११३ सुशील कुमार दे—बांगला प्रवाद
११४ हरिदास पालित—आद्येर गम्भीरा
११५. हरिनाथ कागाल—बाउलगान
११६. हरिनाथ कागाल—बारा मासेर पू थि
११७ हरिनाथ कागाल—हिन्दुस्तानी ग्राम गीत
११८. हरिनाथ कागाल—हिन्दुस्तानी लोकगीत
११९. हरिनाथ कागाल—हासान उदास
१२० क्षिति मोहन सेन—मध्ययुगे भारतीय साधनार वार
१२१ क्षितिमोहन सेन—दादू
१२२ क्षिति मोहन सेन—कबीर
१२३. बग साहित्य परिषद—प्राचीन पुथिर विवरण
१२४ बग साहित्य परिषद्—मारफती सगीत
१२५ बग साहित्य परिषद्—गोरक्ष विजय
१२६ बग साहित्य परिषद्—बग भाषा और साहित्य

पंजाबी

१२७ अमृता प्रीतम—पजाब दी आवाज, दिल्ली, १९५२
१२८ किशनचन्द्र मोगा—असली रग बिरगे गीत, अमृतसर, १९४६
१२९ दीनमुहम्मद कुश्ता—पजाब दे हीरे
१३० देवेन्द्र सत्यार्थी—गिद्धा
१३१ रामशरण—पजाब दे गीत, लाहौर
१३२ ब्रह्मदास—रतन ज्ञान (गुरु), अमृतसर, १९००
१३३ हरभजन गियानी—पजाब दे गीत (देवनागरी), अमृतसर
१३४ होतूराम—विलोची नाम, लाहौर, १८८१

मराठी

१३५. अनुसूइया भागवत—जानपद गीते
१३६. कमलाबाई देशपाण्डे—अपौरुषेय वाङ्मय अर्थात् स्त्रीगीते, पुणे,

१३७. कालेलकर व चोरघडे—साहित्याचे मूलधन
१३८ गोरे, पा० अ०—वरहाड़ी लोकगीतें, यावतमल
१३९ मालती दाण्डेकर—लोक साहित्याचें लेणे, सतारा, १९५३
१४० वि० वा० जोशी—लोककथा व लोकगीतें
१४१ साने गुरु जी—स्त्री जीवन (दो भाग)

गुजराती

१४२. आचार्य, वी० यच०—चण्डी पाठना गरबा
१४३ कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी (सम्पादक)—गुजराती साहित्य
१४४ कान्तावाल यच० डी० (सम्पादक)—प्राचीन काव्य माला, ३५ भाग
१४५ कान्तिलाल शाह—काश्मीरनी लोक कथाओ
१४६ गथु लालजी पण्डित—पर्वोत्सव तिथ्यावली
१४७ गदाधर भट्ट—सम्प्रदाय प्रदीप
१४८ गुजराती विद्यासभा—रासमाला
१४९ जगुश्ठे, एम० आर० (सम्पादक)—काव्य दोहा
१५० जानी, ए० बी० (सम्पादक)—सिंहासन बतीसी, २ भाग
१५१ जोशी, बी० सी०—जाति अने ज्ञाती, २ भाग
१५२ झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य
१५३ झवेरचन्द मेघाणी—रढियाली रात (३ भाग)
१५४ झवेरचन्द मेघाणी—चून्दडी (२ भाग)
१५५ झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनी रसधार (५ भाग)
१५६ झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी विहार वटिया (३ भाग)
१५७. ठक्कर, सी० वी०—भाटिया कुलोत्पत्ति ग्रथ
१५८ ठक्कर, यू० टी०—जुहनाज्ञाती निष्पत्ति अनेते नो इतिहास
१५९ द्रेल्जु प्रयाण (विवेचनात्मक)
१६०. दलाल, सी० डी० (सम्पादक)—प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह
१६१. दयाराम कवि—दयाराम कृत कविता (१३ भाग)
प्राचीन काव्यमाला, १८९०-९१

१६२ देसाई, बी० यल—दशा दिसावल वानिक ज्ञतीरीतिदरसक अहेवल
१६३ नर्मदाशकर लाल शकर कवि—देश व्यवहार व्यवस्थाना मूल तत्वो, १६१७
१६४ नाना लाल डी० कवि—गीता मजरी, १६२८
१६५. पाण्ड्या और याज्ञिक—श्री नाड़ियाद वदनगरा नागर ब्राह्मण जाति ना रीति रिवाजो, १६१७
१६६ परकम्पा (विवेचनात्मक)
१६७. परिभ्रमण (विवेचनात्मक)
१६८ बुच, एम० ए०—उदारी पथना नीति बचनो
१६६. भोजो भगत—कविता (प्राचीन काव्य माला), १८६०
१७० मथुरादास, लावजी—भाटियानी कुल कथा
१७१. मेहता, एन० डी०—शाक्त सम्प्रदाय
१७२. रणजीतराय मेहता—लोकगीत
१७३ शाह, एस० एन०—ढोलामारु, बम्बई, १६५४
१७४. शिक्षा विभाग बड़ौदा—पाटीदार जातिना सासारिक रीतिरिवाजनो एकीकरण

अंग्रेजी

१७५ अर्न्स्ट ग्रास—दि बिगनिग आव आर्ट्स
१७६ आनन्द कुमार स्वामी—आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स आव इण्डिया
१७७ आर्चर, डब्ल्यू० जी—दि ब्लू ग्रोव्स
१७८. आयगार, एम० वी०—पापुलर कलचर इन कर्नाटक
१७६ आयङ्गार, एम० एस०—तामिल स्टडीज, मद्रास, १६१४
१८० इन्थोवेन, आर० ई०—फोकलोर आव बाम्बे
१८१. इबेट्सन, डी०—पञ्जाब कास्ट्स, लाहौर, १६४६
१८२ एबट, जे०—दि कीज आव पावर
१८३. एबट, जे०—ए स्टडी आफ़ इण्डियन रियुअल्स एण्ड बिलीफ, १६३२

१८४ एरेनफेल्स, ओ० आर०—मदर राइट इन इण्डिया, हैदराबाद (दक्खिन), १६४१
१८५. एलविन, वी०—गोंड फोक साग्ज
१८६ एलविन एण्ड हिवाले—फोक साग्ज आव छत्तीस गढ, ४ भाग
१८७ एलविन एण्ड हिवाले—फोक साग्ज आव मैकाल हिल्स, ३ भाग
१८८. एलविन एण्ड हिवाले—फोक टेल्स आव महाकोशल ३ भाग
१८६ एलविन एण्ड हिवाले—स्पेसीमेन्स आव ओरल लिटरेचर आव मिडिल—इण्डिया, भाग १, २, ५
१६०. एल्टन—ओरिजिन्स आफ इङ्गलिश हिस्ट्री
१६१ एवलोन, ए०—सरपेन्ट पावर, १६१६
१६२ ऐयाप्पन० ए०—ऐन्थ्रापालिजी आव दि नयादीस, मद्रास, १६३७
१६३ ऐय्यर, एल० ए० के०—दि ट्रावनकोर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, ट्रिवेन्ड्रम, १६३७-४१
१६४. ऐय्यर एल. के —दि कोचीन ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, मद्रास, १६०६-१२
१६५ ऐय्यर और नान्जुन दैय्या—दि मैसूर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, बंगलौर, १६२८-३०
१६६ काक्स, एम० आर०—इन्ट्रोडक्शन टू फोकलोर
१६७ क्रिटरिज, जी० एल०—इगलिश ऐण्ड स्काटिश बैलेड्स
१६८ कुज बिहारी दास—ए स्टडी आव ओरीसन फोकलोर
१६६ क्लाड—मिथ्स एण्ड ड्रीम्स
२०० क्लाउड, बारिग—स्ट्रेन्ज सरवाइवल्स
२०१ क्रुक, डब्ल्यू—एन इण्ट्रोडक्शन टु पापुलर फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया
२०२. गैमर—दि बिगनिग आव पोयट्री
२०३. गर्डन, पी० टी०—दि खासीज, १६१४
२०४ गर्वे, गी० यस०—इण्डियन कास्ट्यूम्स
२०५ गैरोला, टी०—साम्स आफ दादू

२०६. गोमे, जी० एल०—एथनालोजी इन फोकलोर, १८६६
२०७. गोमे जी० एल०—फोकलोर ऐज़ ऐन हिस्टारिकल सायन्स
२०८. गोमे जी० एल०—हैण्ड बुक आव फाकलोर, १८६०
२०६ गोवर—फोक साग्स आव सदर्न इण्डिया
२१० ग्रास, अर्न्स्ट—दि बिगनिग आव आर्ट
२११ ग्रियर्सन, जी० ए०—बिहारी फोक साग्स
२१२ चटर जी, एन०—यात्रा
२१३ चन्दा, आर० पी० यम० यस० यस०—नान वैदिक एलीमेन्ट्स इन ब्रह्मनिज्म (वीरेन्द्र रिसर्च सोसायटी, राजस्थान)
२१४ चाइल्ड—इगलिश ऐण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स
२१५ जेन्स, युनिखटिकल—दि पोयट्री आव ओरियन्ट
२१६ जोगेन्द्र भट्टाचार्य—हिन्दू कास्ट ऐण्ड सेक्ट
२१७, टाड—एनल्स ऐण्ड ऐन्टीक्वीटीज आव राजस्थान, आक्सफर्ड, १६२०
२१७. टेम्पल, आर० सी०—दि लेजेन्ड्स आव दि पजाब
२१६. टेलर, आर० बी—अर्ली हिस्टरी आव मैनकाइन्ड
२२०. टेलर, ई० बी०—प्रिमिटिव कल्चर
२२१. ट्रिले, सी० पी०—ओरिजिन आव रेलीजन
२२२. डाउसन, जे०—ए क्लासिकल डिक्शनरी आव हिन्दू माइथालोजी ऐण्ड रेलीजन, जियोग्राफी, हिस्ट्री एण्ड लिटरेचर, ४ भाग, १६०३
२२३ डाब्सन—दि प्रोडिगल्स
२२४ डाल्टन—डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बगाल
२२५. डायर, थिसेन्टन—फोकलोर प्लान्ट्स
२२६. डे—म्युजिक आफ सदर्न इण्डिया
२२७ तोरु दत्त—ऐन्शेन्ट बैलेड्स ऐण्ड लेजेन्ड्स आव हिन्दुस्तान
२२८. थर्सटन, ई० और रगाचारी के०—कास्टस ऐण्ड ट्राइब्स आव सदर्न इण्डिया, मद्रास, १६०६

२२६ थूथी, एन० ए०—दि वैष्णवाज आव गुजरात, १९३५
२३० दास, एस०—हिस्टरी आव शाक्त
२३१. दासगुप्त, एस० बी०—आब्सक्योर रेलीजस कल्ट्स इन बंगाली लिटरेचर
२३२ दिवेतिया, एन० बी०—गुजराती लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर, भाग २, १९२६
२३३ डुब्बायस्, एल०—हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज, १९०६
२३४ दुबे, एस० सी०—दि चमार्स, लखनऊ, १९५१
२३५. पाउण्ड, लुई—ओरल लिटरेचर
२३६ पैरी, एन० ई०—दि लखेर्स, १९३२
२३७. पोपले—म्यूजिक आव इण्डिया
२३८ प्लेफेयर—दि गैरोज, १९०९
२३९ प्लाखानोव जी० वी०—आर्ट एण्ड सोसायटी
२४० प्रोजेश बनरजी—डान्स आव इण्डिया
२४१ प्रभु गुहा ठाकुर्ता—बंगाली ड्रामा
२४२ फास्ट, हावर्ड०—लिटरेचर ऐण्ड रियालिटी
२४३ फोरब्स, ए० के०—रासमाला
२४४ फिस्क—मिथ्स ऐण्ड मिथ्स मेकर्स
२४५. फीदरमैन—सोशल हिस्ट्री आवे रेसेज आव मैनकाइन्ड
२४६ फैलेन—डिक्शनरी आव इण्डियन प्रावर्ब्स
२४७ फ्रेजर, जे० जी०—फोकलोर इन दि ओल्ड टेस्टामेन्ट ३ भाग, लन्दन, १९१८
२४८ फ्रेजर, जे० जी०—तोफैनिज्म ऐण्ड ऐक्सोगेमी भाग ४, लन्दन, १९१०
२४९ फ्रेजर, जे० जी०—दि गोल्डेन बाउ, १० भाग, तृतीय संस्करण, लन्दन, १९२२
२५० बक, सी० एच०—फेथ्स, फेयर्स ऐण्ड फेस्टीवल्स आव इण्डिया, १९१७

२५१. बनरजी, बी०—ऐथनालिजक टु बगाल
२५२ बनरजी, शास्त्री—एथनाग्राफी (कास्ट्स ऐराड ट्राइब्स) विथ ए लिस्ट आव दि मोर इम्पोर्टेन्ट वर्क्स आन इरिडयन एथनाग्राफी बाई डब्ल्यू० सीजलिंग इनग्रेन्डीस देर इन्डो एरिसचेन फिलोलाजिक ऐन्ड आलतर तुम सकन्ड, २ बैराड, ५ हेफ्ट, स्ट्रासबर्ग, १६२२
२५३ बसु, एम० एम०—पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट
२५४ बर्टन, आर०—सिन्ध रिविजिटेड
२५५ बर्लेट, एफ० सी०—साइकालोजी आव प्रिमिटिव कल्चर
२५६ बर्टन, आर० एफ़—सिन्ध ऐराड दि रेसेज दैट इनहैबिट दि वैली आव इराडस, १८५१
२५७ ब्वायस, फ्रेज—प्रिमिटिव आर्ट
२५८ ब्वाएड, आर० एच०—विलेज फोक आव इरिडया, १६२४
२५६. बेक, ए०—इरिडयन म्यूजिक
२६०. बेकर, पाल—दि स्टोरी आव म्युजिक
२६१ बेनेफ, जे०—पचतत्र
२६२ ब्रीफाल्ट, आर०—दि मदर्स स्टडी आव दि ओरीजिन्स आव सेन्टीमेन्ट्स ऐराड इन्स्टीट्यूशन्स, ३ भाग, १६२७
२६३ ब्रूशर, कार्ल—आबिट ऐराड रिदम्स
२६४ मजूमदार, डी० यन०—सम आस्पेक्ट्स आव दि कलचरल लाइफ़ आव दि खासाज आव दि सिस-हिमालयन रीजन (जे० आर० ए० एस० बी० लेटर्स, भाग ६, कलकत्ता १६४०)
२६५ मजूमदार, डी० यन०—ए ट्राइब इन ट्रान्जीशन, कलकत्ता, १६३७
२६६ मजूमदार, डी० यन०—स्नोफाल आव गढवाल (सम्पादित)
२६७ मार्क्स, कार्ल—ए कान्ट्रीब्यूशन टु दि क्रिटीक आव पोलीटिकल इकानामी

२६८ मिल्स, जे० पी०—दि ल्होटा नागाज, १९२२
२६९ मिल्स, जे० पी०—दि आओ नागाज, १९२६
२६९ मुखरजी, ए०—फोक आर्ट आव बंगाल
२७१ रविपति गुरुब्या गरु—ए कलेक्शन आव तमिल प्रावर्ब्स
२७२ रसेल, आर० वी० और हीरालाल—दि ट्राइब्स ऐण्ड कास्टस आव सेन्ट्रल प्राविन्सेज आव इण्डिया, १९१६.
२७३ राइस, एस०—हिन्दू कस्टम्स ऐण्ड देयर ओरिजिन्स, १९३७
२७४. राबर्ट्सन, जी० एस०—दि काफिर्स आव हिन्दू कुश, १८९६
२७५ राम कृष्ण, एल०—पंजाबी सूफी पोयट
२७६ राय, एस० सी०—दि ओरावज आव छोटा नागपुर राची, १९१५
२७७. राय, एस० सी०—दि हिल भुइयाज आव उडीसा, राची, १९३५
२७८ राय, एस० सी०—दि खरीयाज, राची, १९३७
२७९ रीवर्स, डब्ल्यू० एच० आर०—दि टोड्स, १९०६
२८० रोजेटी, डी० जी०—बैलेड्स आव फेयर लेडीज
२८१ रोरिगनेज, ई० ए०—दि हिन्दू कास्ट्स, १८४६
२८२ लाग, जेम्स—ईस्टर्न प्रावर्ब्स एण्ड एम्बलम्स
२८३. लाग, जेम्स—बैलेड इन ब्लू चाइना
२८४ लिफनेर, जी० डब्ल्यू०—दरदिस्तान, इन १८६६, १८९२ एण्ड १८९५
२८५ लीवी, आर० एच०—कलचर एण्ड एथनालोजी, १९१७
२८६ लोगन, डब्ल्यू०—मुलाबार, मद्रास, १८८७
२८७ ल्यूआर्ड, सी० ई०—एथनालोजिकल सर्वे आव सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी, लखनऊ, १९०९
२८८ वस्क—दि फोक साग आव इटेली
२८९. वारटोक, बेला—हंगेरियन पेजेन्ट म्यूजिक
२९० विनय कुमार सरकार—फोक एलीमेन्ट्स इन हिन्दू कलचर

२६१ विनयतोष भट्टाचार्य—सदन माता
२६२ विनय तोष भट्टाचार्य—बुद्धिस्ट गाड्स
२६३ विनय तोष भट्टाचार्य—इकनोग्राफी आव बुद्धिस्ट गाड्स
२६४. विलसन, एच० एच०—रेलीजस सेक्ट्स आव हिन्दूज
२६५ वेंकट स्वामी, एम० एन०—दि फोक टेल्स आव सेन्ट्रल प्राविन्सेज इन दि इन्डियन ऐन्टीक्वेरीज, २४, २५, २६, २८, ३०, ३१, ३२
२६६ वेसटेर मारेक—हिस्टरी आव ह्यूमन मैरेज, ३ भाग, १६२२
२६७. वैडेल—लामाइज्म
२६८ शहीदुल्ला—ले चैन्ट्स मिस्टीक्स
२६६ शेक्सपीयर, जे०—लुशी कुकी क्लान, १६१२
३०० शेरिफ, ए० जी०—हिन्दी फोक साग्स
३०१ शोकोलव, वाई० एम०—रशियन फोकलोर
३०२. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—ओरीजिन ऐण्ड डेवलपमेण्ट आव बगाली लैंग्वेज।
३०३ सेयर, रूथ—दि वे आव स्टोरी टेलर
३०४ सोरले, एस० टी०—शाह अब्दुल लतीफ
३०५ स्टैक—दि मिकिर्स, १६०८
३०६ स्ट्रेन्जवेज, फाक्स०—म्युजिक आव हिन्दुस्तान
३०७ स्लेटर, जी०—ड्रेविडियन एलीमेन्ट्स इन इण्डियन कलचर, १६२८
३०८ हटन, जे० एच०—दि अगामी नागाज, १६२१
३०६ हरब, जे० एच०—दि सोमा नागाज, १६२१
३१० हरब, जे० एच०—दि प्रिमीटिव फिलासफी आव लाइफ, आक्स-

३१४ हिवाले, एस० और इलविन, वी०—साग्स आव दि फारेस्ट, लन्दन, १६३६
३१५ हिसलोप, एस०—पेपर्स रिलेटिंग टू दि एबारजिनल ट्राइब्स आव सेन्ट्रल प्राविन्सेज, नागपुर, १८३६
३१७ हैरप, लुई—सोशल रूट्स आव दि आर्ट्स
३१७ हुसेन, युसुफ—मिस्टिक इण्डिया इन मिडिल एजेज

अन्य पुस्तकें

३१८. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका
३१६ इण्डियन ऐन्टीक्वेरी
३२० ए ग्लासरी आव कास्टस, ट्राइब्स ऐण्ड रेसेज इन दि बरोडा स्टेट, बाम्बे, १६१२
३२१ ए रिपोर्ट आव दि सेन्सस आव बगाल, बिहार एण्ड उरीसा एण्ड सिक्किम—६ भाग, सेन्सस आव इण्डिया, १६०१, कलकत्ता, १६०३
३२२. ओमेन्स एण्ड सुपरस्टीशन्स आव सदर्न इण्डिया, १६१२
३२३ कबीर एण्ड हिज डिसाइपिल्स—आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
३२४ गुजरात पापुलेशन हिन्दूज (बाम्बे प्रेसीडेन्सी गजेटियर, भाग ६, बाम्बे १६०१)
३२५ डिक्शनरी आव फोक लोर, भाग २, १६५२
३२६ दि बलोचीस—एशियाटिक सोसायटी मोनोग्राफ्स, भाग ४, १६०१
३२७. दि लैण्ड आव दि पेरूमल्स आर कोचीन, इट्स पास्ट ऐण्ड इट्स प्रेजेन्ट, मद्रास, १८६३
३२८ दि ओरीजिनल इनहैबिटेन्ट्स आव युनाइटेड प्राविन्सेज, ए स्टडी इन ऐन्थ्रापालोजी, भाग ११, आव इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज, १६३५
३२६ दि मिथ्स आव मिडिल इण्डिया, १६४४-४५

३३० नोट्स आन दि थैडोन कुकीजशा, डब्ल्यू जे० ए० एस० बी० भाग २४, १९२८ न० १, कलकत्ता १९२९
३३१ पाल्स आव बगाल
३३२ बगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स
३३३ बरमीज ड्रामा—आक्सफोर्ड
३३४ मदर गाडेस कल्ट इन मगध—दि सर्चलाइट (एनिवर्सरी नम्बर १९२९, पटना, १९३०)
३३५ रिपोर्ट आन दि सेन्सस आव इण्डिया, १९३१ (भाग १ आव सेन्सस आव इण्डिया १९३१, दिल्ली, १९३३)

अन्य हिन्दी पुस्तकें

३३६. राहुल साकृत्यायन—'किन्नर देश' और 'हिमालय परिचय' पुस्तको में दिये गये गीत
३३७ शिवदान सिंह चौहान—'प्रगतिवाद—जनपदीय भाषाओ का प्रश्न' (१८९-२७६)
३३८ हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय—लोक भाषा मे सम्प्रदाय के नैतिक उपदेश (१९२-१९७)
३३९ त्रिलोकी नारायण दीक्षित—सत दर्शन—'सतो के लोकगीत' (२२९-२४२)

पत्र-पत्रिकाएँ और उनमें बिखरी सामग्री

हिन्दी

१. अवन्तिका (अगस्त, १९५३)—'हिन्दी के साहित्य के इतिहास में लोक साहित्य'—शिवनन्दन प्रसाद एम० ए०
२. अजन्ता (अगस्त, १९५२)—आदिवासियो के प्रेम गीत कल्याण विंदनूरकर
३. अजन्ता (जनवरी, १९५४)—'भारतीय लोक साहित्य का विचार'-तिलक

४ अजन्ता (जनवरी, १९५४)—'आन्ध्र देश की कविता और लोक गीतो से उसका विकास'—वेंकटेश्वर शास्त्रालु
५ अजन्ता (फरवरी, १९५४)—'भारतीय लोक गीतो मे नारी' —कृष्णलाल हंस
६ अजन्ता (अप्रैल, १९५४)—'पजाबी लोक साहित्य'—करतार सिंह दुग्गल
७ आजकल आदिवासी अक, १९५४,—लोक कथा अक, १९५४ तथा विभिन्न अंको की सामग्री
८. आलोचना (अप्रैल, १९५२)—'लोक साहित्य की यथार्थवादी परपरा —देवेन्द्र सत्यार्थी
९ आलोचना (जूलाई १९५२)—'हिन्दी साहित्य के विकास मे लोक वार्ता की पृष्ठ भूमि—डा० सत्येन्द्र
१० कल्पना (फरवरी, १९५१)—'लोक गीत' शीर्षक सम्पादकीय
११. कल्पना (फरवरी, १९५३)—'भारतीय लोक कला'—अजित कुमार मुकर्जी
१२ जनपद (हिन्दी जनपद परिषद् का त्रैमासिक)—प्रत्येक अक
१३ दक्षिण भारत (जनवरी, १९५४)—'महाराष्ट्र के लोकनाट्य' —श्याम परमार
१४ नया पथ (अगस्त, १९५३) 'लोक भाषा और लोक साहित्य'—राहुल साकृत्यायन
१५ नयी धारा (मासिक)—'जगल गाता है' स्तम्भ के लेख
१६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग १७, अक ३)—'मेरठ के आस-पास क्षेत्र वाले मुहावरे'—राजेन्द्र सिंह
१७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग १८, अक १-२)—गढवाली भाषा के पाषाण (कहावत)—शालिग्राम वैष्णव
१८ प्रतिभा (फरवरी, १९५४)—'छत्तीस गढ के सास्कृतिक गीत' —देवी प्रसाद वर्मा
१९ प्रतिभा (फरवरी, ५४)—'रूसी लोक साहित्य मे जादू टोना, —राजेन्द्र ऋषि

२० प्रतिभा (मार्च, ५४)—'होली के छत्तीसगढ़ी लोगगीत'—कमलकुमार
२१ (मार्च, ५४) 'फागो का त्योहार'—देवीशकर अवस्थी
२२. पाटल (मार्च, ५४)—'लोक साहित्य की समस्यायें'—बैजनाथ सिंह विनोद
२३ पाटल (अप्रैल, ५४)—'भोजपुरी लोकगीत में नारी'
२४ प्राच्य मानव वैज्ञानिक, १९४९ का अक—'लोक गीतो का सास्कृतिक महत्व और कवित्व'—नरेश चन्द्र
२५ ब्रजभारती (ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा) के अक
२६. भारती (जूलाई, १९५०)—काठियावाड और गुजरात के गर्बागीत —कुसुमपाल निहारिका
२७ भोजपुरी (पटना)—लोक साहित्य और अन्य अक
२८ मधुकर (वीरेन्द्र केशव सा० परिषद्, टीकमगढ) १९४० से ४५ तक के अक
२९, 'राजस्थान' (राजस्थान रि० सो० कलकत्ता) स० १९९२ के अक
३० राजस्थान भारती (सादूल राजस्थानी रि० इन्स्टीट्यूट, बीकानेर) —सन् '५१-५२ और' ५३ अक
३१ राष्ट्रभारती (नवम्बर, १९५१)—'गगा गौरी सम्वाद'—वाराणसी राममूर्ति रेणु
३२ राष्ट्रभारती (अप्रैल, ५४)—'रूसी लोक साहित्य मे विलाप गीत —राजेन्द्र ऋषि
३३. लोकवार्ता (लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ) प्रत्येक अक (१९४५-४६)
३४. विश्वमित्र (मासिक) जनवरी १९४७—'दक्षिण बिहार के ग्रामगीत' —मोहन प्रसाद सिंह
३५ विशाल भारत (फरवरी, १९२९)—'दो मारवाडी गीत'— लक्ष्मी नारायण पचीसिया
३६ विक्रम (श्रावण, २००७) 'जीजा या बढी के गीत'—श्याम परमार
३७ विक्रम (वैशाख, २००९)—'मालवी-ग्राम-साहित्य की पहेलियाँ' —चिन्तामणि उपाध्याय

३८ विक्रम (माघ, २०१०)—'लोक साहित्य की मीरा—चन्द्र सखी —चिन्तामणि उपाध्याय

३९. विन्ध्य भूमि (मार्च, १९५४)—'लोक कला और लोक साहित्य' —मार्कण्डेय

४० वीणा (मार्च-अप्रैल, १९५४)—'लोक कथाओ की जन्मभूमि-पजाब' —नरेन्द्र धीर

४१ वीणा (जून, १९५०)—'लोकगीत एक परिचय'—श्याम परमार

४२. सम्मेलन-पत्रिका (लोक सस्कृति विशेषाक) हि० सा० स० प्रयाग, २०१०

४३. सम्मेलन पत्रिका (पौष शुक्ल, २०१०)—'निमाडी लोक कहावतें और उनका सौन्दर्य'—रामनारायण

४४ समाज (नवम्बर, १९४९)—'लोकनृत्य और गीत'—रामइक्बाल सिंह राकेश

४५ साधना (जुलाई, १९४१)—'चैता · ग्राम सगीत'—नरसिंहराम शुक्ल

४६ साधना (अगस्त, १९५१)—'बनजारो के गीत'—मूलचन्द 'शौर'

४७ सुमित्रा (सितम्बर, १९५२)—वर्षा और स्वास्थ्य विज्ञान'—शिवसहाय चतुर्वेदी

४८ सुमित्रा (नवम्बर, १९५२)—मालवी साहित्य का सक्षिप्त परिचय

४९ हस (फरवरी १९३६)—'हमारे ग्राम गीत'—देवेन्द्र सत्यार्थी

५० हस (सितम्बर १९९०)—'लोकगीत एक अध्ययन—'राकेश'

५१. हस (सितम्बर १९४०)—छत्तीस गढी ग्राम्य कथाएँ'—श्यामाचरण दुबे

५२ हस (सितम्बर १९४०)—'मालव लाक गीतो की नारी'—प्रभागचन्द्रशर्मा

५३ हसं (सितम्बर १९४३)—'मातृ भाषाओ का प्रश्न'—राहुल साकृत्यायन

५४ हिन्दुस्तान साप्ताहिक के लेख एव लोक साहित्य विशेषाक, २ मई, १९५४

५५. अमृत पत्रिका, १९५४—१९५४ के अक

[बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका]

१३०१

१ छेल भुलान छड़ा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर १०१-१६२

२. कलिकातार सग्रहीत छडा— ,, १६३-२०२

१३०२.

३. छेले भुलानछड़ा—वसतरजन राय ३६७-३७१

४. साओताल परगनार छडा—वसतरजन राय ३७१-३७४

५ मैथिलिछड़ा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ३७४-३८१

१३०३

६ छड़ा (वर्द्धमान)—कु जलाल राय ५६-६१

७ छड़ा (हुगली)—अम्बिकाचरण राय ६१-६४

१३०६

८. गोविन्द चन्द्रेर गीत—शिवचन्द्र शील २६७-२७२

१३०८

९. दक्षिणापथे प्रचलित पूजा ओ व्रत—दीनानाथ वन्द्योपाध्याय १५-२२

१३०९

१० चट्टग्रामी छेले भुलानो छडा—अब्दुल करीम ७६-९१

११. व्रत विवरण—राम प्राण गुप्त १०७-१२०

१३१०

१२ चट्टग्रामी छेले भुलान छडा—अब्दुल करीम ११३ ११६

१३११.

१३ चट्टग्रामी छेले भुलानो छडा—अब्दुल करीम १०७-११४

१३१२

१४ चट्टग्रामी छेले भुलानो छडा—अब्दुल करीम १७७-१८८

१५ निरक्षर कवि ओ ग्राम्य कविता—मोक्षदाचरण भट्टाचार्य ४०-४७

१३१३.

१६ ग्रामगीति—दक्षिणरजन मित्र मजूमदार १२९-१४५

१३४०

२८ लिंगोपासना—विधुशेखर भट्टाचार्य— ७४१—७४२

२६ राजघाटेर व्रतनृत्य—गुरुसदय दत्त—१०१—११२

३० विद्यासागर उपाख्यानेर मुसलमानी रुप—चिन्ताहरण चक्रवर्ती

• ५००—५०१

१३४१

३१ नृत्यरता भारती—अजित कुमार मुखोपाध्याय

विविध

(त्रैमासिक, मासिक और दैनिक आदि सच्चेप, आ० बा० प०—आनन्द बाजार पत्रिका)

१ पूर्व बगेर साहिरगान—प्रभात कुमार गोस्वामी, आ० बा० प० ६—११—१६४१

२ हारामणि—मनसुर उद्दीन—सत्यवार्ता, ईद अक, १६४०

३ बागलार लोक सगीत—जरीन कलम, विचित्रा मासिक

४ सोंओताल पल्ली गीति—चारुलाल मुखोपाध्याय, देश साप्ताहिक (१६३७)

५ श्री हट्टेरपल्ली गीति—आब्दर रज्जाक, आ० बा० प० २६-४-१६४१

६ लालन फकीर—विश्वनाथ मजुमदार आ० बा० प० २६-४-४१

७ कालिकाता विश्वविद्यालयेर प्रवेशिका परीक्षार सङ्गीन प्रश्न पत्र आ० बा० प० १६-३-४१

८ छेले मुलान छड़ा—तारकनाथ वन्द्योपाध्याय, आ० बा प० १६-३-४१

६ वर्द्धमान जेला पल्ली-साहित्य-सम्मेलन आ० बा प० १८ ४-४१

१० लोकसाहित्य सग्रह—सुरेन्द्र नाथ दास, युगान्तर दैनिक १४-१०-४२

११ निखिल बङ्गपल्ली साहित्य सम्मेलन—आ० बा० प० ३१-३-४०

१२ बाजनाय आपत्ति—आ० बा० प० २७-४ ४०

१३ शिलचरे शोचनीय हत्याकाण्ड—आ० बा० प० १२-३-३७

१४ बाङ्गलायपल्ली गान सम्बन्धे यत्किञ्चित आलोचना—मनमोहन घोष, विचित्रा
१५. कविगान—पूर्णचन्द्र भट्टाचार्य, आ० बा० प० १४ श्रावण १३४६
१६ कविगान—पूर्णचन्द्र भट्टाचार्य, आ० बा० प० ३१ श्रावण १३४६
१७ उत्तरबगे चोरेर छड़ा—तारा प्रसन्न मुखोपाध्याय, आ० बा० प० १५-६-१६३६
२३ बाऊल ओ मुर्शिदी गान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० १६४०
२४ रङ्गपुरेर भाएया गान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० ७-१-१६४०
२५ जारी गान ओ पागला कानाइ—माधव भट्टाचार्य, आ० बा० प० ११-१२-१६३६
२६. पश्चिमबगेर भादो जागरण गीत—फाल्गुनी मुखोपाध्याय, आ० बा० प० ६ वैशाख १३४६
२७. मुर्शिदीगान—यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० १०-१२ १६३६
२८. मेघदूत—बिजली, नवशक्ति साप्ताहिक, २६ जनवरी १६३२
२६ बाङ्गलार पल्ली सम्पद-गुरूसदय दत्त, बगलक्ष्मी, फाल्गुन १३३७
३० प्राचीन बाङ्गला साहित्य-यतीन्द्रसेन, आ० बा० प० ६ जुलाई १ ३६
३१ बाउलेर धर्म—बगवाणी ७ माघ १३३८

मराठी

१ अनसूया लिमये—सहा महारावग, सत्यकथा, दिवाली अक नवम्बर, १६५२
२. उ० मा० कोठारी—स्त्री हृदय, अहमद नगर कालेज, त्रैमासिक, अगस्त १६५१
३ उ० पठरीयाविठ्ठल, अहमद नगर कालेज त्रैमासिक, फरवरी, १६५२
४. कमला बाई देश पाण्डे—महाराष्ट्रातील कौटुम्बिक जीवन, प्रसाद, अप्रैल १६५३
५. कमला महाराष्ट्रातील अपौरुषेय वाङ्मय शोभा, जुलाई १६४६
६ कर्वे, चि० ग०—'मुबईचीची लोकगीते'—प्रसाद, अप्रैल १६५२

७ कर्वे—'म्हाण्यांच्या शास्त्रीय अभ्यास ची दिशा'—प्रसाद, जनवरी १९५२

८ कर्वे—'आसरा अर्थात जलदेवता सम्प्रदाय'—प्रसाद, जून १९५२

९ कर्वे—'कोंकणातील मुते' प्रसाद, जुलाई १९५२

१०, काले, बी० ए०—'आगरी लोकाची गीतें' (Agris: A Socio-Economic Survey निबन्ध का परिशिष्ट, १९५२)

११ दुर्गा भागवत—हृदग्याचीं व भोंडल्याचीं गाणी, सत्यकथा—फरवरी १९५२

१२ दुर्गा—'वणजारी ओव्याव गीतें', साहित्य सहकार, सितम्बर अक्तूबर १९५२

१३ दुर्गा—'कृष्णदेवता सीता', सत्यकथा, सितम्बर १९५२

१४. दुर्गा—'तुलशीच्या कथा', सत्यकथा, अप्रैल १९५२

१५ दुर्गा—'लोकगीताचा प्राचीन प्रचारक वररुचि', सह्याद्रि, जनवरी १९५३

१६. दुर्गा—'ट्यूटानिक लोक साहित्य', केसरी, ४ जनवरी १९५३

१७ नरेश कवडी—लोकविद्या आणि लोकवाङ्मय,' सत्यकथा, अक्तूबर १९५२

१८. चिपलूणकर, मो० पा०—'हवामान सम्बन्धीचे वाक्य प्रचार', चित्रमय-जगत, जुलाई १९५२

१९ मालती दाण्डेकर—'ग्रामीण महिला वाङ्मय', वसन्त, जून १९५२

२० बालमकृष्ण चोरघडे—'लोकगीतें', साहित्य, अक्तूबर १९४८

२१ सरोजनी बाबर—'जुनी ठेव', मन्दिर, १९५०

२२ सरोजनी—'जानपद ओवी', जनवाणी, दिवाली अंक, १९५०

२३. सरोजनी—'जानपद उखाणा', जनवाणी, दिवाली अंक, १९५१

२४ सरोजनी—'विरगुलयाचीं गाणीं', लोकवाङ्मय, दिवाली अंक, १९५२

२५. सरोजनी—'लोकवाङमय', केलानन्द सरस्वती सत्कार ग्रन्थ, १९५२

२६ सरोजनी—'जात्यावरील गोड गाणी', समाज शिक्षणमाला, पुष्प ६

२७ सरोजनी—'खडेयातीन स्त्रियाची कविता', साहित्य पत्रिका, अप्रैल, मई, जून, १९५२

२८ सुलोचना सप्तर्षि—'प्रमाचा अथाग सागर', सगम, अक्तूबर १९५२

अंग्रेजी

१ सेन, दिनेश चन्द्र इस्टर्न बगाल बैलड्स, मैमन सिंह

वोल	१ पार्ट १	१९२८ पे० ३२२
वोल	२ पार्ट १	१९२६ पे० ४६९
वोल	३ पार्ट १	१९२८ पे० ४३५
वोल	४ पार्ट १	१९३२ पे० ४४६

२. सेन, दिनेशचन्द्र—फोक लिटरेचर आफ बगाल, १९२० पे० ३६२
३ सेन, दिनेशचन्द्र—ग्लिम्पसेज आफ बगाल लाइफ, १९२५ पे० ३१३
४. सेन, दिनेशचन्द्र—हिस्ट्री आफ बगाली लेन्गुएज ऐन्ड लिटरेचर १९११ पृ० १०३०
५ सेन, दिनेशचन्द्र—दि फील्ड आफ इम्ब्रायडर्ड क्वील्ट (ऊपर की पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद)
६. फोक सांग्स ऐन्ड फोकडान्स इन बगाल, दि एडवान्स (डेली), १२ अक्टूबर १९३१
७. एल्युरिंग फोकलोर, दि इगलिशमैन (डेली), अक्टूबर १३, १९३०
८ फोकआर्ट आफ बगाल—अजित मुखर्जी, दि एडवान्स पूजा स्पेशल, १९३१
९ रिवाइवल आफ फोकसाग ऐन्ड फोकडान्स इन बगाल—ए० सी० बनर्जी
१०. फोकसाग ऐन्ड फोकडान्स इन इडियन स्कूल्स—जी० एस० दत्त, अमृत-बाजार पत्रिका, नवम्बर १३, १९३१
११ फोकसाग ऐन्ड फोकडान्स इन बगाल, ए० बी० पी०, अक्टूबर ११, १९३१
१२. ए वीजिट टू रोमा रोला—पी० एस० शेशाद्री, ए० बी० पी, नवम्बर, ३, १९३१
१३ रीसेन्ट बगाल लिटरेचर, दि मार्डन रिव्यू, जून १९३१

१४ ए बाल म्युजीशियन इन ढाका, ईस्ट बंगाल टाइम्स (ढाका) ६-१२-३३

१५. ब्रतचारी प्रिन्सपिल्स आव ट्रेनिंग—जी० एस० दत्ताज लेक्चर, ए० बी० पी० ३१-३-३६

१६ ए ब्रेक टू मान्नोटोनी—ब्रजेन्द्र नाथ सरकार (मथबुरिया खसमहल एच० ई० स्कूल मैगजीन, बारिसाल, १६३२

१७ इसप्रीचुअलिज्म इन म्युजिक—हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड (डेली, कलकत्ता), १७-४-३८

१८. फिलासफी आव अवर पीपुल—रवीन्द्रनाथ टैगोर, मार्डन रिव्यू, जून १६२६

१६ दि बाल्स आव बंगाल—रमेशबोस, विश्व भारती क्वाटरली, अप्रैल १६२६

२० स्टडी आव हिन्दू म्युजिक, एरनोल्ड बेक्स लेक्चर्स, जनवरी १६३८

२१ मैन इन इंडिया (सथाल रेबेलियन नम्बर), रॉची।

२२ जर्नल आव दि डिपार्टमेन्ट आव लेटर्स (कलकत्ता युनीवर्सटी)

२३ इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (कलकत्ता), इंडियन कलचर (कलकत्ता), कलकत्ता रिव्यू (कलकत्ता युनीवर्सीटी)

२४. जर्नल आव एशियाटिक सोसाइटी आव ग्रेट ब्रिटेन (लन्दन)

२५. मैन (जर्नल आव दि रायल ऐंथ्रोपोलोजिकल इन्स्टीट्यूट (लन्दन), इंडियन आर्ट ऐन्ड लेटर्स (लन्दन),

२६ रूपम (कलकत्ता) आदि मे भी बडे काम की सामग्री भरी पडी है।